उत्तरार्द्धम्

॥ श्रीः ॥

योगरत्नाकरः

'विद्योतिनी' हिन्दीटीकोपेतम्

(उत्तरार्द्धम्)

अथ शूलनिदानं व्याख्यास्यामः ।

यदुक्तं हारीते—

अनङ्गनाशाय हरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च ।
तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ १ ॥
स विष्णुहुङ्कारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः ।
स पञ्चभूतानुगतं शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥ २ ॥

शूल की उत्पत्ति—कामदेव के नाश के लिये मकरध्वज पर कोप कर के छोड़े हुए शिव जी के त्रिशूल को आता हुआ सहसा देख कर भय से पीड़ित होकर विष्णु के शरीर में वह (मकरध्वज) प्रविष्ट हो गया। इस पर विष्णु ने हुंकार किया जिस हुंकार से मूर्च्छित होकर वह (त्रिशूल) भूमि पर गिर पड़ा और वही शूल नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह पांचभौतिक शरीर को चूसता है। यही शूल की प्राथमिक उत्पत्ति है ॥ १–२ ॥

शूलरोपणवत्पीडा यस्याकस्मात्प्रजायते । त्रिशूलसम्भवं चैनं शूलमाहुः पुराविदः ॥ ३ ॥

जिसमें शूल गड़ाने के समान अकस्मात् पीड़ा हो अथवा छेदने के समान ज्ञात हो उसे त्रिशूल से उत्पन्न शूल रोग पुरातत्त्व-विशारदों ने कहा है ॥ ३ ॥

शङ्कुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्रा च वेदना । शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥४॥

इस रोग में शङ्ख स्थान को फोड़ने के समान तीव्र पीड़ा होती है इसलिये इसे 'शूल' कहते हैं ॥ ४ ॥

तस्य सङ्ख्यामाह—

पृथग्दोषैः समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत्। सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

शूल का निदान—वातादिक पृथक् २ दोषों से, त्रिदोष से, आम से और दो-दो दोषों के एकत्र कोप से (द्वन्द्वज दोष से) शूलरोग आठ प्रकार का होता है। इन सब प्रकार के शूलों में प्रायः वायु की ही प्रधानता रहती है ॥ १ ॥

वातिकशूलस्य कारणं लक्षणं चाह—

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।
कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ १ ॥
कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् ।
विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाष्यात् ॥ २ ॥

वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकवस्तिदेशे ।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ३ ॥

वातज शूल—अधिक व्यायाम, अधिक यान (घोड़े-हाथी आदि की सवारी) और अति मैथुन करने से, अधिक जागने से, अधिक शीतल जल-पीने से, मटर, मूंग, अरहर, कोदो और अति रूक्ष पदार्थ का सेवन, अध्यशन (भोजन कर चुकने पर पुनः भोजन) करने से, आघात लगने से, अधिक कषाय-तिक्त तथा अति विरूढ (कठिन) अन्नादि पदार्थ, विरुद्ध (प्रकृतिविरुद्ध, संयोगविरुद्ध तथा ऋतु (समय) विरुद्ध पदार्थ, वल्लूर (सूखे हुए मांस) तथा सूखे हुए शाकादि के सेवन से, मल, शुक्र, मूत्र तथा वात के वेग का अवरोध करने से, अधिक-शोक, उपवास तथा अधिक हँसने और बोलने से बढ़ा हुआ (कुपित) वायु, हृदय, पार्श्व, पीठ, त्रिकदेश और मूत्राशय में शूल उत्पन्न कर देता है। वह शूल जीर्ण में (भोजन के पचने पर), प्रदोष काल में (संध्या में), वर्षा ऋतु में तथा शीतकाल में अधिक तीव्र होता है ॥ १–३ ॥

मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विड्वातसंस्तम्भनतोदभेदैः ।
संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ४ ॥

बार २ शूल शमन होता है और बार २ शूल का वेग-बढ़ जाता है और मल तथा अधोवायु का अवरोध और सूई चुभाने (भेदने) के समान पीडा ये सब लक्षण होते हैं। तथा वह (वातज) शूल स्वेद कर्म, अभ्यङ्ग (तैलमर्दनादि) तथा स्निग्ध एवं उष्ण पदार्थों के भोजन करने से शान्त होता है। ये उपरोक्त निदान तथा लक्षण वातज शूल के हैं ॥ ४ ॥

पैत्तिकस्य कारणं लक्षणं चाह—

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः ।
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ १ ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याऽऽशु करोति शूलम् ।
तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ॥ २ ॥

पित्तज शूल—अधिक क्षार युक्त पदार्थ, अति तीक्ष्ण-उष्ण और दाहकारक पदार्थ, तैल, सेम, तिल की खरी, कुलथी का यूष, अति कटु, अम्ल, कांजी, सुरा आदि के भक्षण से, अधिक क्रोध करने से, अग्नि सेवन, अधिक परिश्रम तथा धूप सेवन से, अधिक मैथुन करने और भोजन के विदग्ध होने से, पित्त शीघ्र कुपित हो कर शूल रोग को उत्पन्न कर देता है, जिससे तृषा, मोह, दाह और नाभिस्थान में पीडा, स्वेद, मूर्च्छा, भ्रम और शोष होता है ॥ १–२ ॥

मध्यन्दिने कुप्यति चार्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च ।
शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ ३ ॥

इस शूल का कोप मध्याह्न, आधीरात, ग्रीष्म और शरद ऋतु में अधिक होता है। यह (पित्तज) शूल शीतकाल में, शीत उपचारों से और स्वादु (मधुर) तथा शीतल पदार्थों के भोजन से शान्त होता है ॥ ३ ॥

श्लैष्मिकस्य कारणं लक्षणं चाह—

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः ।
अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ १ ॥

कफज शूल—आनूपदेश के जीवों के मांस, जलज (मत्स्यादि) जीवों के मांस, जले-फटे दूध का खोवा, दूध के विकार दही आदि के अधिक सेवन, मांस, ईख, पिट्ठी आदि, खिचड़ी, तिल, पूरी आदि के अधिक सेवन तथा अन्यान्य इसी भाँति के कफवर्धक कारणों से कफ कुपित होकर शूल उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

हृल्लासकाससदनारुचिसम्प्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ।
भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च ॥ २ ॥

इस (कफज) शूल में हृल्लास (उबकाई), कास, शिथिलता, अरुचि, लालास्राव, आमाशय में आर्द्रता, कोष्ठ तथा सिर में गुरुता आदि लक्षण होते हैं। यह शूल सदा भोजन करने पर, सूर्योदय के समय, शिशिर ऋतु तथा वसन्त ऋतु में अधिक पीड़ा करनेवाला होता है। अर्थात् ये निदान तथा लक्षण कफज शूल के हैं ॥ २ ॥

सान्निपातिकमाह—**सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्भिषक् सर्वभवं हि शूलम् ।**
सुकष्टमेनं विषवज्रतुल्यं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १ ॥

सन्निपातज शूल—जिस शूल में सब दोषों के सभी प्रकार के लक्षण उपस्थित हों उसे वैद्य सन्निपातज शूल जाने। यह शूल विष तथा वज्र के समान कष्टदायक है। इसे विज्ञ वैद्य त्याज्य कहते हैं क्योंकि यह असाध्य है ॥ १ ॥

आमजमाह—**आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः ।**
कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

आमज शूल – जिस शूल में आटोप (पेट में गुड़गुड़ाहट), उबकाई, वमन, शरीर की गुरुता, शरीर पर आर्द्र वस्त्र लपेटे हुए के समान ज्ञात होना, आनाह, कफ का मुख से स्राव होना, ये सब लक्षण हों तथा कफज शूल के लक्षणों के समान लक्षणों से युक्त हो उसे आमज शूल कहते हैं ॥ १ ॥

द्विदोषजमाह—

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम् । वस्तौ हृत्कण्ठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः ॥ १ ॥

द्विदोषज शूल—जिस शूल में दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण हों उसे द्वन्द्वज और जिस शूल में मूत्राशय, हृदय कण्ठ और पार्श्वदेश इन स्थानों में शूल होवे उसे वात-कफज शूल जानना चाहिये ॥ १ ॥

कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये यः स शूलः कफपैत्तिकः । दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥२॥

जिस शूल में कुक्षिस्थान, हृदय और नाभि के मध्य में शूल होवे उसे कफ-पैत्तिक जानना चाहिये। जिस शूल में घोर दाह तथा ज्वर हो उसे वातपैत्तिक जानना चाहिये ॥ २ ॥

तन्त्रान्तरे—**वातात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ।**
हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ १ ॥

तन्त्रान्तर से द्विदोषज, त्रिदोषज शूल—जो शूल मूत्राशय में हो वह वातज कहा जाता है, जो नाभिस्थान में हो वह पित्तज कहा जाता है तथा जो हृदय-पार्श्व देश तथा कोख में हो वह कफज कहा जाता है तथा जो सम्पूर्ण स्थानों में हो वह सन्निपातज कहा जाता है ॥ १ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥

साध्यासाध्यता—एक दोष से उत्पन्न हुआ शूल साध्य होता है, दो दोषों से उत्पन्न हुआ कष्टसाध्य और सब दोषों से उत्पन्न हुआ शूल तथा अनेक उपद्रवों से युक्त शूल अत्यन्त कठिन तथा असाध्य होता है ॥ १ ॥

उपद्रवानाह—

वेदनातितृषा मूर्च्छा ह्यानाहो गौरवारुची । भ्रमो ज्वरः कृशत्वं च बलहानिस्तथैव च ॥
कासः श्वासश्च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ १ ॥

शूल के उपद्रव—शूल रोग में यदि अतिपीड़ा, तृषा, मूर्च्छा, आनाह, गुरुता, अरुचि, भ्रम, ज्वर, कृशता, बल की हानि, कास, श्वास और हिक्का हो तो इन्हें उपद्रव जानना चाहिये।

अथ सामान्यतः शूलचिकित्सा।

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः। क्षारश्चूर्णश्च गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥

सामान्यतः शूल चिकित्सा—'शूल रोग की शान्ति के लिये वमन कर्म, लङ्घन कर्म, स्वेदन कर्म, पाचन, फलवर्ति, क्षार, चूर्ण और क्षार गुटिका आदि का प्रयोग उत्तम होता है ॥ १ ॥

अथ वातशूलचिकित्सामाह—

ज्ञात्वा तु वातजं शूलं स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्। पायसैः कृशरापिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः॥१॥
आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत्। तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥२॥

वातशूल चिकित्सा—वातजशूल जान कर उसके लिये स्नेहन कर्म और स्वेदन कर्म करना चाहिये और खीर, खिचड़ी और स्निग्ध (स्नेह युक्त) मांसरस आदि पिलाना चाहिये। यह वात आशुकारी (शीघ्रता करने वाला) है इसलिये इसे शीघ्रता से जीतना चाहिये (शमन करना चाहिये)। इस वातज शूल से युक्त रोगी के लिये स्वेदकर्म सुखकर है ॥ १–२ ॥

तिलकल्कस्वेदः—

तुषवारिविनिष्पिष्टतिलकल्कोष्णपोटली। भ्रामिता जठरस्योर्ध्वं मुहुः शूलं विनाशयेत् ॥१॥

तिलकल्क स्वेद—कांजी के साथ तिल को पीस कर कल्क बना कर पोटली में बांध कर गरम कर उदर के ऊपर बार २ घुमाने से शूल को (वातिक शूल को) नष्ट करता है ॥ १ ॥

लेपसेकौ—

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनं काञ्जिकान्वितम्। बिल्वैरण्डतिलैर्वाऽपि पिष्टैरम्लेन पोटली ॥१॥

लेप और सेक—मैनफल को कांजी के साथ पीस कर लेप बना कर नाभि स्थान पर लेप करने से अथवा बेल की छाल, एरण्डमूल की छाल और तिल इनको समान लेकर कांजी के साथ पीस कर पोटली में बांध कर पेट पर फेरने से वातिक शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

कुलत्थादियूषः—वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः।
ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ १ ॥

कुलत्थादियूषः—सेन्धा नमक, सोंठ पीपर, मिर्च, और अनार दाना इनके चूर्णों से युक्त कुलथी के जूस में स्नेह (घृत) मिलाकर पिलाने से वातिक शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

बलादिक्वाथः—

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः। क्वाथः सहिङ्गुलवणः पीतो वातरुजं जयेत् ॥ १ ॥

बलादि क्वाथ—बरिआरा, पुनर्नवा, एरण्डमूल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू समभाग लेकर क्वाथ कर इसमें शुद्ध हींग और सेन्धा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वातज शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

शार्ङ्गधरान्नागरादिक्वाथः—

नागरैरण्डयोः क्वाथः क्वाथ इन्द्रयवस्य वा। हिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥ १ ॥

नागरादि क्वाथ—सोंठ और एरण्डमूल अथवा इन्द्रजौ का क्वाथ बना कर उसमें (दोनों क्वाथों में) शुद्ध हींग और सौवर्चल नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वातज शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

करञ्जादिचूर्णम्—करञ्जसौवर्चलनागराणां सरामठानां समभागिकानाम्।
चूर्णं कदुष्णेन जलेन पीतं समीरशूलं विनिहन्ति सद्यः ॥ १ ॥

करञ्जादि चूर्ण—करञ्ज, सौवर्चल नमक, सोंठ और शुद्ध हींग इन द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण कर थोड़े गरम जल के अनुपान से पान करने से वातज शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

राजिकादिलेपः—

राजिकाशिग्रुकल्कं च गोतक्रेण च पेषितम्। तेन लेपेन हन्त्याशु शूलं वातसमुद्भवम् ॥१॥

राजिकादि लेप—राई और सहिजन की छाल को गाय के तक्र के साथ पीसकर कल्क बना कर उदर पर लेप करने से शीघ्र वात से उत्पन्न शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादिलेपः—

हिङ्गु तैलं सलवणं गोमूत्रेण विपाचितम्। नाभिस्थाने प्रदातव्यं यस्य शूलं सवेदनम् ॥ १ ॥

हिंग्वादि लेप—हींग, तिल का तेल और सेन्धानमक इनको गोमूत्र में मिलाकर पाककर जिसे बड़ी पीड़ा के साथ वातिकशूल हो उसके नाभिस्थान पर लेप करना चाहिये। इससे वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

शूले साटोपे—

तैलमेरण्डजं वाऽपि दशमूलस्य वारिणा। पीतं निहन्ति साटोपं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥१॥

शूल और आटोप में चिकित्सा—एरण्ड का तेल दशमूल के क्वाथ में प्रक्षिप्त कर अथवा शुद्ध हींग और सौवर्चल नमक के चूर्ण को दशमूल के क्वाथ में प्रक्षिप्त कर पान करने से आटोप सहित वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ पित्तशूलचिकित्सामाह।

वामयेत्पित्तशूलार्थं पटोलेक्षुरसादिभिः। पश्चाद्विरेचयेत्सम्यक्पित्तगुल्मविरेचनैः ॥ १ ॥

पित्तशूल चिकित्सा—प्रथम पित्तजशूल के रोगी को परवर के पत्ते और ईख के रस आदि से (आदि पद से अन्य वामकयोग से) वमन कराना चाहिये। पश्चात् पित्तज गुल्म में कहे हुए विरेचक योगों के द्वारा भलीभाँति विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

शतावर्यादिक्वाथः—शतावरी सयष्ट्याह्वा वाट्यालकुशगोक्षुरैः।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम्। पित्तशूलास्रदाहघ्नं हिक्काज्वरवमिच्छिदम् ॥ १ ॥

शतावर्यादि क्वाथ—शतावरी, जेठीमधु, बरिआरा, कुश, गोखरू सम भाग लेकर क्वाथ बनाकर शीतल कर उसमें गुड़ पुराना और मधु इसका प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तशूल, रक्तदोष (स्राव), दाह, हिक्का, ज्वर और वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

बृहत्यादिक्वाथः—

बृहतीगोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुवालकाः। पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥ १ ॥

बृहत्यादिक्वाथ—बड़ी कटेरी, गोखरू, एरण्डमूल, कुश की जड़, कास (राढ़ी) की जड़, ईख की जड़, सुगन्धवाला समान भाग लेकर क्वाथ कर पान करने से कठिन से कठिन पित्तजशूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलारग्वधादिः—

त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः। रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः ॥ १ ॥

त्रिफलारग्वधादि क्वाथ—आंवला, हर्रा, बहेड़ा और अमलतास समभाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर शक्कर और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तपित्त, दाह तथा पित्तशूल को नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिः—

त्रिफलारिष्टयष्ट्याह्वकटुकारग्वधैः शृतम्। पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

त्रिफलादि काथ—आंवरा, हर्रा, बहेरा, नीम की छाल, जेठीमधु, कुटकी, अमलतास का गूदा सम भाग लेकर काथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से दाह और शूल को शमन करता है ॥ १ ॥

शतावरीस्वरसः वृन्दात्—

शतावरीरसं क्षौद्रयुक्तं प्रातः पिबेन्नरः । दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तभयापहम् ॥ १ ॥

शतावरी स्वरस—शतावरी स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर प्रातः काल पान करने से दाह और शूल शान्त होकर सब प्रकार के पित्तजरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

धात्र्यादियोगः—

धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्तीगोस्तनाम्बुना । पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिवारणम् ॥१॥

धात्र्यादि योग—आंवले का स्वरस अथवा विदारीकन्द का स्वरस तथा त्रायमाण और मुनक्का इनके काथ शर्करा के प्रक्षेप को देकर पान करने से पित्तजशूल शमन होता है ॥ १ ॥

धात्रीचूर्णादि—

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् । सगुडां घृतसम्मिश्रां भक्षयेद्वा हरीतकीम् ॥१॥

धात्रीचूर्ण—आंवले के चूर्ण को मधु के साथ लेह बनाकर अथवा हर्रा के चूर्ण को पुराने गुड़ और घृत के साथ मिलाकर भक्षण करने से पित्तजशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडादियोगाः—

गुडशालियवक्षीरं सर्पिर्दुग्धं विरेचनम् । जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनः ॥ १ ॥

गुडादियोग—गुड़ पुराना, शालिधान, जौ और दूध इनका खीर पिलाने से, तथा दूध में घृत मिलाकर पिलाने से, विरेचन देने से, जांगल जीवों के मांस का रस पिलाने से पित्तजशूल शमन होता है ॥ १ ॥

अथ कफशूलचिकित्सामाह ।

शाल्यन्नं जाङ्गलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम् । मद्यानि जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

कफशूल चिकित्सा—कफशूल में शालिधान्य, जांगल जीवों का मांसरस, नीम, कटुरसवाले पदार्थ, मद्य और पुराने गेहूँ इनका प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

त्रिलवणादिचूर्णम्—

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् । सुखोष्णेनाम्भसा पीतं कफशूलहरं परम् ॥ १ ॥

त्रिलवणादि चूर्ण—सेन्धानमक, सोंचर नमक (सौवर्चल), विडनमक, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, शुद्धहींग, समभाग लेकर चूर्णकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से शूल को नष्ट करने के लिये उत्तम है ॥ १ ॥

त्रिदोषशूलचिकित्सामाह ।

शङ्खचूर्णयोगः—

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गु व्योषसंयुतम् । उष्णोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ १ ॥

शङ्खचूर्णयोग—शङ्खभस्म, सेन्धानमक, शुद्धहींग, सोंठ, पीपरि और मरिच सम भाग लेकर चूर्णकर उष्णोदक के अनुपान से पान करने से त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

मण्डूरावलेहः—

गोमूत्रसिद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २ ॥

मण्डूरावलेह—गोमूत्र के योग से सिद्ध किया हुआ मण्डूरभस्म और हर्रा-बहेरा तथा आंवला इनका चूर्ण, सब समान भाग लेकर मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से त्रिदोषजशूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ आमशूलचिकित्सामाह ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी । शेषमामहरं सर्वं यच्चाग्निविवर्धनम् ॥ १ ॥

आमशूल चिकित्सा—आम से उत्पन्न शूल में कफजशूल को नष्ट करने वाली सम्पूर्ण क्रियायें तथा आम को नष्ट करनेवाली सम्पूर्ण अन्य क्रिया (औषध-पथ्यादि) और जो २ अग्निवर्धक क्रियायें हैं उन्हें करनी चाहिये ॥ १ ॥

चित्रकादिक्वाथः—

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यजलैः शृतम् । सहिङ्गुसैन्धवबिडमामशूलहरं परम् ॥ १ ॥

चित्रकादि काथ—चित्रकमूल, पिपरामूल, एरण्डमूल, सोंठ, धनियां और सुगन्धबाला सम भाग लेकर काथ कर उसमें शुद्धहींग, सेन्धानमक और विडनमक का प्रक्षेप देकर सेवन कराने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

एरण्डादिक्वाथः—**एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः ।**
सक्षारहिङ्गुलवणोरुबुतैलमिश्रः श्रोण्यंसपृष्ठहृदयस्तनरुक्षु पेयः ॥ १ ॥

एरण्डादि काथ—एरण्डमूलत्वक्, बेल की छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, बिजौरा नीबू, पत्थरचूर, सोंठ, पीपरि, मरिच, सम भाग लेकर काथ कर इसमें यवाखार, शुद्धहींग, सेन्धानमक और एरण्डतैल का प्रक्षेप देकर पान करने से श्रोणि, अंसदेश, पीठ, हृदय और स्तन की पीड़ा शमन होती है ॥ १ ॥

एरण्डादिक्वाथयोगः—**एरण्डतैलं षड्भागं लशुनस्य तथाष्टकम् ।**
एकं हिङ्गु त्रिसिन्धूत्थं सर्वमेकत्र मर्दयेत् । त्रिनिष्कं भक्षयेच्चानु ह्यामशूलप्रशान्तये ॥ १ ॥

एरण्डतैलादियोग—एरण्ड का तेल ६ भाग, शुद्ध लहसुन आठ भाग, शुद्धहींग एक भाग, सेंधानमक तीन भाग, लेकर चूर्णकर योग्य मात्रा व अनुपान के द्वारा (उष्णोदक से) ३ निष्क (३ शाण) की मात्रा से [कहीं २ एक शाण की मात्रा भी है] सेवन करने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिङ्गुत्रिगुणसैन्धवं तस्मात्त्रिगुणतैलमैरण्डम् । तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदावर्तशूलघ्नम् ॥२॥

शुद्ध हींग १ भाग, सेंधानमक ३ भाग, एरण्डतैल ९ भाग, लहसुन का रस २७ भाग इन सबको एकत्र मिलाकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से गुल्म, उदावर्त और शूल को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ द्वन्द्वजशूलचिकित्सा ।

कण्टकार्यादिक्वाथः—**निदिग्धिका बृहत्यौ च कुशकाशेक्षुबालकाः ।**
श्वदंष्ट्रैरण्डमूलं च वारिणा सह पाचयेत् । पिबेत्सशर्करक्षौद्रं शूले पित्तानिलात्मके ॥ १ ॥

कण्टकार्यादि काथ—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कुश की जड़, कास की जड़, ईख की जड़, सुगन्धबाला, गोखरू और एरण्डमूल सम भाग लेकर काथ कर शीतल होने पर शक्कर और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने के लिये पित्तज-वातज मिश्रित द्वन्द्वज शूल में देना चाहिये ॥ १ ॥

पटोलादिः—

पटोलत्रिफलारिष्टामृतं क्षौद्रयुतं पिबेत् । पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

पटोलादि काथ—परवर की पत्ती, हर्रा, आंवरा, बहेरा, नीम की छाल, गुरुचि समभाग लेकर काथकर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पित्त-कफज शूल, ज्वर, वमन, दाह और शूल में पान करने के लिये देना चाहिये । इससे ये रोग शमन होते हैं ॥ १ ॥

द्राक्षादिकाथः—

द्राक्षाटरूषयोः क्वाथः श्लेष्मपित्तरुजं जयेत् । पित्तश्लेष्मोद्भवं शूलं विरेकवमनैर्जयेत् ॥ १ ॥

द्राक्षादि काथ—दाख और अडूसा समान भाग लेकर क्वाथ कर सेवन करने से कफ-पित्तज शूल को नष्ट करता है । पित्त-कफज शूल को विरेचन तथा वमन कराकर जीतना चाहिये ॥ १ ॥

क्षाराम्बुयोगः—

क्षारोदकं पिबेदुष्णं पिप्पलीलवणान्वितम् । वातश्लेष्मोद्भवं शूलं कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥१॥

क्षाराम्बुयोग—क्षार का जल (यवाखारादिकों का घोल) उष्णकर उसमें पीपरि के चूर्ण और सेन्धानमक मिलाकर पान करने से वात-कफज शूल और कुक्षिशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

शूले साधारणविधिः ।

त्रिफलादिविरेचनम्—

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षीररसैः पृथक् । एरण्डतैलद्विगुणैर्हितं शूले विरेचनम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि विरेचन—समान मिलित त्रिफला का क्वाथ, गोमूत्र, मधु, दूध अथवा मांसरस इनमें से कोई एक द्रव्य दो भाग और एरण्डतैल एकत्र कर सेवन करने से विरेचन होकर शूल शमन होता है ॥ १ ॥

बीजपूरादिस्वरसः—

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत् । पार्श्वहृद्बस्तिशूलानि कोष्ठवायुं च दारुणम् ॥ १ ॥

बीजपूरादि स्वरस—बिजौरा नीबू के स्वरस में मधु और क्षार (यवाखार) मिलाकर पान करने से पार्श्व, हृदय और बस्ति का शूल शमन होता है और कोष्ठ का कठिन वात भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्यादिकाथः—पथ्याशक्रयवपुष्करमूलयुक्तां निष्क्वाथ्य हिङ्गुजटिलातिविषासमेताम् ।
पीत्वा सुखोष्णमथ वातकृतं सशूलमामोद्भवं कफकृतं च निहन्ति तूर्णम् ॥१॥

पथ्यादि काथ—हर्रा, इन्द्रजौ और पुहकरमूल सम भाग लेकर काथ कर उसमें शुद्धहींग, पीपरि और अतीस के चूर्ण का प्रक्षेप देकर कुछ गरम रहे तभी पीने से वातजशूल, आमशूल और कफज शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मातुलुङ्गादिः—

मातुलुङ्गरसो वाऽपि शिग्रुक्वाथस्तथा परः । सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्बस्तिशूलहा ॥१॥

मातुलुङ्गादि योग—बिजौरा नीबू के रस अथवा सहिजन के काथ में यवाखार और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से पार्श्व, हृदय और बस्ति शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

मातुलुङ्गरसे सर्पिः सहिङ्गुलवणान्वितम् ।
सुखोष्णं पाययेत्तद्धि विड्विबन्धानुलोमनम् । कुक्षिहृत्पार्श्वशूलेषु वेदना चोपशाम्यति ॥१॥

बिजौरे नीबू के रस में गोघृत, शुद्ध हींग और सेंधानमक मिलाकर कुछ गरम कर पिलाने से मलावरोध नष्ट होता है और वायु का अनुलोमन होता है तथा कुक्षि, हृदय और पार्श्वदेश के शूल की पीड़ा शमन होती है ॥ १ ॥

बिल्वमूलादिः—

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् । हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ १ ॥

बिल्वमूलादि काथ—बेल की जड़, एरण्डमूल, चित्रकमूल, सोंठ इनके काथ में शुद्ध हींग और सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर सेवन करने से शीघ्र शूल शमन होता है ॥ १ ॥

हरीतकीयोगः—

मूत्रान्तःपाचितां शुष्कां लोहचूर्णसमन्विताम् । सगुडामभयां दद्यात्सर्वशूलोपशान्तये ॥१॥

हरीतकी योग—गाय के मूत्र में हरड़ को पाक कर सुखा लेवे इसमें समान लोहभस्म और गुड़ मिला कर सेवन करने से सब प्रकार के शूल शमन होते हैं ॥ १ ॥

लोहत्रिफलायोगः—

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् । प्रयोज्य मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ १ ॥

लोहत्रिफला योग—तीक्ष्ण लोह की भस्म में सम भाग त्रिफला का चूर्ण मिला कर-मधु और गोघृत के अनुपान से सेवन करने पर सब प्रकार के शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

तत्रादौ तुम्बुर्वाद्यं चूर्णम् ।

चूर्णं तुम्बुरुरामठत्रिलवणक्षाराजमोदाभयाविडङ्गत्र्यूषणपुष्कराह्वयकृतं कुम्भत्रिभागान्वितम् ।
मन्दोष्णेन जलेन पीतमखिलं शूलं सगुल्मोदरा-
ध्मानाजीर्णविबन्धमामपवनानाहौ च शीघ्रं जयेत् ॥ १ ॥

तुम्बुर्वादि चूर्ण—तेजबल का फल, शुद्ध-हींग, सेंधानमक, सोंचर नमक, विडनमक, यवाखार, जवाइन, हर्रा, बायबिरंग, सोंठ, मरिच, पीपरि और पुहकर मूल प्रत्येक एक २ भाग और दन्ती का मूल ३ भाग लेकर चूर्ण कर थोड़े उष्ण जल से सेवन करने (पान करने) से सम्पूर्ण शूल, गुल्म, उदर, आध्मान, अजीर्ण, विबन्ध (वात एवं मल का अवरोध), आमवात और आनाहरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्विक्षाराद्यम्—विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्भसा तु द्विक्षारहिङ्गुलवणत्रयपुष्कराणाम् ।
चूर्णं पिबेद्धृदयपृष्ठकटिग्रहाम-पक्वाशयार्तिभृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥ १ ॥

द्विक्षारादि योग—सोंठ, एरण्डमूल, दशमूल की पृथक २ दसो ओषधियाँ और जौ समान लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार, सज्जीखार, शुद्ध हींग, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विड नमक, तथा पुष्करमूल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से हृदय, पीठ, कटिग्रह, आमाशय और पक्वाशय का कठिन शूल, ज्वर तथा गुल्म शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादि—हिङ्ग्वम्लवेतसत्रिपटुप्रवद्कटुशटीवृक्षाम्लदीप्यालकं
पाठाजाज्यजगन्धमूलहपुषाद्विक्षारसाराभयम् ।
हिध्माध्मानविबन्धवर्ध्मकसनश्वासाग्निसादारुचि-
प्लीहार्शोऽखिलशूलगुल्मगलहृद्रोगाश्मपाण्डुप्रणुत् ॥ १ ॥

हिंग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, अम्लवेत, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विडनमक, वच, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, काली मरिच, कचूर, वृक्षाम्ल (कोकम, चुक्र अथवा अमलकुरा), अजवाइन, अकरकरा, पुरइन पाढ़ी, जीरा, वनजवाइन की जड़, हाऊबेर, यवाखार, सज्जीखार, लोहभस्म और हर्रा समान लेकर प्रथम सब ओषधियों का चूर्ण बना कर तब लोहभस्म मिलाकर भली-भाँति मर्दन कर इस चूर्ण को यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से हिक्का, आध्मान, विबन्ध, वृद्धि, कास, श्वास, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, अर्श, सब प्रकार के शूल, गुल्म, गलरोग, हृद्रोग, अश्मरी और पाण्डु ये सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

नाराचचूर्णम्—

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृतं स्यात्पलोन्मितम् । खण्डात्पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥
कर्षोन्मितं लिहेदेतत्क्षौद्रेणाऽऽध्माननाशनम् । गाढविट्कोदरकफपित्तशूलानि नाशयेत् ॥२॥

नाराच चूर्ण—पीपरि का चूर्ण १ कर्ष, निशोथ चूर्ण तथा शक्कर एक २ पल सबको एकत्र

मर्दन कर इस चूर्ण को १ कर्ष की मात्रा से मधु के अनुपान से चाटने से आध्मान रोग, मल की कठिनता, उदर और कफ-पित्त के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शङ्खवटी—

चिञ्चाक्षारं पञ्चपलं लवणानि पलं पलम् । सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत्प्रस्थद्वयैर्जम्बीरवारिभिः ॥ १ ॥
शङ्खं दशपलं तप्त्वा निक्षिपेत्सप्तवारतः । तत्समस्तं विशोष्याथ हिङ्गु व्योषं चतुष्पलम् ॥२॥
बलिसूतविषाख्यानामपलार्धं च पृथक्पृथक् । एतत्समस्तं सम्मर्द्य जम्बीराम्लैर्दिनत्रयम् ॥ ३ ॥
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद् बुधः । एकैकां भक्षयेत्प्रातः कोष्णतोयं पिबेदनु ॥ ४ ॥
सर्वशूलं हरेद् गुल्ममजीर्णं परिणामजम् । अतिसारगदं हन्याद् ग्रहणीं च विशेषतः ॥ ५ ॥

शङ्खवटी—इमली का क्षार ५ पल, पाँचों नमक पृथक् २ एक एक पल लेकर चूर्ण कर जमीरी नीबू के दो प्रस्थ रस में मिला देवे पश्चात् इसमें शुद्ध शङ्ख १० पल लेकर अग्नि पर तपा २ कर सात बार बुझावे, फिर इसको भली-भाँति मर्दन कर सुखा कर इसमें शुद्ध हींग, सोंठ, मरिच, पीपरि इनका चूर्ण ४-४ पल मिलावे और शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध विष इनको आधा २ पल लेकर पारद गन्धक की कज्जली कर फिर विष उसके साथ मर्दन कर सबको एकत्र कर जमीरी नीबू के रस में ३ दिन तक मर्दन कर बेर की गुठली के प्रमाण की वटी बना कर प्रातःकाल एक २ वटी उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के शूल, गुल्म, अजीर्ण, परिणाम शूल, अतीसार रोग और विशेष कर ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

सूर्यप्रभावटी—व्योषग्रन्थिवचाग्निहिङ्गुजरणद्वन्द्वं विषं निम्बुक-
द्रावैरार्द्रकजै रसैर्विमृदितं तुल्यं मरीचोपमा ।
कर्तव्या वटिकाऽथ सा दिनमुखे भुक्ता कवोष्णाम्बुना ।
शूलं त्वष्टविधं निहन्ति सहसा सूर्यप्रभा नामतः ॥ १ ॥

सूर्यप्रभावटी—सोंठ, पीपरि, मरिच, पिपरामूल, वच, चित्रकमूल शुद्ध हींग, जीरा और कृष्ण जीरा, शुद्ध मीठा विष, लेकर उत्तम चूर्ण कर जमीरी नीबू के रस में मर्दन करे फिर अद्रक के रस में मर्दन कर मरिच के समान वटी बना कर प्रायःकाल उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से आठों प्रकार के शूल को यह 'सूर्यप्रभा' नाम की वटी सहसा नष्ट कर देती है ॥ १ ॥

खण्डपिप्पली—

कणाचूर्णं तु कुडवं षट्पलं हविषस्तथा । पलषोडशकं खण्डं शतावर्याः पलाष्टकम् ॥ १ ॥
क्षीरप्रस्थद्वये साधं लेहीभूते तदुद्धरेत् । त्रिजातमुस्तधान्याकं शुण्ठीमांसीद्विजीरकम् ॥२॥
अभयाऽऽमलकं चैव चूर्णं द्वादशकार्षिकम् । तदर्धं मरिचं भागं सारं खादिरमेव च ॥ ३ ॥
मधुत्रिपलसंयुक्तं खादेत्सिद्धं यथाबलम् ।
शूलारोचकहृल्लासच्छर्दिपित्ताम्लरोगनुत् । अग्निसन्दीपनी हृद्या खण्डपिप्पलिका मता ॥४॥

खण्डपिप्पली योग—पीपरि का चूर्ण एक कुडव (आधामानी) गोघृत ६ पल, शर्करा १६ पल शतावरी स्वरस ८ पल और गोदुग्ध २॥ प्रस्थ इनको लेकर अवलेह पाक की विधि से पाक करे जब लेह सिद्ध हो जावे तब उतारकर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, जटामांसी, जीरा और कृष्णजीरा, हर्रा और आँवला इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण पृथक् २ बारह २ कर्ष लेवे और मरिच का चूर्ण ६ कर्ष, खैर का चूर्ण १२ कर्ष लेकर एकत्र मिलाकर मर्दन कर शीतल होने पर मधु ३ पल मिलाकर रख लेवे । इस अवलेह को अग्निबल के अनुसार सेवन करने से शूल, अरुचि, उबकाई, वमन और अम्लपित्तरोग नष्ट होते हैं और यह लेह अग्नि को दीप्त करता है और हृदय को हितकर है । इसका नाम खण्डपिप्पली (लेह) है ॥ १-४ ॥

घृतम्—

घृताच्चतुर्गुणो देयो मातुलुङ्गरसो दधि । शुष्कमूलककोलाम्लकषायो दाडिमाम्भसा ॥ १ ॥
विडङ्गलवणक्षारं पञ्चकोलयवानिभिः । पाठामूलककल्केन सिद्धं शूले घृतं मतम् ॥ २ ॥
हृत्पार्श्वशूलं वै श्वासं कासं हिक्कां तथैव च । वर्ध्मगुल्मप्रमेहार्शोवातव्याधींश्च नाशयेत् ॥३॥

घृत प्रकरण—गाय का मूर्च्छित घृत एक प्रस्थ और घृत से चौगुना मातुलुङ्ग (बिजौरा) नीबू का रस, दही, शुष्कमूलक (सूखीमूली) का क्राथ, बेर के फल अथवा अम्लवेत के फल का क्राथ और अनार का रस प्रत्येक ४ प्रस्थ लेकर पृथक् २ पाककर इनमें बायबिडंग, सेंधानमक, यवाखार, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, अजवाइन, पुरइनपाढ़ी की जड़, समान मिश्रित ½ प्रस्थ लेकर कल्ककर उपर्युक्त ओषधियों में मिलाकर घृत सिद्ध कर उतार-छानकर इस घृत का सेवन करने से शूल में उत्तम लाभ करता है और हृदय तथा पार्श्वशूल, श्वास, कास, हिक्का, वृद्धिरोग, गुल्म, प्रमेह, अर्श और वात-व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ रसौ ।

शूलगजकेसरी रसः—

रसविषगन्धकपर्दक्षारेण सिन्धुपिप्पलीविश्वैः । अहिवल्ल्यम्बुविघृष्टः शूलेभहरिर्द्विगुञ्जोऽयम् ॥

शूलगजकेसरी रस—शुद्धपारद, शुद्धमीठा विष, शुद्धगन्धक, कौड़ीभस्म, यवाखार, सेंधानमक, पीपरि का चूर्ण और सोंठ का चूर्ण समान भाग लेकर पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर सबको एकत्र मिलाकर पान के रस में मर्दन कर २ रत्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह शूलगजकेसरी नामक रस शूल तथा अन्य कई प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अन्यच्च—क्षारं कपर्दाद्विषसैन्धवौ च व्योषं च सम्मर्द्य भुजङ्गवल्ल्याः ।
रसेन गुञ्जाप्रमितः प्रदिष्टः समीरशूलेभहरिः प्रचण्डः ॥ १ ॥

यवाखार, कौड़ीभस्म, शुद्धमीठा विष, सेंधानमक, सोंठ, मरिच, पीपरि समान भाग, लेकर उत्तम चूर्ण कर पान के रस के साथ मर्दन कर १ रत्ती के प्रमाण की वटी बनाकर सेवन करने से शूल नष्ट होता है इसका नाम 'समीरशूलगजकेसरी' है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पटोलं कारवेल्लं च वास्तुकं शिग्रुजं तथा । सामुद्रं लशुनं वाऽथ शालिः संवत्सरोषितः ॥१॥
एरण्डतैलं सुरभीजलं च तप्ताम्बु जम्बीररसोऽपि कुष्ठम् ।
लघूनि च क्षारजासि चेति वर्गो हितः शूलगदार्दितेभ्यः ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—परवर, करैली, बथुआ, सहिजन, सामुद्रनमक, लहसुन, एक वर्ष का पुराना शालिधान का चावल, एरण्डतैल, गोमूत्र, उष्ण जल, जमीरी नीबू का रस, कूट, लघु पदार्थ और क्षार चूर्णादि ये सब शूल के रोगियों के लिये हितवर्ग (हितकर अथवा पथ्य) कहे गये हैं ॥१-२॥

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम् । रूक्षतिक्तकषायाणि शीतलानि गुरूणि च ॥ ३ ॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं वैदलं कटुकानि च । वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवाप्नरः ॥ ४ ॥

विरुद्ध भोजन, रात्रि जागरण, विषम भोजन, रूक्ष, तिक्त, कषाय, शीतल और गुरु पदार्थ, व्यायाम, मैथुन, मदिरा, दाल, कटु पदार्थ, वेगावरोध (मूत्र-मलादि का अवरोध), शोक और क्रोध ये सब शूल का रोगी त्याग दे अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ३-४ ॥

अथ परिणामशूलनिदानप्रारम्भः ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तदा । कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ॥ १ ॥

परिणाम शूल का निदान—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित हुआ बलवान वायु कफ और पित्त में व्याप्त होकर शूल को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—

बलासः प्रच्युतः स्थानात्पित्तेन सह मूर्च्छितः । वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने ॥१॥
कुक्षौ जठरपार्श्वेषु नाभ्यां बस्तौ स्तनान्तरे । पृष्ठमूलप्रदेशेषु सर्वेष्वेषु वा पुनः ॥ २ ॥

जब कफ अपने स्थान से च्युत होकर पित्त के साथ मूर्च्छित हो जाता है तब वायु उसको ले जाकर भोजन के पचते समय में शूल को उत्पन्न करता है जिससे कोखों में, उदर में, पार्श्वस्थान में, नाभि स्थान में, मूत्राशय में, स्तनों में, पृष्ठमूल (त्रिक देश) भाग में शूल होता है ॥ १–२ ॥

भुक्तमात्रेऽथवा वान्ते जीर्णे चान्ने प्रशाम्यति । षष्टिकव्रीहिशालीनामोदनेन च वर्धते ॥३॥

भोजन कर लेने पर, वमन हो जाने पर तथा अन्न के जीर्ण हो जाने पर शूल में शान्ति आ जाती है । साठी धान, जौ और शालिधान के भात के सेवन से बढ़ता है ॥ ३ ॥

तत्परीणामजं शूलं दुर्विज्ञेयं महागदम् । आहाररसवाहानां स्रोतसां दुष्टिहेतुकम् ॥ ४ ॥

उस शूल को आहार के रसों को वहन करने वाली नाड़ियों के दूषित होने के कारण उत्पन्न हुआ दुर्विज्ञेय महारोग को परिणाम शूल कहते हैं ॥ ४ ॥

केचिदन्नद्रवं प्राहुरन्ये तत्पक्तिदोषजम् । पक्तिशूलं वदन्त्येके केचिदन्नविदाहजम् ॥ ५ ॥

कोई २ आचार्य उसे अन्नद्रव शूल अथवा पक्तिदोष से उत्पन्न (पक्तिशूल) कहते हैं तथा कोई आचार्य 'अन्नविदाहज शूल' कहते हैं ॥ ५ ॥

तस्य सामान्यलक्षणमाह—

भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् । तस्य लक्षणमेतद्धि समासेन प्रकीर्त्यते ॥ १ ॥

परिणाम शूल के सामान्य लक्षण—जिस शूल में भोजन के पचने के समय शूल हो उसे 'परिणामज शूल' कहते हैं । उसका लक्षण यहाँ संक्षेप से कहते हैं ॥ १ ॥

वातिकमाह—

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः । स्निग्धोष्णोपशमं प्रायो वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥१॥

वातादिक परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में आध्मान, पेट में आटोप, मल-मूत्र का अवरोध हो, मन खिन्न रहे, कम्पन हो तथा स्निग्ध और उष्ण प्रक्रिया से प्रायः शूल शान्त हो जावे उसे वातिक परिणाम शूल कहते हैं ॥ १ ॥

पैत्तिकमाह—

तृष्णादाहारुचिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् । शूलं शीतशमं प्रायः पैत्तिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ १ ॥

पैत्तिक परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में तृषा, दाह, अरुचि, स्वेद आदि शूल के समय होवे, और कटु, अम्ल तथा लवणरस के व्यवहार से शूल में वृद्धि हो और प्रायः करके शीतल पदार्थ के सेवन से शूल शान्त हो जावे उसे वैद्य 'पैत्तिक परिणाम शूल' कहते हैं ॥ १ ॥

श्लैष्मिकमाह—

छर्दिहृल्लाससम्मोहस्वल्परुग्दीर्घसन्तति । कटुतिक्तोपशान्तं हि तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥१॥

कफज परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में वमन, हृल्लास, मोह, मन्द २ शूल हो तथा चिरकाल तक शूल का वेग बना रहे एवं जो शूल कटु और तिक्त पदार्थों के सेवन से शान्त हो उसे 'कफज परिणाम शूल' जानना चाहिये ॥ १ ॥

द्विदोषजमाह—**संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ।**

द्विदोषज परिणाम शूल—दो दोषों के मिलित लक्षण जिस परिणाम शूल में हों उसे द्विदोषज जानना चाहिये ॥

सान्निपातिकमाह—**त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम् ॥ १ ॥**

सान्निपातिक परिणाम शूल—तीनों दोषों के मिलित लक्षण जिसमें हों वह त्रिदोषज है । वह त्रिदोषज तथा जिस परिणाम शूल में रोगी के मांस, बल और अग्नि क्षीण हो गये हों, ये दोनों असाध्य हैं ॥ १ ॥

अन्नद्रवाख्यम्—

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे च यच्छूलमुपजायते । तदप्यसाध्यं नित्यत्वादुक्तं वैद्यविशारदैः ॥ १ ॥

अन्नद्रव शूल—जो शूल अन्न के पचने पर तथा पचने के समय अथवा अजीर्ण में भी उत्पन्न हो जाता है वह नित्य है अत एव असाध्य है । ऐसा वैद्यविशारदों ने कहा है ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा । न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २ ॥

जो शूल पथ्य करने पर अथवा कुपथ्य करने पर अथवा भोजन करने पर वा नहीं करने पर किसी भी प्रकार से नहीं शान्त होता है वह शूल 'अन्नद्रव' कहलाता है ॥ २ ॥

अथायं प्रायेण त्रिदोषविकृतित्वादसाध्यः—

आनाहो गौरवं छर्दिर्भ्रमस्तृष्णा ज्वरोऽरुचिः । कृशत्वं बलहानिश्च वेदनाऽतिप्रवर्तते ॥ १ ॥
उपद्रवा दशैवैते शूले च परिणामजे । सोपद्रवोऽप्यसाध्यः स्यात्कृच्छ्रेण निरुपद्रवः ॥ २ ॥

त्रिदोष के विकार से परिणाम शूल की असाध्यता—आनाह, गुरुता, वमन, भ्रम, तृषा, ज्वर, अरुचि, कृशता, बल की हानि और अधिक पीड़ा होना, ये दस परिणाम शूल के उपद्रव हैं । उपद्रव सहित परिणाम शूल भी त्रिदोषज की भाँति असाध्य है और उपद्रव रहित परिणाम शूल–कष्ट साध्य है ॥

अथ तच्चिकित्सा ।

लङ्घनं प्रथमं कुर्याद्वमनं च विरेचनम् । वस्तिकर्म परं चात्र पक्तिशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

परिणाम शूल चिकित्सा—परिणामशूल में प्रथम लङ्घन, वमन और विरेचन करा कर वस्ति कर्म कराने से शूल शमन हो जाता है ॥ १ ॥

वातजं स्नेहयोगेन पित्तजं रेचनादिना ।
कफजं वमनाद्यैश्च पक्तिशूलमुपाचरेत् । द्वन्द्वजं स्नेहयोगेन तत्त्रियोगेन सर्वजम् ॥ २ ॥

वातजनित परिणाम शूल को स्नेहयुक्त योगों से, पित्तजनित को रेचनादि से, कफजनित को वमनादि से शमन करे और द्वन्द्वज परिणाम शूल को स्नेहयुक्त योगों से तथा तीनों दोषों में कहे गये योगों से त्रिदोषज को विचारपूर्वक चिकित्सा करके शमन करे ॥ २ ॥

कल्काः—

विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः । परिणामभवं शूलं नाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १ ॥

कल्क प्रकरण—विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) की जड़ के कल्क में शर्करा–मधु और घृत मिला कर सेवन करने से सात दिन में परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

शुण्ठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् । परिणामभवं शूलमामवातश्च नश्यति ॥ २ ॥

सोंठ, तिल और पुराना गुड़ इनको समान लेकर कल्ककर दूध के अनुपान से सेवन करने से परिणाम शूल और आमवात नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ।
उग्रं परिणतिशूलं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ३ ॥

सोंठ, तिल और पुराने गुड़ के कल्क दूध के साथ पकाकर जो सेवन करता है उसका अतिकठिन परिणामशूल सात दिन में अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

शम्बूकभस्मयोगः—

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात्। पक्तिजं विनिहन्त्याशु शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥

शम्बूकभस्म योग—शम्बूक (घोंघा) की भस्म को उष्ण जल के अनुपान से सेवन करने से शीघ्र पक्तिशूल इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार विष्णु भगवान से असुर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शम्बूकादिवटिका—

शम्बूकमूषणं चैव पञ्चैव लवणानि च। समांशा गुटिकां कृत्वा कलम्बु करसेन च ॥ १ ॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेच्च यथाबलम्। शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥२॥

शम्बूकादि वटिका—शम्बूक भस्म, मरिच, पृथक् २ पांचो नमक समान लेकर चूर्णकर कलम्बुक (करमी) के पत्ते के रस के साथ मर्दन कर वटी बनाकर प्रातःकाल अथवा भोजन के समय बलानुसार मात्रा से सेवन करने से मनुष्य परिणामशूल से (हठात) अवश्य मुक्त हो जाता है ॥१-२॥

क्षीरमण्डूरः—

लोहकिट्टं पलान्यष्टौ गोमूत्रार्धाढके पचेत्। परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति न संशयः ॥ १ ॥

क्षीर मण्डूर—८ पल शुद्धमण्डूर को २ प्रस्थ गोमूत्र में मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर गाढ़ा हो जाने पर उतारकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से शीघ्र तथा निश्चित ही परिणाल शूल नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

तारमण्डूरः—

विडङ्गंचित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च। नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ॥१॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्वा मूत्राद् द्विगुणको गुडः। शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया। प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः॥३॥
योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम्।
कामलां पाण्डुरोगं च शोथमेदोनिलार्शसाम्। शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया प्रकटीकृतः ॥४॥

तारामण्डूर—बायबिडंग, चित्रकमूल, चव्य, आंवरा, हर्रा, बहेरा, सोंठ, मरिच, पीपरि, प्रत्येक एक २ भाग लेवे और मण्डूर शुद्ध ९ भाग, गोमूत्र अठारह भाग और पुराना गुड़ ३६ भाग लेकर प्रथम गोमूत्र, मण्डूर और गुड़ को एकत्र कर गुड़पाक विधि से पाक सिद्ध कर उसमें उपर्युक्त ९ ओषधियों के श्लक्ष्ण चूर्ण को मिलाकर पिण्ड के समान हुए उस औषध को स्निग्ध पात्र में रख लेवे। इसको १ कर्ष के प्रमाण की मात्रा से भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से यह योग कठिन पक्तिशूल को शीघ्र शमन करता है और कामला, पाण्डुरोग, शोथ, मेदोरोग, वातव्याधि तथा अर्शरोग को नष्ट करता है। शूल से पीड़ितों पर कृपा करके ताराने इस योग को प्रकट किया है। इसलिये इस योग का नाम 'तारामण्डूर' है ॥ १-४ ॥

भीममण्डूरः—

यवक्षारकणाशुण्ठीकोलग्रन्थिकचित्रकात्। प्रत्येकं पलमादाय प्रस्थं लोहस्य किट्टतः ॥ १ ॥
शनैः पचेदयस्पात्रे यावद्दर्वीप्रलेपनम्। दत्त्वाऽष्टगुणगोमूत्रं किट्टाच्छुद्धाद्विचक्षणः ॥ २ ॥
ततोऽक्षमात्रान्वटकान्योजयेत्सप्तरात्रतः।
आदिमध्यावसानेषु भोजनस्योचितस्य वै। स भीमवटको ह्येष परिणामरुगन्तकः ॥ ३ ॥

भीममण्डूर—जवाखार, पीपरि, सोंठ, बैर, पिपरामूल और चित्रकमूल प्रत्येक एक २ पल शुद्ध मण्डूर एक प्रस्थ लेकर प्रथम मण्डूर को अठगुने गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक लोहे के पात्र में मन्दाग्नि से पाक करे गाढ़ा होने पर उसमें उपर्युक्त जवाखारादि के श्लक्ष्ण चूर्ण को मिलाकर एक कर्ष के प्रमाण की वटी बना कर सात रात तक भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से यह भीममण्डूर शूल को निश्चित नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

शतावरीमण्डूरः—

संसाध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम्। शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा ॥ १ ॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः। विपचेत्सर्वमेकस्थं यावत्पिण्डत्वमाप्नुयात् ॥२॥
सिद्धं तु भक्षयेन्मध्ये प्रान्ते भुक्तस्य चाग्रतः। वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम् ॥३॥
निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः।

शतावरी मण्डूर—शुद्ध मण्डूर का चूर्ण, शतावरि का रस, दही और दूध प्रत्येक ८ पल, और गाय का घृत १ पल, लेकर एकत्र कर विधिपूर्वक पाक करे जब पिण्ड बँधने लगे तब उतार कर रख लेवे और इसको भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से वातज शूल, पित्तज शूल और परिणाम शूल नष्ट होते हैं। मण्डूर का यह योग निश्चित ही शूल को नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १-३ ॥

दुग्धे निर्वापणं कार्यं यद्वा बहुसुतारसे। अथवा चोभयोरेव लोहकिट्टस्य सप्तधा ॥ ४ ॥
रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद्यदि मर्दनात्। तदा पाकं विजानीयान्मण्डूरस्य भिषग्वरः॥

मण्डूर पाकविधि—मण्डूर को तपा कर दूध में अथवा शतावरि के रस में अथवा दोनों में सात २ बार बुझावे इस प्रकार की क्रिया करने पर जब मण्डूर का रस और गन्ध शुभ हो जावे और पाक मर्दन करने पर बत्ती के समान हो जावे तब मण्डूर का पाक उत्तम हुआ जानना चाहिये ॥ ४-५ ॥

लोहगुग्गुलुः—

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पौष्करं वचा। चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥
अयोभस्म पलान्यष्टौ गुग्गुलुस्तावदेव तु। सर्पिषा मेलयित्वाऽथ कर्षमात्रवटीकृतम् ॥२॥
अद्यादनु पिबेत्कोष्णं वारि शूलाद्विमुच्यते। जीर्णान्नसम्भवात्पाण्डोः कामलाया हलीमकात् ॥

लोहगुग्गुलु—आँवरा, हर्रा, बहेरा, नागरमोथा, सोंठ, पीपरि, मरिच, बायबिडंग, पुहकरमूल, वच, चित्रकमूल, मुलहठी एक-एक पल लेकर उत्तम चूर्ण कर उसमें लोहभस्म तथा शुद्ध गुग्गुल ८-८ पल लेकर मिलाकर उसमें घृत पर्याप्त मात्रा में मिलाकर कूटकर एक कर्ष के प्रमाण की वटी बना लेवे। इसको खाकर उष्ण जल का अनुपान पीवे तो शूल से मुक्त हो जाता है और अन्नद्रवशूल, पाण्डु, कामला और हलीमक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

विडङ्गाद्यो मोदकः—

विडङ्गतण्डुलं व्योषं त्रिवृद्दन्तीं सचित्रकम्। सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥१॥
गुडेन मोदकान्कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः।
उष्णोदकानुपानेन दद्यादग्निविवर्धनम्। जयेत् त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ २ ॥

विडङ्गादि मोदक—वायविडंग का चावल, सोंठ, पीपरि, मरिच, निशोथ, दन्तीमूल, चित्रकमूल, सम भाग लेकर उत्तम चूर्ण कर पुराना गुड़ मिलाकर विधिपूर्वक मोदक (वटी) बनाकर यथायोग्य मात्रा से प्रातः उष्णोदक के अनुपान से (सेवन करने से) अग्नि की वृद्धि होती है और त्रिदोषज शूल तथा परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

एरण्डादिभस्मयोगः—

एरण्डवह्निशम्बूकवर्षाभूगोक्षुरं समम्। अन्तर्दग्ध्वा पिबेदद्भिरुष्णाभिः शूलशान्तये ॥ १ ॥

एरण्डादि भस्म योग—एरण्डमूल, चित्रकमूल, शम्बूक भस्म, गदह पुरना, गोखरू सम भाग लेकर कूट कर एक मिट्टी के पात्र में रख मुख बन्दकर चुल्हिका यन्त्र के द्वारा भस्म कर स्वांगशीत हो जाने पर यथायोग्य मात्रा से उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से शूल शमन होता है ॥

पथ्याद्यलोहम्—

पथ्यालोहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिषा । परिणामभवं हन्ति वातपित्तकफात्मकम् ॥ १ ॥

पथ्यादि लोह—हर्रा का चूर्ण, लोह भस्म और गोघृत के अनुपान से सेवन करने से त्रिदोषज परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृष्णाद्यं लोहम्—

कृष्णाभयालोहचूर्णं विलिह्यन्मधुसर्पिषा । परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति सुदारुणम् ॥ १ ॥

कृष्णादि लोह—पीपरि का चूर्ण, हर्रा चूर्ण और लौहभस्म सम भाग लेकर मधु और घृत के अनुपान से चाटने से कठिन परिणाम शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

चतुःसमलोहम्—

गन्धं ताम्रं रसं लोहं प्रत्येकं मारितं पलम् । सर्वमेतत्समाहृत्य विपचेत्कुशलो भिषक् ॥ १ ॥
आज्ये पलद्वादशके दुग्धे शतपले वरे । पक्त्वा तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूतं घनतां नयेत् ॥ २ ॥
विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च । क्षिप्त्वा पलोन्मितानेतान्यथा संमिश्रतां नयेत् ॥३॥
ततः पिष्ट्वा शुभे भाण्डे स्थापयेच्च विचक्षणः । आत्मनः शोभने घस्रे पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥
घृतेन मधुना मर्द्यं भक्षयेन्माषसम्मितम् । अष्ट माषाः क्रमाद्यावन्मात्रां संस्तम्भयेत्ततः ॥५॥
अन्नपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा । जीर्णशाल्यन्नमुद्गाश्च सितामांसरसादयः ॥ ६ ॥
रसानामविरुद्धानि पानान्नान्यपि भक्षयेत् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च सामवातं कटिग्रहम् ॥ ७ ॥
गुल्मशूलं च सर्वं च यकृत्प्लीहा विशेषतः ।
अग्निमान्द्यं क्षयः कुष्ठं श्वासकासविचर्चिकाः । अश्मरी मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन शाम्यति ॥८॥

चतुःसमलोह—शुद्ध गन्धक, ताम्र-भस्म, शुद्ध पारद, लौहभस्म प्रत्येक एक २ पल लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर लौह-ताम्र मिला कर मर्दन कर १२ पल गोघृत में तथा १०० पल गोदुग्ध में पृथक् २ पाक करे, सिद्ध हो जाने पर उसमें वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चित्रकमूल, सोंठ, पीपल और मरिच, प्रत्येक एक २ पल लेकर उत्तम चूर्ण कर मिलादेवे फिर सबको पीस कर एक अच्छे (स्निग्ध) पात्र में रख देवे । इस योग को शुभ दिन में सूर्य तथा गुरु की पूजा कर घृत और मधु के अनुपान से एक माषा की मात्रा से प्रारम्भ कर आठ माषा तक क्रम से बढ़ा कर सेवन करे । पथ्य में अन्नपान सब दूध के साथ भक्षण करे, नारियल का जल पीवे, पुराने शालिधान के चावल, मूंग, शर्करा, मांसरस आदि का और रससेवन में कहे हुए अपथ्य अन्न-पानादि का त्याग कर देवे तो इस योग से हृदय-शूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटिग्रह, सब प्रकार के गुल्म, शूल तथा विशेष करके यकृत और प्लीहा का शूल, मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ठ, श्वास, कास, विचर्चिका, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रोमकं विडम् । दन्ती लोहरजः किट्टं त्रिवृत्सूरणकं समम् ॥१॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् । तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २ ॥
जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत मांसादि घृतसाधितम् । नाभिशूलं च हृच्छूलं गुल्मप्लीहकृतं च यत् ॥
विद्रध्यष्ठीलजं हन्ति कफवातोद्भवं तथा । अन्नद्रवं जरयितुमजीर्णं ग्रहणीमपि ॥ ४ ॥

सामुद्राद्य चूर्ण—सामुद्र लवण, सेंधा नमक, जवाखार, सज्जीखार, रुचक नमक, रोमक नमक, विडनमक, दन्तीमूल, लोह-भस्म, शुद्ध मण्डूर, निशोथ और सूरनकन्द इन सब ओषधियों को समान लेकर उत्तम चूर्ण कर, दही, गोमूत्र और दूध में पृथक् २ मन्दाग्नि पर पाक कर सूख

जाने पर चूर्ण कर अग्निबल के अनुसार मात्रा से उष्ण जल के अनुपान से पीवे और भोजन पचा रहे अथवा नहीं पचा रहे पर भोजन के समय घृतादि से सिद्ध किया हुआ मांसादि का भोजन करे । इससे, नाभिशूल, हृदयशूल, गुल्म का शूल प्लीहा का शूल, विद्रधि और अष्ठीला का शूल आदि और कफ-वात से उत्पन्न शूल, अन्नद्रव शूल, अजीर्ण और ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्त्यतः परम् । परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकं मतम् ॥ ५ ॥

सब शूलों की जो अन्य ओषधियाँ कही गयी हैं उनमें इससे उत्तम कोई औषध नहीं है । किन्तु परिणाम शूल को नष्ट करने की यह विशेष औषध है ॥ ५ ॥

पिप्पल्यादियोगः—

समागधीगुडं सर्पिः प्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम् । पक्वं पीत्वा जयत्याशु पक्तिशूलं समुद्धतम् ॥१॥

पिप्पल्यादि योग—पीपरि का कल्क, पुराना गुड़ दो-दो पल, मूर्च्छित गोघृत १ प्रस्थ और घृत से चतुर्गुण (४ प्रस्थ) गो दुग्ध मिला कर घृत पाक की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से शीघ्र बढ़ा हुआ पक्तिशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिपुरभैरवो रसः—

भागौ रसस्य भागश्च हेम्नः पिष्टं विधाय च । तथा द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥१॥
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा पलमात्रं समन्ततः । क्षारस्य मृगशृङ्गस्य चूर्णं योज्यं समन्ततः ॥२॥
सिञ्चेन्मत्स्याक्षिनीरेण रुद्ध्वा यामचतुष्टयम् । पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः ॥ ३ ॥

त्रिपुरभैरव रस—शुद्ध पारद २ भाग, सुवर्ण शुद्ध एक भाग दोनों को खरल में मर्दन कर, शुद्ध ताम्र के पत्र १२ भाग लेकर उस पर लेप कर दे, फिर शुद्ध गन्धक का चूर्ण एक पल लेकर उक्त स्वर्णादि लिप्त ताम्र के पत्र के ऊपर नीचे (गन्धक को) एक मृत्पात्र में रख कर उसके चारो ओर यवाखार और मृगश्रृंग के चूर्ण को देकर मत्स्याक्षी (मछेछी) के स्वरस से भलीभाँति सिञ्चित कर (भिजा कर) पात्र का मुख कपर-मिट्टी द्वारा बन्द कर अग्नि पर रख कर चार पहर अग्नि पर विधिपूर्व पाक कर स्वांगशीत होने पर उतार कर रख लेवे । यह 'त्रिपुरभैरव रस' शूलनाशक है ॥ १-३ ॥

माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे । अन्येष्वेरण्डतैलेन कटुत्रययुतो हितः ॥ ४ ॥

इसे परिणाम शूल में १ माषा की मात्रा से मधु और घृत के अनुपान से और अन्य शूलों में एरण्डतैल तथा त्रिकुट के चूर्ण के अनुपान से देना चाहिये ॥ ४ ॥

शूलदावानलः, सारसंग्रहात्—

शुद्धसूतं विषं गन्धं पलांशं मर्दयेद् दृढम् । मरीचं पिप्पली शुण्ठी हिङ्गु सौवर्चलं द्वयम् ॥१॥
पलाष्टकं पटूनां च चिञ्चाक्षारं पलाष्टकम् । सप्तवारं शङ्खभस्म जम्बीराम्ले निषेचयेत् ॥ २ ॥
पलाष्टकं च संयोज्य तत्सर्वं निम्बुकद्रवैः । दिनं मर्द्यं कोलमात्रं भक्षयेत्सर्वशूलनुत् ॥ ३ ॥

शूलदावानल रस—शुद्ध पारद, शुद्ध मीठा विष, शुद्ध गन्धक इनको एक २ पल लेकर पारद-गन्धक की कज्जली कर विष मिला कर भली-भाँति मर्दन करे । फिर मरिच, पीपरि, सोंठि, शुद्ध हींग, सौवर्चल नमक प्रत्येक दो २ पल लेकर चूर्ण कर ले, और मिलित पांचो नमक, इमली का क्षार, और शङ्ख की भस्म प्रत्येक ८-८ पल लेकर जमीरी नीबू के रस में सात वार गरम करके बुझा कर पश्चात् सब ओषधियों को एकत्र कर नीबू के रस के साथ दिन भर मर्दन कर आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से खाने से सब प्रकार के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

अजीर्णोदरमन्दाग्निमसाध्यमपि साधयेत् । शूलदावानलाख्योऽयं रसोऽजीर्णादिरोगहा ॥४॥

अजीर्ण, उदर रोग, मन्दाग्नि, आदि यदि असाध्य भी हो गये हों तो भी उनको यह 'शूलदावानल रस' नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

पथ्यापथ्यम्—माषादिशिम्बीधान्यानि मद्यानि वनिता हिमम् ।
आतपं जागरं क्रोधं शुचं सन्धानमम्लकम् । वर्जयेत्पक्तिशूलार्तस्तथाऽजीर्णं तिलानपि ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—उड़द आदि शिम्बीधान्य मद्य, स्त्रीप्रसंग, शीत-सेवा, धूप, जागरण (रात्रि जागरण), क्रोध, शोक, सिरका तथा कांजी आदि अम्ल पदार्थ को एवं अजीर्ण भोजन और तिल को परिणामशूल का रोगी त्याग देवे ॥ १ ॥

अथोदावर्तनिदानम् ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसम्भवः ॥१॥

उदावर्त के निदान—अधोवायु, मल, मूत्र, जम्भाई, आँसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य, क्षुधा, तृषा, उच्छ्वास और निद्रा इनके वेगों को रोकने से उदावर्त रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तेषां क्रमेण लक्षणान्याह, अथापानवातावरोधजमाह—

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गोऽध्मानं क्लमो ज्वरः । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥२॥

उदावर्त के लक्षण—अधोवायु रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें अधोवायु-मूत्र और पुरीष का अवरोध हो जाता है और आध्मान, क्लान्ति, ज्वर, उदर में वातजनित रोग तथा अन्य भी उदर रोग हो जाते हैं ॥ २ ॥

पुरीषावरोधजमाह—आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

मल के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें पेट में गुड़गुड़ाहट, शूल, गुदा में कतरने के समान पीड़ा, मल का अवरोध और ऊर्ध्ववात हो जाता है और कभी २ मुख से मल भी निकलने लगता है ॥ ३ ॥

मूत्रनिग्रहजमाह—

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥४॥

मूत्र के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें मूत्राशय और शिश्न में शूल होता है, मूत्रकृच्छ्र, सिर में पीड़ा, शरीर का नम जाना (झुक जाना वा नम्र हो जाना) और वंक्षण का फूल जाना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

जृम्भाविघातजमाह—मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः ।
तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥

जृम्भा के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मन्या और गले में स्तम्भ होता है, सिर में पीड़ा तथा अन्य सिर के विकार, वात विकार और नेत्र, नासिका, मुख इनके रोग तथा तीव्र कर्ण रोग होते हैं ॥ ५ ॥

अश्रुविघातजमाह—आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि ।
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥

अश्रुविघातज के लक्षण—आनन्द से अथवा शोक से बहते हुए आँसू के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें सिर में भारीपन, नेत्ररोग तथा तीव्र पीनस रोग होता है ॥ ६ ॥

क्षवथुनिरोधजमाह—

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ । इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ।

छींक के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित अर्धावभेद (अधकपारी) और इन्द्रियों की दुर्बलता (इन्द्रियों के कार्य में न्यूनता) आदि होते हैं ॥ ७ ॥

उद्गारविधारणजमाह—कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवाप्रवृत्तिः ।
उद्गारवेगेऽभिहिते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

डकार के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें कण्ठ और मुख भरा रहता है (किया हुआ भोजन मुख कण्ठ में भरा रहने के समान ज्ञात होता है), अत्यन्त तोद होना (सम्पूर्ण शरीर में सूई चुभाने के समान पीड़ा होना), कूजन होना (आँतों में शब्द होना), वायु का रुक जाना और अन्यान्य भी वातजनित घोर विकार होते हैं ॥ ८ ॥

छर्दिनिग्रहजमाह—

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः । कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ ९ ॥

वमन के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें कण्डू, मण्डल, अरुचि, व्यङ्ग (झाँई) शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, हृल्लास (उबकाई) और विसर्प आदि रोग होते हैं ॥ ९ ॥

शुक्रविधारणजमाह—मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकाराभिहिते च शुक्रे ॥ १० ॥

वीर्य के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें मूत्राशय, गुदा और अण्डकोष में शोथ और पीड़ा होती है, एवं वीर्यस्राव तथा अन्यान्य वीर्य सम्बन्धी विकार भी होते हैं ॥ १० ॥

क्षुधावरोधजमाह—

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधोऽभिघातात्कृशता च दृष्टेः ॥ ११ ॥

भूख के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें तन्द्रा, देह का टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टि में कमी होती है ॥ ११ ॥

तृष्णानिरोधजमाह—कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिघाताद् हृदयव्यथा च ॥ १२ ॥

तृषा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें कण्ठ और मुख सूखता है, श्रवणशक्ति का अवरोध होता है और हृदय में पीड़ा होती है ॥ १२ ॥

श्वासावरोधजमाह—श्रान्तस्य निश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथ वाऽपि गुल्मः ॥ १३ ॥

श्रमादि से उत्पन्न श्वास (उच्छ्वास) के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें हृद्रोग, मोह अथवा गुल्म होता है ॥ १३ ॥

निद्रानिग्रहजमाह—जृम्भाङ्गमर्दोऽक्षिशिरोतिजाड्यं निद्राविघातादथ वाऽपि तन्द्रा ॥ १४ ॥

निद्रा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें जम्हाई, शरीर का टूटना, नेत्र तथा सिर में स्तब्धता अथवा तन्द्रारोग होता है ॥ १४ ॥

रूक्षभोजनजनितविकारमाह—

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षकषायकटुतिक्तकैः । भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १५ ॥

रूक्ष, कषाय, कटु और तिक्तरस वाले पदार्थों के अति सेवन करने से कुपित हुई कोष्ठ की वायु शीघ्र उदावर्तरोग उत्पन्न कर देता है ॥ १५ ॥

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै । स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ १६ ॥
ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हृल्लासारतिपीडितः । वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १७ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान् ।
वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् । बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥१८॥

उदावर्त की सम्प्राप्ति—वह कुपित हुई वायु-अधोवायु, मूत्र, मल, आंसू, कफ और मेद को वहन करने वाली नाड़ियों को अवरुद्ध करती है तथा पुरीष को भी सुखा देती है। जिससे हृदय, बस्ति इनके शूल से अधिक पीड़ा होती है, हृल्लास और हृदयोद्वेग से पीड़ा होती है, और अधोवायु-मूत्र और मल उस मनुष्य को बड़े कष्ट देते हैं, तथा श्वास-कास-प्रतिश्याय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिक्का, शिरोरोग होते हैं और मन तथा श्रवणमें भ्रम होता है, (अर्थात् चित्त में स्थिरता तथा श्रवणशक्ति की न्यूनता होती है) तथा अन्य भी अनेक प्रकार के वात के कोप से उत्पन्न होने वाले विकार होते हैं ॥ १६-१८ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलरुपद्रुतम्। शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १ ॥

उदावर्त्त के असाध्य लक्षण—जिस उदावर्त में रोगी 'तृषा-तथा क्लेश से पीड़ित हो, क्षीण हो, शूल से पीड़ित हो, तथा उसके मुख से मल निकलता हो उसे बुद्धिमान् वैद्य त्याग देवे अर्थात् वह असाध्य है ॥ १ ॥

अथ उदावर्तचिकित्सा।

सर्वेष्वेतेषु भिषजा चोदावर्तेषु कृत्स्नशः। वायोः क्रिया विधातव्याः स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥१॥

उदावर्त चिकित्सा—सब प्रकार के उदावर्त्तरोग में वैद्य विगुणित (दूषित) वायु को अपने मार्ग पर ले जाने की (वायु को प्रकृतिस्थ करने की) क्रियाओं को करे ॥ १ ॥

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्ने विशेषतः। पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहकोदितः ॥२॥

वातजनित (वातावरोधज) उदावर्तरोग में विशेष करके स्नेह और स्वेदन करके आस्थापन कर्म करे (आस्थापन बस्ति देवे) और पुरीषज (पुरीषावरोधज) उदावर्त में आनाह रोग में कही हुई सब क्रियाओं को व्यवहार में लावे ॥ २ ॥

सौवर्चलादिः—

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत्। एलां वाऽप्यथ मद्यवन्नं क्षीरं वाऽथ वराम्बु वा॥

सौवर्चलादि योग—मूत्रज (मूत्रावरोधज) उदावर्त में सौवर्चल नमक प्रचुर प्रमाण में मिलाकर मद्यपान करे अथवा छोटी इलायची मदिरा में मिलाकर पान करे अथवा दही के पानी के साथ अन्न खावे अथवा दूध पीवे अथवा त्रिफला का क्वाथ वा जल (रस) पीवे ॥ १ ॥

उर्वारुबीजादियोगः—

उर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणान्वितम्। पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥ १ ॥

उर्वारु बीजादि योग—ककड़ी के बीज (जल के साथ पीसकर) रस में नमक मिला पान करने से अथवा पञ्चमूल के साथ पकाया हुआ दूध पीने से अथवा द्राक्षा का रस पान करने से मूत्रज उदावर्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

यवक्षारादियोगः—

यवक्षारं सितायुक्तं पिबेद्वा मृद्विकारसैः। वरिकूष्माण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पिबेदथ ॥ १ ॥

यवक्षारादि योग—यवाखार में अथवा द्राक्षा के रस में अथवा शतावरी और श्वेत कुष्माण्ड के रस में शर्करा मिलाकर पान करने से मूत्रज उदावर्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूषकादियोगः—

मूषकस्य विशा लेपं बस्तेरुपरि वा चरेत्। किंशुकानां प्रलेपो वा कवोष्णो मूत्ररोधहा ॥१॥

मूषकादि योग—मूसे की विष्ठा का मूत्राशय पर लेप करने से अथवा पलास के फूलों को पीस गरम कर मूत्राशय पर लेप करने से मूत्रावरोध (अथवा मूत्र निरोधज उदावर्त) नष्ट होता है ॥ १ ॥

**पिष्ट्वा श्वदंष्ट्राफलमूषिकाविडेर्वारुबीजानि सकाञ्जिकानि।
आलिप्यमानानि समानि बस्तौ मूत्रस्य निष्यन्दकराणि सद्यः।
अत्र सर्वं प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ २ ॥**

गोखरू के फल, मूसे की विष्ठा और ककड़ी की बीजों को समान लेकर कांजी में पीस कर बस्ति पर लेप करने से शीघ्र मूत्र आ जाता है अर्थात् मूत्रावरोध मिट जाता है। इस मूत्रावरोध में मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोग में कही हुई सब क्रियाओं को करना चाहिये ॥ २ ॥

अथावशेषाणां चिकित्सा।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृम्भाजं समुपाचरेत्। अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः॥१॥

उदावर्त के सामान्य चिकित्सा—जम्भाई के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग को स्नेह और स्वेद के उपचार से शमन करे। आँसू के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग को स्नेहन और स्वेदन कराकर अश्रुमोक्षण कराना चाहिये ॥ १ ॥

मरीचाद्यञ्जनैर्धूमैरादित्याद्यवलोकनैः। क्षवजे क्षवयन्त्रेण घ्राणस्थेनाऽऽनयेत्क्षवम् ॥ २ ॥

आँसू निकलने के लिये मरिच आदि तीक्ष्ण पदार्थों का अञ्जन लगाना, धूँये में बैठना, सूर्य की ओर देखना आदि कर्म करना चाहिये। छींक के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में क्षव यन्त्र (छीके लाने वाले यन्त्र) को नाक में डालकर छींकना चाहिये अथवा तृण आदि नाक में लगाकर छींकना चाहिये ॥ २ ॥

उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत्। भक्षयेद्रुचकं सार्द्रं खण्डं वा मथिताञ्वितम् ॥ ३ ॥

उद्गार के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में स्नेह पदार्थों वाला (स्नेहयुक्त) धूम्रपान करना चाहिये और नमक तथा अद्रक में खांड़ मिलाकर अथवा दही के मथित (मठ्ठे) के साथ भक्षण करे ॥ ३ ॥

**वम्या वान्तं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिर्जयेत्। बस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥४॥
आवारिनाशात्क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः। रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥५॥**

वमन के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में दोष के अनुसार वमन करावे तथा नस्य कर्म और स्नेहादि कर्म करावे। शुक्र के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में बस्ति को शुद्ध करने वाले द्रव्यों के साथ चौगुना जल मिलाकर दूध सिद्ध करे (पकावे) और जब केवल दूध मात्र शेष रहे तब उस दूध को सेवन कराकर रोगी को प्रिय स्त्रियों के साथ रमण करावे। (इस क्रिया तथा औषध से शुक्रोदावर्त नष्ट होता है) ॥ ४-५ ॥

तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिराश्चरणायुधाः। शालिः पयो निरूहाश्च हितं मैथुनमेव च ॥६॥

शुक्रोदावर्त के रोगी को अभ्यङ्ग (तेल मर्दन), अवगाहन (नदी आदि में स्नान), मद्यपान, कुक्कुटमांस भक्षण, शालिधान का चावल, दूध, निरूहबस्ति और मैथुन करना हितकर होता है ॥ २ ॥

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धं रुच्यमल्पं च भोजनम्। तृषाघाते पिबेन्मद्यं यवागूं स्वादुशीतकम् ॥

क्षुधा के अवरोध करने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें स्नेहयुक्त, रुचिकारक और अल्पप्रमाण में भोजन कराना चाहिये। तृषा के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में मद्य तथा मधुर और शीतल यवागू पीना चाहिये ॥ ७ ॥

**रसेनाद्यात्तु विश्रान्तः श्रमश्वासार्दितो नरः। निद्राघाते पिबेद् दुग्धं माहिषं रजनीमुखे ॥८॥
तिलतैलेन सम्मृज्य भूतले शयनं चरेत्।**

उदावर्तिनमभ्यक्तं स्निग्धगात्रमुपाचरेत् । वर्तिकास्थापनस्वेदबस्तिरेचनकर्मणा ॥ ९ ॥

श्रमश्वास के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में मांसरस पिलाना चाहिये। निद्रा के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में सन्ध्या समय (रात्रि के प्रारम्भ में) भैंस का दूध पिला कर तिल के तेल से शरीर को मर्दित कराकर भूमि पर शयन कराना चाहिये। अभ्यक्त किये हुए उदावर्त रोगी को जिसका शरीर स्निग्ध हो गया है उसको फलवर्ति, आस्थापन, स्वेदन, बस्ति कर्म तथा विरेचन कर्म करना चाहिये ॥ ८–९ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

श्यामादिकषायो वृन्दात्—**श्यामा दन्ती द्रवन्ती स्नुक्महाश्यामाऽमृता त्रिवृत् ।
सप्तला शङ्खिनी श्वेता राजवृक्षः सविल्वकः ॥
कम्पिल्लकं करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः । सर्पिस्तैलरजःक्वाथकल्केष्वन्यतमेषु च ॥
उदावर्तोदरानाहविषगुल्मविनाशनः ॥ २ ॥**

श्यामादि कषाय—श्यामालता (कृष्ण–सारिवा) छोटी दन्तीमूल, बड़ी दन्तीमूल, थूहर (सेहुड़), महाश्यामा लता (बड़ी सारिवा), गुरुचि, निशोथ, सप्तला (सेहुड़ का भेद), शङ्खपुष्पी, श्वेता (श्वेत सारिवा), अमलतास, बेल, कबीला, करंज, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) इस गण के साथ (इन ओषधियों के कल्क के साथ) घृतपाक करे अथवा तैलपाक करे अथवा इनका चूर्ण करे वा क्वाथ करे अथवा कल्क बनावे, इनके सेवन करने से उदावर्त, उदर, आनाह, विषरोग और गुल्म इन सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १–२ ॥

वृन्दाद्वाट्यादियूषः—

वाट्या यूषेण पिप्पल्या मूलकानां रसेन वा । भुक्त्वा स्निग्धमुदावर्तवातगुल्माद्विमुच्यते ॥१॥

वाट्यादियूष—बरि ओर से प्रस्तुत किये यूष से अथवा पीपरि तथा मूली के रस से स्निग्ध भोजन करने से उदावर्त तथा वात गुल्म से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

वाट्यादिः—

वाट्यक्षीररसैः सेव्यं यच्च वातानुलोमनम् । वातघ्नैर्लवणाद्यैश्च रसाद्यैश्चान्नमाचरेत् ॥ १ ॥

बरिओर से सिद्ध किये दूध अथवा बरिआर के रस को सेवन करे तथा अन्य वात का अनुलोमन करने वाले पदार्थों अर्थात् वातनाशक लवणादि और मांसरसादि से युक्त अन्न का सेवन करे। इससे उदावर्त नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

हरीतक्यादिचूर्णम्—

हरीतकी यवक्षारः पीलूनि त्रिवृता तथा । घृतैश्चूर्णं त्विदं पेयमुदावर्तप्रशान्तये ॥ १ ॥

हरीतक्यादि चूर्ण—हर्रा, यवाखार, पीलू (झल फल), निशोथ इनको समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर उदावर्त की शान्ति के लिये घृत के अनुपान से देवे ॥ १ ॥

द्विरुत्तरं चूर्णम्—

हिङ्गुकुष्ठवचास्वर्जिविडं चेति द्विरुत्तरम् । पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम् ॥ १ ॥

द्विरुत्तर चूर्ण—शुद्ध हींग, कूट, बच, सज्जी और विड लवण इनको द्विरुत्तर (एक से दूसरा दूना) क्रम से शुद्ध हींग १ भाग, कूट २ भाग, बच ४ भाग, सज्जी ८ भाग और विड नमक १६ भाग लेकर उत्तम चूर्ण बना कर मद्य के अनुपान से सेवन करना उदावर्त को नष्ट करने में उत्तम योग है ॥ १ ॥

नाराचचूर्णम्—**खण्डपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं सूक्ष्मम् ।
प्राग्भोजनस्य समधु बिडालपदकं लिहेत्प्रातः ॥ १ ॥
एतद्गाढपुरीषे क्षुब्धे पित्ते कफे च विनियोज्यम् । स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नाराचको नाम ॥**

नाराचचूर्ण—शक्कर १ पल, निशोथ १ पल, पीपरि १ कर्ष लेकर सबका उत्तमचूर्ण बनाकर भोजन से पहले मधु के अनुपान से एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रातःकाल चाटना चाहिये। इस औषध को मलबद्धता में और पित्त तथा कफ के क्षुभित (कुपित) अवस्था में देना चाहिये। यह स्वादिष्ट 'नाराच नामक' चूर्ण सब राजाओं के योग्य है ॥ १–२ ॥

हिङ्गु त्रिगुणसैन्धवं तस्माच्च शुद्धतैलमैरण्डम् । तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदावर्तशूलघ्नम् ॥

शुद्ध हींग १ भाग, सेंधा नमक ३ भाग, शुद्ध एरण्डतैल ९ भाग और लहसुन का रस २७ भाग इन सब को एकत्र मिलाकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से गुल्म तथा उदावर्त का शूल नष्ट होता है ॥ ३ ॥

प्रलेपः—

**वाल्मीकमृत्करञ्जस्य त्वङ्मूलफलपल्लवम् । सिद्धार्थं चेति पिष्टानां मूत्रेणाऽऽलेपनं हितम् ॥
उदावर्तेषु सर्वेषु सम्यग्वातानुलोमनम् ॥ १ ॥**

प्रलेप—विमोट की मिट्टी, करञ्ज की छाल, मूल, फल और पत्ता तथा श्वेत सर्सों इन छवों को सम भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर लेप बनाकर लगाने से उदावर्त में लाभ होता है। सब प्रकार के उदावर्तों में भलीभाँति वायु का अनुलोमन करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ फलवर्तयः ।

तत्र मदनादिः—

मदनं पिप्पलीकुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः । गुडक्षीरसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १ ॥

मदनादिफलवर्ति—मैनफल, पीपरि, कूट, वच, श्वेत–सर्सों, गुड़ और दूध मिलाकर विधिपूर्वक बनाई हुई बत्ती उदावर्त के लिये हितकर है ॥ १ ॥

आगारधूमादिः—

अगारधूमः पिप्पल्यो मदनं राजसर्षपाः । गोमूत्रपिष्टाः सगुडाः फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १ ॥

आगारधूमादि—गृहधूम (झोला जो घरों में धूम के कारण होता है), पीपरि, मैनफल, काली सर्सों (तोरी) इनको गोमूत्र के साथ पीसकर गुड़ मिलाकर बत्तियाँ बनाकर सेवन करना उदावर्त के लिये हितकर है ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादिः—

हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पक्त्वा वर्तिं सुवर्तिताम् । घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥

हिंग्वादिवर्ति—हींग, मधु, सेंधानमक, इनको समान लेकर विधिवत् पाककर बत्ती बनाकर इसमें घृत लगाकर गुदा में देने से उदावर्त नष्ट होता है (कहीं २ इसको हींग ४ मासा, सेंधानमक १ कर्ष, मधु १ पल इस प्रमाण से लेकर पाककर बत्ती बनाते हैं) ॥ १ ॥

उदयमार्तण्डरसः—**हिङ्गुलं जयपालटङ्कणविषाण्यन्त्यार्धभागोत्तरं
सर्वं खल्वतले विमर्द्य मतिमान्गुञ्जाद्वयं वै ददेत् ।
मार्तण्डोदयको ज्वरादिसहिते यः सोदराध्मानके
पाण्ड्वाजीर्णगदेऽनुपानवशतः पथ्यं च तक्रौदनम् ॥ १ ॥**

उदयमार्तण्डरस—शुद्ध विष १ भाग, शुद्ध टङ्कण १½ भाग, शुद्ध जयपाल २ भाग और शुद्ध सिंगरिफ २½ भाग सबको खरल में मर्दन कर २ रत्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करावे तो

ज्वर आदि सहित उदराध्मान नष्ट होता है। पाण्डुरोग तथा अजीर्णरोग को अनुपान विशेष से यह नष्ट करता है। इसमें मट्ठा और भात पथ्य देना चाहिये ॥ १ ॥

व्योषेणाऽऽर्द्ररसेन तत्र सितया युक्तो ज्वरे दारुणे
मान्द्ये गुल्मकफानले च पवने शूले च शोफोदरे।
वातास्रे स्वरवर्णकुष्ठगुदजान्रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ २ ॥

त्रिकटु, अदरक के रस और शर्करा के अनुपान से सेवन करने से भयङ्कर ज्वर, मन्दाग्नि, गुल्म कफ और अनल (पित्त) के रोग, वायुरोग, शूल, शोथ, उदर, वातरक्त, स्वरभंग, वर्णविकार, कुष्ठ, अर्श तथा अन्य सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ २ ॥

नाराचरसः—

जेपालेन समैः सूतव्योषटङ्कणगन्धकैः। नाराचः स्याद्रसो ह्येष माषसर्पिःसितायुतः।
हन्त्युदावर्तमानाहमुदराणि च गुल्मकम् ॥ १ ॥

नाराचरस—शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध पारद, सोंठि, पीपरि, मरिच प्रत्येक का चूर्ण शुद्धटङ्कण, शुद्धगन्धक प्रत्येक १-१ भाग इन सबको लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर पुनः सब ओषधियों के चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर इस 'नाराचरस' को माषा प्रमाण की मात्रा से घृत और शर्करा के अनुपान से सेवन करने से उदावर्त, आनाह, उदर और गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥१॥

अथ आनाहनिदानम्।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन।
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

आनाह निदान—आमरस अथवा मल क्रम से (शनैः शनैः) वायु के विकृत होने के कारण संचित होकर बँध जाता है (शुष्क हो जाता है) और उचित रीति से उसकी प्रवृत्ति नहीं होती (अवरोध हो जाता है) इस विकार को 'आनाह' कहते हैं ॥ १ ॥

आमजमानाहमाह—

तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः।
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भनोद्गारविघातनं च ॥ २ ॥

आनाह के लक्षण—आम के संचित होने के कारण जो आनाह होता है उसमें तृषा, प्रतिश्याय, सिर में दाहादिरोग, आमाशय में शूल, शरीर का भारीपन, हृदय का स्तम्भन (व्याकुलता) और उदर का अवरोध होता है। (डकार आने को होकर रुक जाता है) ॥ २ ॥

शकृत्सञ्चयजमाह—

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतो वमिश्च।
श्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥

मल के पक्वाशय में संचित होने से जो आनाह होता है उसमें कटि और पीठ में स्तम्भन होता है, मूत्र तथा मल का अवरोध होता है, पक्वाशय में शूल, मूर्च्छा, मल का वमन, श्वास ये सब होते हैं। तथा अलसकरोग में कहे हुए लक्षण भी होते हैं ॥ ३ ॥

उदावर्तिनमप्येनमानाहिनमथापि वा। तृष्णोपद्रवसंयुक्तं तं त्यजेद्भिषजां वरः ॥ ४ ॥

असाध्य लक्षण—उदावर्तरोग वाले को अथवा आनाहरोग वाले को यदि तृष्णा आदि उपद्रव दिखाई पड़े तो उसे श्रेष्ठ वैद्य को त्याग देना चाहिये। अर्थात् तृष्णादि से युक्त उदावर्त आनाह असाध्य है ॥ ४ ॥

आनाहचिकित्सा।

आनाहेऽपि प्रयुञ्जीत उदावर्तहरीं क्रियाम्।

विशेषमाह—

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत्। वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठास्त्वानाहभेदिकाः ॥ १ ॥

आनाह चिकित्सा—आनाह रोग में भी उदावर्त रोग को नष्ट करने वाली क्रिया करनी चाहिये। निशोथ, हर्रा, श्यामा (कृष्ण सारिवा), इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर थूहर के दूध की भावना देकर वटी बना कर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करे। यह आनाह को नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

हिङ्गूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम्।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदरानाहविषूचिकासु ॥ २ ॥

भागोत्तर वृद्धि क्रम से हींग १ भाग, वच २ भाग, विड लवण ३ भाग, सोंठि ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्रा ६ भाग, पुहकरमूल ७ भाग और कूट ८ भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से गुल्मरोग, उदररोग, आनाहरोग और विसूचिका रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

वचाभयाचित्रकयावशूकान् सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान्।
उष्णाम्बुनाऽऽनाहविमूढवातान् पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी ॥ ३ ॥

वच, हर्रा, चित्रकमूल, यवाखार, पीपर, अतीस और कूठ सम भाग लेकर चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से आनाह रोग तथा विमूढवात शीघ्र ही नष्ट होता है। इस औषध के साथ मांस-रस और चावल का भात पथ्य देना चाहिये ॥ ३ ॥

राढधूमादिवर्तिः—

राढधूमविडव्योषगुडमूत्रविपाचिता। गदेऽङ्गुष्ठसमा वर्तिर्विधेयाऽऽनाहशूलनुत् ॥ १ ॥

राढधूमादिवर्ति—राढ फल, गृहधूम, विड लवण, सोंठि, पीपर, मरिच, गुड़ पुराना और गोमूत्र समान भाग लेकर एकत्र कर यथाविधि पाक कर हाथ के अंगूठे के प्रमाण मोटी बत्ती विधिवत् बनाकर घृत लगाकर गुदा में देने से आनाह शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

विपाच्य मूत्राम्लरसेन दन्तीपिण्डीतकृष्णाविडकृष्णधूमैः।
वर्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां गुदे न्यसेदानाहहरीं विदध्यात् ॥ २ ॥

दन्तीमूल, पिण्डीत (काला मैनफल), पीपरि, विड लवण, कृष्ण सर्सों (तोरी) और गृहधूम (घर में लगा हुआ धूम का झाला) समान भाग लेकर गोमूत्र और काँजी के साथ पाक कर पूर्वोक्तरीति से बत्ती बनाकर उसमें घृत लगाकर गुदा में देने से शूल और आनाह को नष्ट करती है ॥ २ ॥

पथ्यापथ्यम्—

विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च। उदावर्ते प्रयत्नेन वर्जयेत्सततं नरः ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—विष्टम्भ करने वाले पदार्थ, विरुद्ध भोजन, कषाय रस वाले पदार्थ और गुरु पदार्थ इन द्रव्यों को आवर्त और आनाह का रोगी यत्न पूर्वक निरन्तर त्याग देवे क्योंकि ये अपथ्य हैं ॥ १ ॥

उदावर्ते हितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा। आनाहे तु यथायोग्यं सेवयेन्मतिमान्नरः ॥ २ ॥

उदावर्त रोग में सब प्रकार के द्रव्य और लङ्घन करना हितकारक है और आनाह रोग में बुद्धिमान् मनुष्य को यथा योग्य (दोषानुसार) पथ्य आदि विचार कर सेवन करना चाहिये ॥

अथातो गुल्मनिदानं व्याख्यास्यामः ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥

गुल्म का निदान—मिथ्या आहार और विहार से अत्यन्त दूषित (कुपित) हुए वातादिक दोष कोठे में आकर ग्रन्थि (गांठ) की भाँति पांच प्रकार के गुल्म रोग को उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

तेषां स्थानान्याह—तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः ।

गुल्म के स्थान—गुल्म के पांच स्थान हैं—पार्श्वद्वय, हृदय, नाभि और वस्ति ।

तस्य लक्षणमाह—

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः । वृत्तश्चयापचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः ॥

गुल्म के लक्षण—हृदय और नाभि के मध्य में चलने वाली अथवा अचल, गोल तथा बढ़ने वाली ग्रन्थि (गांठ) को 'गुल्म' कहते हैं ॥ २ ॥

विशेषलक्षणं चरके—

तृष्णाज्वरपरीतश्च दाहस्वेदाग्निमार्दवैः । गुल्मिनामरुचौ चापि रक्तमेवावसेचयेत् ॥ ३ ॥

तृषा, ज्वर, दाह, स्वेद, मन्दाग्नि हो और गुल्म में अरुचि भी हो तो रोगी को रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

भट्टारकहरिश्चन्द्रः—

स्त्रीणामार्तवजो गुल्मो न पुंसामुपजायते । अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां पुंसां च जायते ॥

स्त्रियों को आर्तव के कारण जो गुल्म होता है वह पुरुषों को नहीं होता, किन्तु अन्य कारणों से कुपित हुआ रक्तज गुल्म स्त्री और पुरुष दोनों को होता है ॥ ४ ॥

निरूढमूलप्रभवो हि कोष्ठे स्थितः स्वतन्त्रः परसंश्रयो वा ।
स्पर्शोपलब्धः परिपिण्डितत्वाद् गुल्मो यथा दोषमुपैति नाम ॥ ५ ॥

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः । पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥

जिस ग्रन्थि (गुल्म) का निरूढ़ (दृढ़) हो, कोष्ठ स्थान अथवा अन्य स्थान में स्वतन्त्र रहता हो, स्पर्श करने से प्राप्त होता हो (स्पष्ट ज्ञात हो जाता हो), पिण्ड के समान (गोल) हो, यदि इस प्रकार का गुल्म हो तो दोष के अनुसार उसका विभिन्न नाम है । यह गुल्म पृथक् २ वातादिकों के कुपित होने से वातज, पित्तज और कफज गुल्म कहा जाता है । और तीनों दोषों के मिलित प्रकोप से होने से सान्निपातिक गुल्म कहा जाता है । तथा एक और गुल्म रक्त से होता है जो पुरुष स्त्री दोनों को होता है । (इससे परे आर्तव अन्य गुल्म भी स्त्रियों को होता है) ॥ ५–६ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ७ ॥

गुल्म के पूर्वरूप—गुल्म रोग जब होने को होता है तब उसके पहले डकार बहुत होता है और मल का अवरोध भोजन में अनिच्छा, सहन शक्ति की न्यूनता, आँतों में गों, गों शब्द आटोप, (गुड़ २ शब्द) आध्मान और पाचन शक्ति की न्यूनता ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

सर्वगुल्मानां सामान्यलक्षणमाह—

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वातान्त्रप्रतिकूजनम् । आनाहं चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥८॥

गुल्मों के सामान्य लक्षण—अरुचि, मल-मूत्र और वायु आदि का कष्ट से होना, आँतों में कूजन (शब्द), आनाह और ऊर्ध्ववात होना ये सब लक्षण प्रायः सब प्रकार के गुल्मों में होते हैं ॥ ८ ॥

वातजमाह—रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ।
शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ९ ॥

वातज गुल्म—रूक्ष अन्न और रूक्ष पेयादि के अति सेवन करने से और विषम अन्नपान तथा अति मात्रा में अन्न पान करने से और विचेष्टा (परिश्रम–स्त्री-प्रसंगादि) करने से, वेग (मलादिकों) के धारण करने से, अधिक शोक से, अभिघात से, मल के क्षय होने और अधिक उपवास करने से वातज गुल्म होता है । अर्थात् इन कारणों से वात कुपित होकर गुल्म उत्पन्न कर देता है ॥ ९ ॥

यः स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च ॥ १० ॥
करोति जीर्णेऽभ्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ।
वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ११ ॥

जिस गुल्म रोग में स्थान, प्रमाण तथा वेदना आदि का विकल्प रहे (अर्थात् इसका कुछ ठिकाना नहीं रहे कि किस स्थान पर रहता है, कितने प्रमाण में है और कभी पीड़ा कम होती है कभी अधिक) और मल तथा अधोवायु का अवरोध हो जावे, गला और मुंह सूखता रहे, शरीर का वर्ण श्याम अथवा ताम्र हो जावे, शीत ज्वर हो और हृदय, कोख, पार्श्वदेश, स्कन्ध और सिर में पीड़ा हो, भोजन के पच जाने पर अधिक प्रकोप हो और भोजन कर लेने पर शान्त हो जावे उसे वात से होने वाला गुल्म जानना चाहिये । इसमें रूक्ष, कषाय, तिक्त और कटु पदार्थ सेवन करने से शमन नहीं होता, किन्तु बढ़ जाता है ॥ १०–११ ॥

पैत्तिकमाह—कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।
आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पित्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ १२ ॥

पित्तज गुल्म—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही और रूक्ष पदार्थों के अति सेवन करने से, क्रोध अधिक करने से, अधिक मद्य पीने से, अधिक धूप तथा अग्नि के पास रहने से, आमदोष से अभिघात से और रक्त दूषित होने से पित्तज गुल्म होता है ॥ १२ ॥

ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १३ ॥

जिस गुल्म रोग में ज्वर, पिपासा, मुख और शरीर में लालिमा, भोजन पचते समय अत्यन्त शूल (पीड़ा), स्वेद और दाह हो, व्रण के समान गुल्म का स्पर्श सहन नहीं हो, ये सब पैत्तिक गुल्म के लक्षण हैं ॥ १३ ॥

श्लैष्मिकमाह—शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।
गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वश्च दुष्टो निचयात्मकस्य ॥ १४ ॥

कफज गुल्म—अति–शीतल, गुरु और स्निग्ध पदार्थों के सेवन से, निश्चेष्ट रहने से (परिश्रम आदि नहीं करने से), पेट का निरन्तर भरा रहना, दिन में सोना इन कारणों से कफज गुल्म होता है । और संनिपातज गुल्म में सभी वातादिक दोष दुष्ट हो जाते हैं (यह प्रसङ्गवश कहा गया है) ॥ १४ ॥

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि ।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥ १५ ॥

जिस गुल्म में आर्द्रता, शीत ज्वर, अंगों की शिथिलता, हृल्लास (उबकाई), कास, अरुचि, शरीर का भारीपन, शीतलता, गुल्म में पीड़ा की कमी, गुल्म का कठिन तथा उन्नत होना ये सब लक्षण हों उसे कफज गुल्म जानना चाहिये ॥ १५ ॥

द्वन्द्वत्रिदोषजेषु हेतुलक्षणनिर्देशार्थमाह—

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे द्विदोषजे दोषबलाबलं च ।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १६ ॥

द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज गुल्म—दो दोषों के मिलित कारण और लक्षण दोषों के बलाबल के अनुसार जानना चाहिये अर्थात् जहाँ दो दोषों के मिलित कारण और लक्षण दिखाई दें उसे द्वन्द्वज और मिश्रित तीनों दोषों के कारण और लक्षण जिसमें हो उसे त्रिदोषज जानना चाहिये । फिर चिकित्सा करने के लिये द्वन्द्वज तीन प्रकार का समझना चाहिये ॥ १६ ॥

त्रिदोषजस्यासाध्यत्वमाह—

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् ।
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १७ ॥

जिस गुल्म में अत्यन्त पीड़ा हो, दाह हो, पत्थर के समान कठिन तथा उन्नत हो, शीघ्र दाह करने वाला हो, महादारुण (दुखदायी) हो, बल का क्षीण करने वाला हो तो वह त्रिदोषज गुल्म असाध्य कहा जाता है ॥ १७ ॥

स्त्रीणां रक्तगुल्मस्य सम्प्राप्तिमाह—

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चाऽऽमगर्भं विसृजेदृतौ वा ।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १८ ॥

गुल्म की सम्प्राप्ति—नव प्रसूता स्त्री यदि अहितकर भोजन करे अथवा जिसको गर्भपात हुआ हो अथवा ऋतु के समय में जो अहित भोजन करे उसके रक्त को लेकर वायु रक्तगुल्म कर देता है । उसमें पीड़ा और जलन होती है ॥ १८ ॥

उक्तं चरके - ऋतावनाहारभयातपेन विरूक्षणैर्वेगविधारणैश्च ।
संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रिया रक्तभवोऽभ्युपैति ॥ १९ ॥

ऋतु के समय में उपवास से तथा भय, आतप, रूक्षभोजन, मलादि का वेग धारण, स्तम्भन और उल्लेखन द्रव्यों के सेवन से और योनिदोष से स्त्रियों को रक्तज गुल्म होता है ॥ १९ ॥

तस्य लिङ्गमाह—पित्तस्य गुल्मेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ।
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ २० ॥

रक्तज गुल्म के लक्षण—जिस गुल्म में पित्तजगुल्म के समान लक्षण हों, किन्तु विशेष कर पिण्डाकार, अङ्गरहित, गर्भ के समान इधर-उधर फिरता रहे, शूल भी बहुत देर में कभी-कभी होवे, गर्भ के समान और भी लक्षण हों । वह स्त्रियों को रक्त से होने वाला गुल्म है अर्थात् रक्तज गुल्म के ये लक्षण हैं । इसकी चिकित्सा दसवें महीने के बाद करनी चाहिये । क्योंकि यही लक्षण गर्भ का भी है, इससे दोनों के समान लक्षणों के रहने से यदि गुल्म न होकर गर्भ ही हो तो स्राव हो जावेगा ॥ २० ॥

असाध्यलक्षणमाह—

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः । कृतशूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥२१॥
दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्वरैः । तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते स न सिध्यति ॥२२॥

गुल्म के असाध्य लक्षण—जो गुल्म अधिक दिन में धीरे २ बढ़ता हुआ उदर भर में व्याप्त हो गया हो, अन्य धातुओं में भी जिसका प्रवेश हो गया हो, सिराओं से घिर गया हो और कछुये के समान उन्नत हो तथा जिसमें दुर्बलता, अरुचि, उबकाई, कास, वमन, पीड़ा, ज्वर, तृषा, तन्द्रा और प्रतिश्याय हो वह गुल्म असाध्य है ॥ २१-२२ ॥

पुनरसाध्यलक्षणमाह—

गृहीत्वा सज्वरं श्वासच्छर्द्यतीसारपीडितम् । हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥

जिस गुल्म रोग में ज्वर, श्वास, वमन तथा अतिसार से पीड़ा हो और हृदय, नाभि, हाथ और पावों में शोथ हो गया हो उसको वह गुल्म मार डालता है । अर्थात् इन लक्षणों वाला गुल्म असाध्य है ॥ २३ ॥

श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता । जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥२४॥

जिसमें श्वास, शूल, पिपासा, भोजन पर अनिच्छा, गुल्म के ग्रन्थि का लुप्त हो जाना और दुर्बलता हो उस गुल्म वाले को मरने ही के लिये जानना चाहिये । अर्थात् वह असाध्य है ॥ २४ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् । बृंहणं च भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥१॥

गुल्म चिकित्सा—लङ्घन (उपवास) और दीपन, स्निग्ध, उष्ण, वात का अनुलोमन तथा बृंहण अन्न के सेवन कराने से सब प्रकार के गुल्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या ।
मारुते तु विजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ २ ॥

गुल्म के रोगियों की वायु को शमन करने की विधिवत् चिकित्सा सबसे पहले करनी चाहिये । क्योंकि वायु के जीत लेने पर अन्य बढ़े हुए (पित्तादिक) दोषों को अल्प यत्न से भी शमन किया जा सकता है ॥ २ ॥

सुखोष्णा जाङ्गलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैन्धवाः । कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पानेषु गुल्मिनाम् ॥

जांगल जीवों का मांस रस सुखोष्ण (थोड़ा गरम २) घृतादि से स्निग्ध कर सेंधा नमक और सोंठि, पीपरि, मरिच के चूर्ण को मिलाकर पान करने से गुल्म रोगियों को लाभ होता है ॥ ३ ॥

कुम्भिपिण्डेष्टकास्वेदान् कारयेत्कुशलो भिषक् । उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः॥

वातनाशक क्वाथादि से परिपूर्ण भाफ युक्त (जिसका मुंह ढक कर क्वाथ किया गया हो) कुंभी या घट से स्वेद देवे (भाप से सेंके), और पिण्ड स्वेद करे (उड़द आदि पीस कर पिण्डी बना कर गरम कर उससे स्वेद देवे) अथवा ईंटे को अग्नि में तपा कर वातनाशक क्वाथादि में सिंचन कर उस भाफ से स्वेद देवे अथवा शाल्वण-वेशवार आदि योगों से कुशल वैद्य गुल्म में स्वेद कर्म करे ॥ ४ ॥

गुल्मस्थाने रक्तमोक्षो बाहुमध्ये शिराव्यधः । स्वेदानुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम्॥५॥

गुल्म के स्थान में रक्त मोक्षण कराना चाहिये, बाहु के मध्य की सिरा का रक्तमोक्षण कराना चाहिये (बाहु के मध्य की मध्या वा बड़ी सिरा बचा कर छोटी सिरा का रक्त मोक्षण कराना चाहिये क्योंकि बाहु का मध्य मर्मस्थान कहा गया है) और स्वेद कर्म तथा वात का अनुलोमन करने वाली क्रिया सब गुल्म रोग वालों के लिये उत्तम कही गयी है ॥ ५ ॥

अथ वातगुल्मचिकित्सा—प्रागेव वातजे गुल्मे सुस्निग्धं स्वेदितं नरम् ।
रेचितं स्नेहरेकैश्च निरूहैः सानुवासनैः । उपाचरेद्भिषक्प्राज्ञो मात्राकालविशेषतः ॥ १ ॥

वात गुल्म चिकित्सा—वातज गुल्म में रोगी को प्रथम भली भाँति स्निग्ध कर, स्वेदित करे, और स्निग्ध विरेचनों से रेचित करे, फिर निरूह बस्ति तथा अनुवासन बस्ति देवे। इन सब कर्मों को विद्वान वैद्य मात्रा, काल आदि का विशेष विचार कर करे ॥ १ ॥

मातुलुङ्गादियोगः—

मातुलुङ्गरसे हिङ्गु दाडिमं बिडसैन्धवम् । सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ १ ॥

मातुलुङ्गादि योग—बिजौरा नीबू के रस में शुद्ध हींग, अनारदाना, बिडनमक, सेंधा नमक मिला कर सुरामण्ड के साथ साथ मिलाकर पान करने से वातिक गुल्म की पीड़ा को हरण करता है ॥ १ ॥

वृन्दान्नागरादि—नागरार्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च ।
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् । वातगुल्ममुदावर्तं योनिशूलं च नाशयेत् ॥ १ ॥

नागरादि कल्क—सोंठि आधा पल, शुद्ध किये हुए तिल दो पल और पुराना गुड़ एक पल लेकर सबको पीस कर उष्ण दूध के साथ पान करने से वातज गुल्म, उदावर्त और योनिशूल नष्ट होता है। (इसकी मात्रा रोग-बलानुसार विचार कर देनी चाहिये) ॥ १ ॥

हिङ्गुपञ्चकम्—

हिङ्गुसैन्धववृक्षाम्लराजिकानागरैः समैः । चूर्णं गुल्मप्रशमनं स्यादेतद्धिङ्गुपञ्चकम् ॥ १ ॥

हिंगुपञ्चक—शुद्ध हींग, सेंधानमक, वृक्षाम्ल (कोकम), राई और सोंठि एक २ भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से यह 'हिंगुपञ्चक' चूर्ण गुल्म को शमन करता है ॥ १ ॥

केतकीक्षारयोगः—

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिसम्भवः । पीतस्तैलेन शमयेद्वातगुल्मं सुदारुणम् ॥ १ ॥

केतकीक्षार योग—सज्जी, कूठ और केतकी के पौधे का क्षार तीनों को समान लेकर तेल के साथ पान करने से भयंकर वातज गुल्म शान्त होता है ॥ १ ॥

एरण्डतैलादियोगः—

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः ॥ १ ॥

एरण्डतैलादि योग—सुरामण्ड में अथवा दूध में एरण्ड तैल मिलाकर पान करने से वातज गुल्म वाले रोगी को लाभ होता है ॥ १ ॥

वृन्दाद्धपुषाद्यं घृतम्—

हपुषाजाजिपृथ्वीकापिप्पलीमूलचित्रकैः । क्षीरमूलककोलानां रसैश्च विपचेद् घृतम् ॥ १ ॥
वातगुल्मारुचिश्वासशूलानाहज्वरार्शसाम् । ग्रहणीयोनिदोषाणां घृतमेतन्निवारणम् ॥ २ ॥

हपुषाद्य घृत—हाऊबेर, जीरा, बड़ी इलायची, पिपरामूल और चित्रकमूल समान लेकर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना गोदुग्ध और दूध के समान मूली का क्वाथ और उसी के समान बेर का क्वाथ क्रम से मिलाकर विधिपूर्वक घृतपाक करे जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार छान कर सेवन करने से वातज गुल्म, अरुचि, श्वास, शूल, आनाह, ज्वर, अर्श, ग्रहणी और योनिदोष नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

चित्रकाद्यं घृतम्—

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाचव्यदाडिमैः । दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहपुषाधान्यकैः समैः ॥ १ ॥
दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् । पक्त्वा पिबेद्वातगुल्मदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥ २ ॥

चित्रकादि घृत—चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, सेंधा नमक, बड़ी इलायची, चव्य, अनारदाना, जवाइन, पिपरामूल, जीरा (श्वेत), हाऊबेर और धनियाँ सम भाग लेकर कल्क करे, जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना दही और दही के समान कांजी और कांजी के ही समान बेर की जड़ का क्वाथ और उसी के समान मूली का स्वरस क्रम से मिलाकर पाक करें जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार छान कर पान करने से वातज गुल्म, दुर्बलता, आटोप और शूल को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

पथ्यम्—

तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटान्क्रौञ्चवर्तिकान् । सर्पिः शालिप्रपन्नांश्च वातगुल्मे च योजयेत् ॥

वातजगुल्म में पथ्य—तित्तिर, मोर, कुक्कुट, क्रौंच पक्षी और बटेर इनके मांसरस को घृत तथा शालिधान्य (भात) के साथ मिलाकर वातज गुल्म में पथ्य खाना चाहिये ॥ १ ॥

वातगुल्मप्रतीकारे प्रकुप्यति यदा कफः । शस्तमुल्लेखनं तत्र चूर्णाद्याश्च कफापहाः ॥ २ ॥

वातज गुल्म की चिकित्सा करने से यदि कफ दोष बढ़ जावे तो उस अवस्था में उल्लेखन कर्म तथा कफनाशक चूर्ण आदि का प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

यदि कुप्यति वा पित्तं विरेकस्तत्र भेषजम् । दोषघ्नैरप्यशान्ते च गुल्मे शोणितमोक्षणम् ॥

यदि वातज गुल्म की चिकित्सा करते २ पित्त कुपित हो जावे तो उस अवस्था में विरेचन देना चाहिये। पित्त कफ आदि दोषों को नष्ट करने वाली औषधियों के सेवन करने पर भी यदि गुल्म शान्त न होवे तो गुल्म में रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ पित्तगुल्मचिकित्सा ।

त्रिवृच्चूर्णम्—

पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना । विरेचनायससितं कम्पिल्लं च समाक्षिकम् ॥

त्रिवृच्चूर्ण—पित्तज गुल्म में निशोथ का चूर्ण त्रिफला के जल से विरेचन के लिये पान करना चाहिये और कबीला का चूर्ण शर्करा तथा मधु से चटाना चाहिये ॥ १ ॥

द्राक्षादियोगः—

द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुडं पिबेत् । सशर्करं वा विलिहेत्त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ॥ १ ॥

द्राक्षादि योग—पैत्तिक गुल्म में दाख और हर्रा का स्वरस निकाल कर गुड़ मिलाकर पीना चाहिये अथवा त्रिफला का चूर्ण शर्करा के साथ खाना चाहिये ॥ १ ॥

पथ्याद्यं घृतम्—

रसेनाऽऽमलकेक्षूणां घृतपादं विपाचयेत् । पथ्यायाश्च पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ॥१॥

पथ्याद्य घृत—आँवले का रस और उसी के समान ईख का रस और मूर्च्छित गोघृत चतुर्थांश तथा रस के समान ही हर्रा का क्वाथ इनके साथ क्रम से (एक २ के साथ पृथक् २) घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से पित्तज गुल्म नष्ट होता है ॥१॥

द्राक्षाद्यं घृतम्—

द्राक्षामधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम् । परूषकाणि त्रिफलां साधयेत् पलसम्मिताम् ॥१॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च । घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ २ ॥
साधयेत्तद् घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम् । प्रयोगः पित्तगुल्मघ्नः सर्वगुल्मविकारनुत् ॥३॥

द्राक्षादि घृत—दाख, मुलहठी, खजूर का फल, विदारीकन्द, शतावरि, फालसा, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा प्रत्येक एक २ पल लेकर कुछ कूट कर एक आढ़क (४ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ उतार छानकर रख लेवे, आँवले का स्वरस (एक प्रस्थ), ईख का रस, गौ का दूध प्रत्येक

जितना क्वाथ हो उसके समान (एक प्रस्थ) और मूर्च्छित, गोघृत एक कुड़व (४ प्रस्थ) तथा हर्रा का कल्क १ पल लेकर क्रम से विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् स्वरसादिकों का पाक करते हुए मन्द २ अग्नि पर घृत सिद्ध करे जब घृत मात्र शेष रह जावे तब उतार-छानकर शीतल होने पर घृत के चतुर्थांश शर्करा और मधु मिलाकर सेवन करने से पैत्तिक गुल्म नष्ट होता है तथा गुल्म के अन्य सब विकार नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

पथ्यम्—शालिं गोछागदुग्धं च पटोलं घृतमिश्रितम् ।
द्राक्षां परूषकं धात्रीं खर्जूरं दाडिमं सिताम् । पथ्यार्थं पैत्तिके गुल्मे बलातोयं च योजयेत् ॥

पित्तजगुल्म में पथ्य—शालिधान का चावल, गौ तथा बकरी का दूध, परवर का शाक (घृत में सिद्ध किया हुआ) दाख, फालसा, आँवला, खजूर का फल, अनार, शर्करा और बरियारे का स्वरस अथवा क्वाथ ये सब पित्तज गुल्म में पथ्य के लिए देना चाहिये ॥ १ ॥

अथ श्लेष्मगुल्मचिकित्सा ।

स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीक्ष्णस्रंसनबस्तिभिः । योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥१॥

कफज गुल्मचिकित्सा—कफज गुल्म में स्नेहपान, उपनाह कर्म, स्वेद कर्म, तीक्ष्ण स्रंसन बस्ति तथा वातगुल्म में कहे हुए योगों का व्यवहार कराकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

तिलादिस्वेदः—

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च । श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥१॥

तिलादि स्वेद—तिल, एरण्ड बीज, (तुषरहित) तीसी और सर्सो इनको पीस कर गुल्म (कफज गुल्म) पर लेप कर लोहे के पात्र को कुछ तपा कर (सहने योग्य) उससे गुल्म को स्वेद देवे । इससे कफज गुल्म शमन होता है ॥ १ ॥

यवान्यादियोगः—

यवानीं चूर्णितां तक्रे बिडेन लवणीकृताम् । श्लेष्मगुल्मे पिबेद्वातमूत्रवर्चोनुलोमनीम् ॥ १ ॥

यवान्यादि योग—जवाइन तथा विडनमक के चूर्ण को मट्ठे में मिलाकर पान करने से कफज गुल्म में वात-मूत्र-पुरीष का अनुलोमन होता है अर्थात् कफज गुल्म में लाभ होता है ॥१॥

क्षीरषट्पलं घृतम्—

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहाकासज्वरापहम् ॥१॥

क्षीरषट्पल घृत—पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल और सोंठ तथा यवाखार इनको एक-एक पल लेकर पाक करे, मूर्च्छित गोघृत और गोदुग्ध प्रत्येक एक-एक प्रस्थ एकत्र कर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से कफज गुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास रोग और ज्वर को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मिश्रकस्नेहः—

त्रिवृता त्रिफला दन्ती दशमूलं पलोन्मितम् । जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥
सर्पिरेरण्डतैलं च क्षीरं चैकत्र साधयेत् । संसिद्धो मिश्रकस्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥२॥

मिश्रक स्नेह—निशोथ, आंवरा, हर्रा, बहेरा, दन्तीमूल तथा दशमूल ओषधियों को पृथक्-पृथक् एक २ पल के प्रमाण से लेकर चौगुने जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार-छानकर जितना क्वाथ हो उसके समान भाग मूर्च्छित गोघृत, एरण्ड तैल और दूध (गाय का) लेकर एकत्र पाक करे और जब केवल स्नेह (घृत-तैल) मात्र शेष रहे तब उतार-छानकर रख लेवे । इसे 'मिश्रक स्नेह' कहते हैं । इसको मधु मिलाकर सेवन करने से कफज गुल्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्यम्—

कुलत्थाञ्जीर्णशालींश्च षष्टिकान्यवजाङ्गलान् । मद्यं तैलं घृतं तक्रं कफगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

कफज गुल्म में पथ्य—कफज गुल्म में कुलथी, पुराने शालिधान का चावल, साठी, जौ, जांगल जीवों का मांसरस, मद्य, तेल, घी और मठ्ठा इन सब द्रव्यों का पथ्य में प्रयोग करना चाहिये ॥

अथ त्रिदोषगुल्मचिकित्सा ।

वरुणादिकषायस्तु गुल्मं दोषत्रयोत्थितम् । हन्ति हृत्पार्श्वशूलाढ्यं सोपद्रवमसंशयम् ॥१॥

त्रिदोष-गुल्म-चिकित्सा—वरुणादि कषाय पान करने से त्रिदोषज गुल्म, हृदय का शूल, पार्श्वशूल और अन्यान्य गुल्मों के सभी उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शार्ङ्गधराद्वरुणादिक्वाथ—

वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः । अग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् ॥ १ ॥
सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः । अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ॥ २ ॥
वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः । हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाऽभ्यन्तरविद्रधीन् ॥३॥

वरुणादि क्वाथ—वरुणा की छाल, अगस्त्य का फूल, बेल की छाल, अपामार्ग की जड़, चित्रक की जड़, गनियार छोटा, गनियार बड़ा, सहिजन और रक्त सहिजन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कटसरैया श्वेतपुष्प की नील पुष्प की तथा पीत पुष्प वाली तीनों पृथक् २, मूर्वामूल, मेढ़ासिंगी, चिरैता, अजशृंगी, बिम्बीफल, करञ्ज और शतावरि ये वरुणादि हैं । इनको समान लेकर क्वाथ कर सेवन करने से कफ, मेद, गुल्म रोग, शिरःशूल और अन्तर्विद्रधि नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ रक्तगुल्मप्रतीकारः ।

पित्तवद्रक्तगुल्मिन्या नार्याः कार्यो यथाविधि । प्रस्निग्धस्विन्नकोष्ठाया योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥

रक्तगुल्म चिकित्सा—रक्त गुल्म वाली स्त्रियों की चिकित्सा पित्तज गुल्म के समान करनी चाहिये । पहले स्नेह पान करा कर कोष्ठ को स्वेदन करे, फिर स्निग्ध विरेचन देवे ॥ १ ॥

शताह्वादिकल्कः—

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः । कल्कः पीतो जयेद् गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥

शताह्वादि कल्क—सौंफ, नाटा करञ्ज की छाल, देवदारु, भारङ्गी और पीपरि सम भाग लेकर कल्क कर तिल के क्वाथ के अनुपान से पान करने से रक्तज गुल्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

तिलक्वाथः—

तिलक्वाथो गुडघृतव्योषभार्ङ्गीरजोन्वितः । पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः ॥

तिलक्वाथ—तिल के क्वाथ में पुराना गुड़, घृत, सोंठ, पीपरि, मरिच और बमनेठी इनके समान मिश्रित चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तजगुल्म नष्ट होता है और रजोवरोध में देने से मासिक धर्म खुल जाता है ॥ १ ॥

सुश्रुतात्तिलमूलादि चूर्णम्—**तिलमूलं च शिग्रुं च ब्रह्मदण्डीयमूलकम् ।**
मधुयष्टीत्रिकटुकैर्युतं चूर्णमुपासयेत् । पुष्परोधे वातगुल्मे स्त्रीणां सद्यः सुखावहम् ॥ १ ॥

तिलमूलादि चूर्ण—तिल की जड़, सहिजन की छाल, बमनेठी, मूली, जेठीमधु, सोंठ, पीपरि और मरिच को समभाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से रजोवरोध और वातज गुल्म में स्त्रियों को लाभ करता है ॥ १ ॥

भार्ङ्ग्यादिचूर्णम्—

भार्ङ्गीकृष्णाकरञ्जत्वग् ग्रन्थिकामरदारुजम् । चूर्णं तिलानां क्वाथेन रक्तगुल्मरुजापहम् ॥ १ ॥

माङ्गर्यादि चूर्ण—बमनेठी, पीपरि, करञ्ज की छाल, पिपरामूल, देवदारु की छाल प्रत्येक एक २ भाग लेकर चूर्ण कर तिल के क्वाथ के साथ सेवन करने से रक्त गुल्म की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

दन्त्यादिगुटिका—दन्तीहिङ्गुयवक्षारालाबुबीजकणागुडाः ।
स्नुहीक्षीरेण गुटिका सर्वेषां कर्षमात्रिका । भक्षिता रक्तगुल्मघ्नी रुधिरस्रावकारिणी ॥ १ ॥

दन्त्यादि गुटिका—दन्तीमूल, शुद्ध हींग, यवाखार, कड़ुतुम्बी का बीज, पीपरि, पुराना गुड़ एक २ भाग लेकर स्नुही क्षीर मर्दन कर वटी बनावे । एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से रक्तगुल्म और रजोवरोध नष्ट होता है ॥ २ ॥

अर्कपुष्पयोगः—पक्वं तैलेऽर्कजं पुष्पं रुधिरस्रावकारि च ॥ १ ॥

अर्कपुष्पयोग—मदार के फूल को तेल के साथ पाक कर पान करने से रुधिर का स्राव होता है (रजोवरोध नष्ट होता है) ॥ १ ॥

पलाशक्षारघृतम्—

पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेद्वधूः । यस्मिन्नवसरे क्षारतोयसाध्यघृतादिषु ॥ १ ॥
फेनोद्गमस्य निर्वृत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः । स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ २ ॥

पलाश क्षार घृत—पलाश के क्षार का जल ४ भाग और मूर्च्छित गोघृत १ भाग के साथ घृत सिद्ध करे, जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार-छानकर स्त्री को पिलाने से रक्तज गुल्म नष्ट होता है और जो मासिक धर्म बन्द हो गया है वह होने लगता है। जिस समय क्षार के जल से घृत पाक किया जाता है उस समय फेन उसमें अधिक होता है और फटे हुए दूध के समान वह देखने में हो जाता है यही लक्षण घृत के उचित पाक होने का समझना चाहिये। यदि इस रूप का नहीं हो तो पाक ठीक नहीं हुआ, यह जानना चाहिये ॥ १-२ ॥

वृन्दान्मुण्डयादि चूर्णम्—

मुण्डीरोचनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम् । विदधीतास्रगुल्मिन्यां मलसंरेचनाय च ॥१॥

मुण्डयादि चूर्ण—मुण्डी और वंशलोचन दोनों को समभाग लेकर चूर्ण कर शर्करा और मधु मिलाकर सेवन करने से रक्तगुल्म वाली स्त्रियों के मल का रेचन हो कर रक्तगुल्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिर्वाऽसृग्दरो हितः । अतिप्रवृत्तमस्रं तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत् ॥२॥

उष्ण द्रव्यों से रक्त गुल्म का भेदन करे और जब भेदन से रक्त निकल जावे तब उसमें रक्त प्रदर में कही हुई विधि हितकारक है। गुल्म के भेदन होने के कारण यदि रक्त का अधिक स्राव होने लगे तो उसका अवरोध भी करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

चित्रकादिक्वाथः—

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीक्वाथः परं हितः । शूलानाहविबन्धेषु सहिङ्गुबिडसैन्धवः ॥ १ ॥

चित्रकादि क्वाथ—चित्रकमूल, पिपरामूल, एरण्डमूल और सोंठ समभाग लेकर क्वाथ कर शुद्ध हींग, बिडनमक और सेंधा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से शूल, आनाह और विबन्ध रोग में अत्यन्त हितकारी होता है ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादिचूर्णम्—

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाशटी,वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् ।
पथ्यापुष्करवेतसाम्लहपुषाजाज्यस्तदेभिः कृतं, चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरस्य च ॥

आध्मानग्रहणीविकारगुदजान्गुल्मान्गुदावर्तकान्
प्रत्याध्मानगदं तथाऽश्मरियुतं तूनिप्रत्यारोचकान् ।
ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां
प्रत्यष्ठीलिकिकामथापहरते प्राक्पीतमुष्णाम्बुना ॥ २ ॥
हृत्कुक्षिवङ्क्षणकटीजठरान्तरेषु बस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च ।
शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिङ्ग्वादि मान्द्यमिदमाश्विनसंहितायाम् ॥ ३ ॥

हिंग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, पीपरामूल, धनियाँ, जीरा, वच, चाव, चित्रकमूल, पुरइन पाढ़ी, कचूर, वृक्षाम्ल (कोकम), सेंधानमक, सोचरनमक, विडनमक, सोंठि, पीपरि, मरिच, पीपल, यवाखार, सज्जीखार, अनारदाना, हर्रा, पुहकरमूल, अम्लवेत, हाऊबेर, जीराश्वेत, सम भाग (एक १ भाग) लेकर चूर्ण बना कर अद्रक के स्वरस से भावना देवे, फिर जम्बीरी नीबू के स्वरस से भावित कर उष्णोदक के अनुपान से पीने से आध्मान, ग्रहणी, अर्श, गुल्म, उदावर्त, प्रत्याध्मान, अश्मरी, तूनी, प्रतूनी, अरुचि, ऊरुस्तम्भ, मतिभ्रम (भ्रमरोग), मानस रोग (उन्मादादि), बधिरता, अष्ठीला, प्रत्यष्ठीला आदि रोग, हृदय, कुक्षि, वंक्षण, कटि, उदर, बस्ति, स्तन, स्कन्ध दोनों, तथा दोनों पार्श्वों के शूल और वात कफ से उत्पन्न शूल इन सब को तथा मन्दाग्नि को भी नष्ट करता है। आश्विन संहिता में इस चूर्ण का नाम 'हिंग्वादि चूर्ण' है ॥ १-३ ॥

वृन्दाद्धिङ्गुनवकम्—

हिङ्गु पुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी । श्यामा बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥१॥
यवक्वाथोदकेनैतद् घृतभृष्टेन पाययेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥

हिंगुनवक—शुद्ध हींग, पुहकरमूल, तेजबल के फल, हर्रा, कृष्णा सारिवा, बिडनमक, सेंधा-नमक, यवाखार और सोंठ इन ओषधियों को सम भाग लेकर चूर्ण कर रखे, पुनः घृत के साथ भून लेवे फिर यव के क्वाथ के अनुपान से उपरोक्त चूर्ण को सेवन करने से शूल तथा उपद्रवों सहित गुल्म रोग फूट जाता है ॥ १-२ ॥

भास्करलवणाद्यं चूर्णम्—

सामुद्रलवणं ग्राह्यमष्टकर्षमितं बुधैः । एवं सौवर्चलं ग्राह्यं बिडसैन्धवधान्यकम् ॥ १ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं जीरकपत्रकम् । नागकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा ॥ २ ॥
द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद् बुधः । मरीचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ३ ॥
दाडिमस्य चतुष्कर्षं त्वगेला चार्धकर्षिका । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् ॥ ४ ॥

भास्करलवणाद्य चूर्ण—बुद्धिमान वैद्य सामुद्र नमक और सोचर नमक ८ कर्ष और बिडनमक सेंधानमक, धनिया, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, श्वेत जीरा, तेजपात, नागकेसर, तालिसपत्र, अम्लवेत, प्रत्येक दो २ कर्ष तथा मरिच, जीरा और सोंठि एक २ कर्ष, अनारदाना ४ कर्ष, दाल-चीनी आधा कर्ष और छोटी इलायची के दाने आधा कर्ष सबको एकत्र चूर्ण कर लेवे। यह 'भास्कर लवणाद्य चूर्ण' कहा जाता है ॥ १-४ ॥

शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुरासवैः । वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षतम् ॥ ५ ॥
अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम् । शोथं शूलं श्वासकासमामदोषं च हृद्रुजम् ॥
मन्दाग्निं नाशयत्येतद्दीपनं पाचनं परम् । सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा ॥ ७ ॥

इस चूर्ण को एक शाण (४ माशा) के प्रमाण की मात्रा से दही के पानी, तक्र, मद्य अथवा आसव के अनुपान से सेवन करने पर वातकफ से उत्पन्न गुल्म, प्लीहा, उदर, क्षतरोग, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, विबन्ध, भगन्दर, शोथ, शूल, श्वास, कास, आमदोष, हृदय की पीड़ा, मन्दाग्नि इन सब

रोगों को नष्ट करता है। यह चूर्ण अत्यन्त दीपन तथा पाचक है। इस चूर्ण को संसार के कल्याण के लिये पहले भास्कर ने कहा था इसीसे इसका नाम 'भास्कर लवण' है ॥ ५–७ ॥

क्षारद्वयादि—

क्षारद्वयानलव्योषनीलीलवणपञ्चकम् । चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ १ ॥

क्षारद्वयादि योग—यवाखार, सज्जीखार, चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, नील, सेंधानमक, सोंचरनमक, बिडनमक, समुद्रनमक और उद्भिदनमक सम भाग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अग्निमुखरसः—

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् । पिप्पली त्रिगुणा ज्ञेया शृङ्गवेरं चतुर्गुणम् ॥
यवानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी । चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ॥ २ ॥
एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया । पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ ३ ॥
उदावर्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा ।
अङ्गानि यस्य शीर्यन्ते विषं वा येन भक्षितम् । अर्शोहरो दीपनश्च शूलघ्नो गुल्मनाशनः ॥

अग्निमुख रस—शुद्ध हींग एक भाग, बच दो भाग, पीपरि तीन भाग, सोंठि ४ भाग, अजवाइन ५ भाग, हर्रा ६ भाग, चित्रकमूल ७ भाग, कूठ ८ भाग लेकर चूर्ण बना कर प्रसन्ना, दही, दही के पानी, सुरा अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने पर वात को तथा उदावर्त, अजीर्ण, प्लीहा और उदररोग को नष्ट करता है तथा जिसके अङ्ग शिथिल हो गये हों अथवा जिसने विष भक्षण किया हो उन्हें लाभ करता है तथा अर्शरोग, शूल रोग और गुल्मरोग को भी नष्ट करता है। यह दीपन है ॥ ४ ॥

कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव क्षयनाशनः । चूर्णो ह्यग्निमुखो नाम्ना न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥

यह 'अग्निमुख'नामक चूर्ण कास और क्षय को भी शीघ्र नष्ट करता है। यह चूर्ण अपने नाम के प्रभाव को नष्ट नहीं होने देता-अर्थात् उपर्युक्त सभी रोगों में अवश्य लाभ करता है ॥ ५ ॥

काङ्कायनगुटिका—

यवानी जीरकं धान्यं मरिचं गिरिकर्णिका । अजमोदोपकुञ्च्यौ च चतुःशाणाः पृथक् पृथक् ॥
हिङ्गु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम् । त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत्सुधीः ॥
दन्ती शटी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा । चित्रोऽम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिःपृथक्॥
बीजपूररसेनैषां गुटिकां कारयेद् बुधः । घृतेन पयसा चाम्लै रसैरुष्णोदकेन वा ॥ ४ ॥
पिबेत्काङ्कायनप्रोक्ता गुटिका गुल्मनाशिनी । मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ॥५॥
मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम् । उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ॥ ६ ॥
हृद्रोगं ग्रहणीशूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ७ ॥

काङ्कायन गुटिका—अजवाइन, जीरा, धनिया, मरिच, इन्द्रायण, अजमोदा, कृष्ण जीरा प्रत्येक चार २ शाण (१६–१६ माषा), शुद्ध हींग ६ शाण, यवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, बिड नमक, सोंचर नमक, सामुद्र नमक, उद्भिद नमक और निशोथ पृथक् पृथक् आठ २ शाण और दन्तीमूल, कचूर, पुष्करमूल, बायबिडंग, अनारदाना, हर्रा, चित्रकमूल, अम्लवेत, सोंठ प्रत्येक १६–१६ शाण लेकर चूर्ण कर बिजौरा नीबू के रस में मर्दन कर वटी बना लेवे। इस वटी को घृत, दूध, अम्लरस (कांजी आदि) अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से यह काङ्कायन वटी गुल्म को नष्ट करती है। मद्य के अनुपान से वातिक गुल्म, गोदुग्ध से पैत्तिक गुल्म, गोमूत्र से कफज

गुल्म, दशमूल के क्वाथ से त्रिदोषज गुल्म और ऊँटनी के दूध के अनुपान से स्त्रियों के रक्तगुल्म, हृद्रोग, ग्रहणी, शूल, कृमि तथा अर्श को नष्ट करती है ॥ १–७ ॥

चिञ्चाक्षारादिशङ्खवटी—

चिञ्चाक्षारं स्नुहीक्षारमर्कक्षारं पलं पलम् । द्विपलं शङ्खजं भस्म रामठं च पलार्धकम् ॥ १ ॥
लवणानि च सर्वाणि पलमात्राणि योजयेत् । क्षारद्वयं पलार्धं च सर्वमेकत्र योजयेत् ॥ २ ॥
जम्बीरकरसैर्मर्द्यमनलस्य दिनत्रयम् । भृङ्गराजस्य निर्गुण्ड्या मुण्ड्याश्चैव पृथग्द्रवैः ॥ ३ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव प्रत्येकं दिनमर्दितम् । बदरीबीजमात्रांस्तु वटकान् कारयेद्भिषक् ॥ ४ ॥

चिञ्चाक्षारादि शङ्खवटी—इमली का क्षार, सेहुड़ का क्षार, मदार का क्षार एक २ पल, शङ्ख भस्म दो पल, शुद्ध हींग आधा पल (२ कर्ष), पांचों नमक मिलित एक पल, यवाखार और सज्जी खार दोनों मिलित आधा पल लेकर सबको एकत्र मर्दन कर जमीरी नीबू के रस तथा चित्रकमूल के स्वरस के साथ पृथक् २ तीन २ दिन तक मर्दन करे। फिर भांगरे के रस, निर्गुण्डी के रस, मुण्डी के रस और अद्रक के रस के साथ पृथक् २ एक २ दिन मर्दन कर बेर के बीज के समान (प्रमाण) वटी बना कर वैद्य रख लेवे ॥ १–४ ॥

एकैकं भक्षयेत्प्रातः पञ्च गुल्मान् व्यपोहति । सर्वं शूलं निहन्त्याशु अजीर्णं च विषूचिकाम् ॥
मन्दाग्निं नाशयेच्छीघ्रं पथ्यं तैलाम्लवर्जितम् । चिञ्चाशङ्खवटी नाम ग्रहणीरोगहारिणी ॥६॥

इसकी एक २ वटी प्रातःकाल सेवन करने से पांचों प्रकार के गुल्म नष्ट होते हैं और सब प्रकार के शूल रोग, अजीर्ण, विषूचिका और मन्दाग्नि शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके साथ पथ्य में केवल तेल और खटाई वर्जित है। यह 'चिञ्चा शङ्खवटी' नामक औषधि ग्रहणी रोग को नष्ट करने में उत्तम कही गयी है ॥ ५–६ ॥

वज्रक्षारः—

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम् । टङ्कणं स्वर्जिकाक्षारं तुल्यं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैः शोषयेदातपे त्र्यहम् । अर्कपत्रं लिपेत्तेन रुद्ध्वा भाण्डे पुटे पचेत् ॥२॥
तं क्षारं चूर्णयित्वाऽथ त्र्यूषणं त्रिफलारजः ।
जीरकं रजनी वह्निर्नवकस्य समं ततः । क्षारार्धं योजयेत्सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ ३ ॥
वज्रक्षारमिमं शुद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ ४ ॥

वज्रक्षार—सामुद्र नमक, सेंधा नमक, काच नमक, यवाखार, सोचर नमक, शुद्ध टङ्कण और सज्जीखार सम भाग लेकर चूर्ण कर मदार के दूध और सेंहुड़ के साथ पृथक् २ तीन दिन तक भावना देवे फिर मदार के पत्तों में लपेट कर एक हांड़ी में रखकर मुख बन्द कर अग्नि पर जला कर भस्म कर लेवे और मर्दन कर इस भस्म में सोंठि, पीपरि, मरिच, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, जीरा, हरदी, चित्रकमूल इन नौ द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण कर भस्म (क्षार) जितना हो उसके आधा इस मिलित चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर रख लेवे। इस 'शुद्धवज्रक्षार' को स्वयं महादेवजी ने कहा था ॥ १–४ ॥

सर्वोदरेषु गुल्मेषु शूले शोफे च योजयेत् । अग्निमान्द्ये त्वजीर्णे च अष्टनिष्कद्वयं तथा ॥

इसको सब प्रकार के उदर रोग, गुल्म, शूल, शोथ, मन्दाग्नि और अजीर्ण में देना चाहिये। इसकी मात्रा दो निष्क के प्रमाण की चाहिये ॥ ५ ॥

वाताधिके जलैः कोष्णैर्घृतैः पित्ताधिके हितः । कफे गोमूत्रसंयुक्त आरनालैस्त्रिदोषजुत् ॥ ६ ॥

वात की अधिकता में कुछ उष्ण जल के अनुपान से, पित्त की अधिकता में घृत से, कफ की अधिकता में गोमूत्र से और त्रिदोष की अधिकता में कांजी के अनुपान से सेवन करना चाहिये। अर्थात् इन २ अनुपानों से तीनों दोषों के कोप से होने वाले गुल्म आदि नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

योगसाराच्छङ्खद्रावः—प्रस्थं जम्बीरनीरं वदरपरिमितं काकतुण्डस्य मूलं
कर्षार्धं स्वर्जिकायास्त्रिपटुपलयुतं नव्यसारं पलार्धम् ।
तत्सर्वं सूर्यतापे मुनिदिनयुगलं काचकूप्यां निधाय
हन्याद् गुल्मं सुतीव्रं जठरमलरुजं शङ्खकद्रावसंज्ञः ॥ १ ॥

शङ्खद्राव का लक्षण और गुण—जमीरी नीबू का रस एक प्रस्थ, काकनासा की जड़ कोल प्रमाण (२ शाण), सज्जीखार आधा कर्ष, सेंधानमक, सौंचर नमक और विडनमक मिश्रित १ पल, नरसार आधा पल लेकर सबको एकत्र कर काच के वर्तन में रख कर चौदह दिन तक सूर्य के ताप में रख कर सेवन करने से तीव्र गुल्म रोग, उदररोग और मल की पीड़ा (मल का उचित निर्गम नहीं होना) आदि सब नष्ट होते हैं । इसका नाम 'शङ्खद्राव' है ॥ १ ॥

अन्यः शङ्खद्रावः—

स्फटकीपलमेकं च सैन्धवं पलमेव च । द्विपलं च यवक्षारं द्विपलं नवसागरम् ॥ १ ॥
चतुष्पलं सुराक्षारं पलार्धं कासिसं तथा । डमरुयन्त्रयोगेन तुल्यां वै बदरीन्धनैः ॥ २ ॥
साधयेल्लाघवात्पूर्णं शङ्खद्रावरसं परम् । गुल्मादिसर्वरोगेषु देयः सर्वसुखप्रदः ॥ ३ ॥

फिटकिरी, सेन्धा नमक १-१ पल, यवाखार, नरसार दो पल, सोरा ४ पल, कासीस आधा पल लेकर मर्दन कर विधिपूर्वक डमरू यन्त्र में रख कर चूल्हे पर चढ़ा कर बेर की लकड़ी के आँच से पाचन करे । यह 'शङ्खद्राव रस' लघुता के कारण शीघ्र यन्त्र में ऊपर चढ़ जावेगा । इसको गुल्म आदि सभी उदर रोगों में देने से लाभ होता है ॥ १-३ ॥

अन्यश्च—

सैन्धवं च यवक्षारं नरसारं तथैव च । प्रत्येकं द्विपलं ग्राह्यं सुराक्षारं चतुष्पलम् ॥ १ ॥
स्फटकीपलमेकं च पलार्धं कासिसं तथा । सर्वमेकत्र संयोज्य डमरूयन्त्रमध्यगे ॥ २ ॥
चुल्ल्यां प्ररोहयेत्तत्तु ज्वालयेत्खादिरेन्धनैः । द्रावितं तत्समादाय तेजोरूपं जलप्रभम् ॥ ३ ॥
द्रावयेदखिलान् धातून् वराटांश्च न संशयः । शङ्खद्रावरसो नाम गुल्मोदरहरः परः ॥ ४ ॥

सेंधा नमक, यवाखार और नरसार प्रत्येक दो २ पल लेवे, सोरा ४ पल, फिटकिरी १ पल कासीस आधा पल लेकर उसको एकत्र कर डमरू यन्त्र में रख कर चूल्हे पर चढ़ा कर खैर की लकड़ी का आँच देवे । इससे द्रवित तेजोरूप जल के समान औषध को रख लेवे । इस शङ्खद्राव से सब धातु द्रवित हो जाते हैं (गल जाते हैं) और कौड़ियाँ भी द्रवित हो जाती हैं । यह 'शङ्खद्राव' नामक रस गुल्म तथा उदर रोग का अत्यन्त नाश करने वाला है ॥ १-४ ॥

क्रव्यादरसः—

द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् । पारदं पलमानेन मृतशुल्वायसी पुनः ॥ १ ॥
कर्षमानेन सम्मिश्र्य पञ्चाङ्गुलदले क्षिपेत् । ततो विचूर्ण्य यत्नेन निक्षिप्याऽऽयसपात्रके ॥२॥
चुल्ल्यां निवेश्य यत्नेन ज्वालयेन्मृदुवह्निना । पात्रे पात्रे हि जम्बीररसं तत्र प्रदापयेत् ॥
पञ्चकोलसमुद्भूतैः कषायैः साम्लवेतसैः । भावनाः खलु दातव्याः पञ्चाशत्प्रमितास्तथा ॥
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् । तदर्धपञ्चलवणैः सर्वसाम्यमरीचकैः ॥ ५ ॥
सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा । ततः संशोष्य सम्पेष्य कूपिकाभ्यन्तरे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

क्रव्यादि रस—शुद्ध गन्धक दो पल लेकर अग्नि पर पिघला कर शुद्ध पारद १ पल में मिलाकर मर्दन कर विधिपूर्वक कज्जली कर उसमें ताम्र भस्म और लोह भस्म एक एक कर्ष मिला कर मर्दन कर मन्द २ अग्नि पर लोह के पात्र में पाक करें, जब द्रवीभूत हो जावे तब पर्पटी की विधि से एरण्डपत्र पर ढालकर पर्पटी बना कर फिर चूर्ण कर एक लोहे के पात्र

(कड़ाही) में रख कर चूल्हे पर चढ़ा कर उसमें एक आढ़क जमीरी नीबू के रस को मिला कर मन्द २ अग्नि पर पाक करे और चलाता रहे जब सब रस सूख जावे तब पञ्चकोल के क्वाथ पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल और सोंठि को समान लेकर विधिपूर्वक अठगुने जल में क्वाथ कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान देवे और अम्लवेत के क्वाथ से पृथक् पृथक् ५० बार भावित कर सुखा लेवे । सूखने पर जितना यह औषध हो उसके समान भाग भूना हुआ (शुद्ध टङ्कण) सोहागा का चूर्ण मिलावे और सुहागे के आधा भाग पांचो नमक का मिश्रित चूर्ण मिलावे, तथा सब मिला कर जितना हो उसके बराबर मरिच का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर चणकक्षार के जल से सात भावना देकर सुखा कर पीस कर शीशी में रख लेवे ॥१-६॥

अत्यन्तगुरुभोज्यानि गुरुमांसान्यनेकशः । भक्षेच्चाऽऽकण्ठपर्यन्तं ततो देयो रसोत्तमः ॥ ७ ॥
चतुर्वल्लमितो देयस्तक्रैः सलवणैरपि । भक्तं जीर्यति तत्क्षिप्रं जायते दीपनं परम् ॥ ८ ॥
रसः क्रव्यादनामाऽयं प्रोक्तो मन्थानभैरवः ।
सिंहलक्षोणिपालाय भूरिमांसभुजे पुरा । ततः क्रव्यादकः प्रोक्तो हठं प्रत्ययकारकः ॥ ९ ॥

अत्यन्त गुरु भोज्य पदार्थ, अनेक प्रकार के गुरु मांसादि कण्ठ पर्यन्त भोजन कर अर्थात् अधिक से अधिक प्रमाण में भोजन कर इस रस को ४ वल्ल के प्रमाण की मात्रा से सेवन करना चाहिये । इसको नमक मिले हुए मट्ठे के साथ भी देते हैं । इसके सेवन से भोजन शीघ्र पचता है और अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है । इस 'क्रव्याद भैरव' नामक रस को मन्थान भैरव ने सिंहल देश के राजा के लिये कहा था जो बहुत मांसभोजी था । इसलिये इसका नाम 'क्रव्याद रस' कहा गया, यह अत्यन्त पाचन है ॥ ७-९ ॥

कुर्याद्दीपनमुद्धतं पवनजे देहे परं शोषणं
तुन्दस्थौल्यनिबर्हणो गदहरो दुष्टव्रणार्तिप्रणुत् ।
कासश्वासविनाशनो ग्रहणिकाविध्वंसनः स्रंसनो
गुल्मप्लीहजलोदरोपशमनः क्रव्यादनामा रसः ॥ १० ॥

यह रस अत्यन्त अग्नि को दीप्त करता है, वातज शरीर में अत्यन्त शोषक है । पेट के निकले हुए तोंद और स्थूलता को नष्ट करता है, रोग को हरण करता है और दुष्ट व्रण की पीड़ा कास, श्वास तथा ग्रहणी को नष्ट करता है और स्रंसन सारक अर्थात् मल निकालने वाला है । और गुल्म, प्लीहा, जलोदर को यह क्रव्याद नामक रस नष्ट करता है ॥ १० ॥

विश्वहिङ्गुबिडैः सार्धं क्रव्यादो भक्षितो रसः । गुल्मानशेषान् प्लीहानं विद्रधीनपि नाशयेत् ॥
सोंठि, शुद्ध हींग और बिड नमक के समान मिश्रित चूर्ण के साथ इस क्रव्याद रस को भक्षण करने से सब प्रकार के गुल्मरोग, प्लीहा और विद्रधि भी नष्ट होता है ॥ ११ ॥

गदनिग्रहाच्चविकासवः—

चविकायास्तुलार्धं तु तदर्धं चित्रकस्य च । बाष्पिका पुष्करं मूलं षड्ग्रन्था हपुषा शटी ॥१॥
पटोलमूलत्रिफलायवानीकुटजत्वचः । विशाला धान्यकं रास्ना दन्ती दशपलोन्मिता ॥ २ ॥
कृमिघ्नमुस्तमञ्जिष्ठादेवदारुकटुत्रिकम् । भागान् पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ३ ॥
द्रोणशेषे रसे पूते देयं गुडशतत्रयम् । धातक्या विंशतिपलं चातुर्जातं पलाष्टकम् ॥ ४ ॥
लवङ्गव्योषकक्कोलं पलिकानि प्रकल्पयेत् । निदध्यान्मासमेकं तु घृतभाण्डे सुसंस्कृते ॥ ५ ॥

चविकासव—चव्य आधा तुला (५० पल) और उसके आधा (२५ पल), चित्रकमूल और बाष्पिका (हींग अथवा कृष्ण जीरा), पुहकरमूल, पिपरामूल, हाऊबेर, कचूर, परवर की जड़ (पत्र सहित देना चाहिये), त्रिफला (आँवरा, हर्रा, बहेरा), जवाइन, कोरया की छाल,

आहरि, धनियाँ, रास्ना और दन्तीमूल प्रत्येक दस २ पल और वायबिडंग, नागरमोथा, मजीठ, देवदारु, सोंठि, मरिच, पीपरि प्रत्येक ५-५ पल लेकर सबको एकत्र कर आठ द्रोण (३२ आढक) जल के साथ विधिपूर्वक अष्टमांशशेष पाक कर उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ तीन सौ पल, धाय का फूल २० पल और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर इन चारों का सम मिश्रित चूर्ण आठ पल, तथा लवंग, सोंठि, पीपरि, मरिच, कङ्कोल इनका एक २ पल चूर्ण को लेकर सबको एक में मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख कर मुख बन्द कर आसव की विधि से एक मास रखा रहने देवे ॥ १-५ ॥

चतुष्पलां पिबेन्मात्रां प्रातः पीतं नियच्छति । सर्वगुल्मविकारांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥६॥
प्रतिश्यायं क्षयं कासमष्ठीलां वातशोणितम् । उदराण्यन्त्रवृद्धिं च चविकाख्यो महासवः ॥७॥

एक मास के पश्चात् छानकर (जब आसव सिद्ध हो जावे तब) रख लेवे । इसको प्रातःकाल ४ पल के प्रमाण की मात्रा से पान करने से सब प्रकार के गुल्मरोग, २० प्रकार के प्रमेह, प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्ठीला, वातरक्त, उदररोग, अन्त्रवृद्धि आदि सभी इस चविकादि नामक महासव से नष्ट होते हैं ॥ ६-७ ॥

कुमार्यासवः—

कुमार्याश्च रसद्रोणे गुडं पलशतं तथा । तुलाङ्घ्रिसंख्यां विजयां क्वाथयेत्तज्जलार्मणे ॥ १ ॥
चतुर्थांशावशेषे तु पूते तस्मिन्निधापयेत् । मधुनश्चाऽऽढकं दत्वा धातक्या द्विपलाष्टकम् ॥२॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य कल्कं चैव प्रदापयेत् । जातीफलं लवङ्गं च कंकोलं च कबाबकम् ॥
जटिलाचव्यचित्रं च जातिपत्री सकर्कटम् । अक्षं पुष्करमूलं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ४ ॥
सूतं शुल्वं तथा लोहं शुक्तिमात्रं प्रदापयेत् । भूम्यां वा धान्यराशौ वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ॥
तमुद्धृत्य पिबेन्मात्रां यथा चाग्निबलाबलम् । पञ्चकासं तथा श्वासं क्षयरोगं च दारुणम् ॥६॥
उदराणि तथाऽष्टौ च षडर्शांसि च नाशयेत् । वातव्याधिमपस्मारमन्यान् रोगान् सुदारुणान् ॥

कुमारी आसव—कुमारी (घृत कुमारी) के १ द्रोण (४ आढक) रस में पुराना गुड़ सौ पल, विजया (भांग) २५ पल लेकर एक द्रोण जल के साथ क्वाथ करे चौथाई शेष रहने पर उतार-छानकर रख लेवे । शीतल होने पर इसमें मधु एक आढक (चार प्रस्थ), धाय का फूल १६ पल मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख कर उसमें जायफर, लवंग, कंकोल, कबाबचीनी, पीपरि, चव्य, चित्रकमूल, जावित्री, काकड़ासिंगी, बहेड़ा पुहकरमूल, प्रत्येक एक २ पल लेकर इनका कल्ककर (श्लोकार्थ कल्क ही है पर चूर्ण दिया है) मिला देवे और ताम्र भस्म और लोह-भस्म एक २ शुक्ति (आधा २ पल) मिलाकर मुख मुद्रण कर भूमि में अथवा धान्यराशि में आसव की विधि से रखकर बीस दिन तक रहने दे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर निकाल—छानकर अग्निबल के अनुसार मात्रा से पान करने से पाँचों प्रकार के कास, श्वास तथा कठिन क्षयरोग, आठो प्रकार के उदररोग, छै प्रकार के अर्शरोग आदि नष्ट होते हैं और वातव्याधि, अपस्मार तथा अन्यान्य कठिन रोगों को भी यह आसव नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

जाठरं कुरुते दीप्तं कोष्ठशूलं च नाशयेत् ।
गुल्माष्टकं नष्टपुष्पं नाशयेदेकपक्षतः । कुमारिकासवो ह्येष बृहस्पतिविनिर्मितः ॥ ८ ॥

तथा जठराग्नि को दीप्त करता है, कोष्ठशूल को नष्ट करता है, आठो प्रकार के गुल्मों को तथा नष्टपुष्प (मासिकधर्म की रुकावट) को एक पक्ष के सेवन से नष्ट करता है । इस कुमारी आसव को बृहस्पति जी ने बनाया था ॥ ८ ॥

हिङ्ग्वादिघृतम्—

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी । श्यामा बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ १ ॥
यवक्वाथोदकेनैतद् घृतप्रस्थं विपाचयेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥

हिंग्वादि घृत—शुद्ध हींग, पुहकरमूल, तेजबल के फल, हर्रा, श्यामा (कृष्ण सारिवा), बिड नमक, सेंधानमक, जवाखार, सोंठि प्रत्येक समभाग (एक २ भाग) लेकर कल्ककर जितना हो उसके चौगुना (एक प्रस्थ) मूर्च्छित गोघृत लेकर उसमें मिलावे और उसमें यव का क्वाथ घृत से चौगुना (४ प्रस्थ) लेकर मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर सेवन करने से शूल तथा उपद्रवों से युक्त गुल्म का भेदन होता है अर्थात् नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

दाधिकघृतम्—

बिडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुग्व्योषजीरकैः । हिङ्गु सौवर्चलक्षारचुक्रवृक्षाम्लवेतसैः ॥ १ ॥
बीजपूररसोपेतैः सर्पिर्दधि चतुर्गुणम् । साधितं दाधिकं नाम्ना गुल्महृत्प्लीहशूलपरम् ॥ २ ॥

दाधिक घृत—बिडनमक, अनारदाना, सेंधानमक, चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, जीरा श्वेत, शुद्ध हींग, सोंचर नमक, यवाखार, चुक, वृक्षाम्ल (कोकम), अम्लवेत समभाग लेकर कल्क करे और कल्क के चौगुना मूर्च्छित गोघृत तथा गोघृत से चौगुना बिजौरे नीबू का रस और घृत से चौगुना ही दही मिलाकर घृत सिद्ध कर रख लेवे । यह 'दाधिक' नामक घृत गुल्म और प्लीहा को नष्ट करने वाला है ॥ १-२ ॥

वृन्दात्त्रायमाणादि—

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणं चतुष्पलम् । पञ्चभागाश्रितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥
रोहिणी कटुका मुस्ता त्रायमाणा दुरालभा । द्राक्षा तामलकी वीरा जीवन्ती चन्दनोत्पलम् ॥
रसस्याऽऽमलकानां च क्षीरस्य च घृतस्य च । पलानि पृथगष्टाष्टौ सम्यग्दत्वा विपाचयेत् ॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पित्तजं ज्वरम् । हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम् ॥४॥

त्रायमाणादि घृत—त्रायमाण को चार पल लेकर दस गुने जल के साथ क्वाथ करे जब जलकर ५ भाग शेष रहे तब उतार-छानकर यह क्वाथ ८ पल लेकर इसमें मजीठ या गम्भार, कुटकी, नागरमोथा, त्रायमाणा, जवासा, दाख, भुइ आँवला, विदारीकन्द, जीवन्ती, लालचन्दन, नील और कमल प्रत्येक सम भाग लेकर कल्क करे । मिलित यह कल्क २ पल और इसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत, आँवले का स्वरस और दूध प्रत्येक आठ पल और सम्पूर्ण द्रव्यों को क्रम से घृत पाक की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से पित्त गुल्म, रक्त गुल्म, विसर्प, पित्त ज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सामुद्रादिवर्तिः—

वातवर्चोनिरोधेषु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः । कृत्वा पायौ विधातव्या वर्तयो मरिचान्वितैः ॥ १ ॥

सामुद्रादि वर्ति—अधोवायु और मल का जब अवरोध हो जावे तब सामुद्रनमक, अद्रक, सर्सों और मरिच समभाग लेकर पीस कर विधिपूर्वक अंगूठे के प्रमाण की मोटी बत्ती बना कर गुदा में देने से यह सामुद्रादि वर्त्ति वायु और मल को निकालती है ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽऽदौ नाराचो रसः—शुद्धसूतं समं गन्धं जेपालं त्रिफलासमम् ।
त्रिकटुं पेषयेत्क्षौद्रमिश्रं गुल्मं लिहन् हरेत् । उष्णोदकं पिबेच्चानु नाराचोऽयं रसोत्तमः ॥१॥

नाराच रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमालगोटा, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, सोंठि, पीपरि, मरिच इनका पृथक् २ चूर्ण एक २ भाग लेकर प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली कर फिर इन सब को एकत्र मर्दन (खरल) कर यथायोग्य मात्रा से मधु मिलाकर चाट कर उष्णोदक का अनुपान करे तो यह नाराच नामक उत्तम रस गुल्म को नाश करता है ॥ १ ॥

वडवानलरसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतं ताम्राभ्रटङ्कणम् । सामुद्रं च यवक्षारं स्वर्जिसैन्धवनागरम् ॥ १ ॥
अपामार्गस्य च क्षारं पालाशं वत्सनाभकम् । प्रत्येकं सूततुल्यं स्याच्चणकाम्लेन मर्दयेत् ॥२॥
हस्तिकन्याद्रवैश्चाहो आर्द्रयुक्तं पुटेल्लघु ।
माषैकं भक्षयेन्नित्यं रसोऽयं वडवानलः । सर्वगुल्मं निहन्त्याशु ग्रहणीं च विशेषतः ॥ ३ ॥

वडवानल रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध टङ्कण, समुद्रनमक, यवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, सोंठि, अपामार्ग का क्षार, पलास का क्षार, शुद्ध वत्सनाभ विष, प्रत्येक पारद के समान अर्थात् सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर सब द्रव्यों के उत्तम चूर्ण को तथा भस्म को मिला कर चणकाम्ल (चनाखार का जल) के साथ मर्दन करे फिर केले के स्वरस, घृतकुमारी के स्वरस, तथा अद्रक के स्वरस के साथ पृथक् २ मर्दन कर पुटपाक की विधि से लघु पुट देकर एक माषा के प्रमाण की मात्रा से नित्य भक्षण करने से यह 'वडवानल रस' सब प्रकार के गुल्मों को शीघ्र नष्ट करता है और विशेष कर ग्रहणी रोग को नष्ट करता है ॥ १–३ ॥

गुल्मकुठारो रसः—

नागवङ्गाभ्रकं कान्तं समं ताम्रं समांशकम् । जम्बीरस्वरसैर्घृष्ट्वा वटी गुञ्जाप्रमाणिका ॥१॥
मधुनाऽऽर्द्रकनीरेण क्षारयुग्मेन सेविता ।
अजीर्णमामं गुल्मं च हृत्पार्श्वोदरशूलके । नाम्ना गुल्मकुठारोऽयं सर्वगुल्मान् व्यपोहति ॥१॥

गुल्म कुठार रस—नाग (शीशा) भस्म, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, कान्त लौह भस्म, ताम्र भस्म समान (एक २ भाग) लेकर मर्दन कर जमीरी नीबू के रस के साथ-खरल कर एक रत्ती के प्रमाण की वटी बना कर मधु और अद्रक स्वरस और यवाखार तथा सज्जी खार इनके अनुपान के साथ सेवन करने से अजीर्ण, आम दोष, गुल्म, हृदय, पार्श्व और उदर के शूल तथा सब प्रकार के गुल्मों को यह गुल्मकुठार नामक रस नष्ट करता है ॥ १ ॥

काश्यपान्मदेभसिंहसूतो रसः—

रसगन्धवराटताम्रशङ्ख विषवङ्गाभ्रककान्ततीक्ष्णमुण्डम् ।
अहिहिङ्गुलटङ्कणं समांशं सकलं तत्त्रिगुणं पुराणकिट्टम् ॥ १ ॥
पशुमूत्रविशोधितं हि घृष्ट्वा त्रिफलाभृङ्गरजार्द्रकोत्थनीरैः ।
सुविशोष्य वरामृताशिवासास्वरसैरष्टगुणैः पुनर्नवोत्थैः ॥ २ ॥
पृथगग्निकृतं घनं विपाच्य गुटिका गुञ्जयुता निजानुपानैः ।
ज्वरपाण्डुतृषास्रपित्तगुल्मक्षयकासस्वरवह्निसादमूर्च्छाः ॥ ३ ॥
पवनादिषु दुस्तराष्टरोगान् सकलं पित्तहरं मदात्ययं च ।
बहुना किमसौ यथार्थनामा सकलव्याधिहरो मदेभसिंहः ॥ ४ ॥

मदेभसिंहसूत रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कौड़ीभस्म, ताम्रभस्म, शङ्खभस्म, शुद्धविष, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, मुण्डलौहभस्म, नागभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्धटङ्कण प्रत्येक समभाग (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर

अन्य औषधियों को एकत्र खरल कर सब मिलाकर जितना हो उसके तिगुना पुराना मण्डूर गोमूत्र से शोधित मिलाकर मर्दन कर त्रिफला के क्वाथ, भांगरे के स्वरस और अद्रक के स्वरस के साथ पृथक् २ भावित कर सुखाकर त्रिफला, गुरुचि, अरूसा और पुनर्नवा इनके पृथक् २ अठगुने स्वरस के साथ अग्नि पर पाक करे जब पकते २ घना हो जावे तब उतार कर एक गुञ्जा के प्रमाण की वटी बनाकर अनुपान विशेष से सेवन करने से ज्वर, पाण्डु, तृषा, रक्तपित्त, गुल्म, क्षय, कास, स्वरभंग, मन्दाग्नि, मूर्च्छा तथा वातादिरोग, कठिन आठो प्रकार के कुष्ठादि रोग, सब प्रकार के पित्तरोग और मदात्यय को नष्ट करता है। अधिक क्या यह 'मदेभसिंह' नामक रस यथार्थ में सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १–४ ॥

प्रवालपञ्चामृतरसः—

प्रवालमुक्ताफलशङ्खशुक्तिकपर्दिकानां च समांशभागम् ।
प्रवालमात्रं द्विगुणं प्रयोज्यं सर्वैः समांशं रविदुग्धमेव ॥ १ ॥
एकीकृतं तत्खलु भाण्डमध्ये क्षिप्त्वा मुखे बन्धनमत्र योज्यम् ।
पुटं विदध्यादतिशीतले च उद्धृत्य तद्भस्म क्षिपेत्करण्डे ॥ २ ॥
नित्यं द्विवारं प्रतिपाकयुक्तं वल्लप्रमाणं हि नरेण सेव्यम् ।
आनाहगुल्मोदरप्लीहकासश्वासाग्निमान्द्यान् कफमारुतोत्थान् ॥ ३ ॥
अजीर्णमुद्गारहृदामयघ्नं ग्रहण्यतीसारविकारनाशनम् ॥ ४ ॥

प्रवाल पञ्चामृतरस—प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, शङ्खभस्म, शुक्ति (सीप) भस्म और कौड़ीभस्म समान भाग लेवे और केवल दो भाग लेवे और मर्दनकर जितना हो उसके समान मदार के दूध को मिलाकर खरलकर शराव-सम्पुट में रख कर मुखमुद्रण कर पुटपाक की विधि से गजपुट में फूंक देवे और स्वांगशीत होने पर निकाल कर उस भस्म को पात्र में रख लेवे। इसको १ वल्ल (१॥ रत्ती) के प्रमाण की मात्रा से नित्य दो बार सेवन करने से आनाह, गुल्म, उदर, प्लीहा, कास, श्वास, मन्दाग्नि, कफ तथा वात से उत्पन्न रोग, अजीर्ण, उद्गार, हृदय के रोग, ग्रहणी तथा अतीसार आदि रोग नष्ट होता है ॥ १–४ ॥

मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् । नाशयेन्नात्र सन्देहः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ ५ ॥

प्रमेह रोग, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी इन सब रोगों को प्रवाल पञ्चामृत रस अवश्य नष्ट करता है। यह गुरु के वचन के समान सत्य है ॥ ५ ॥

पथ्याश्रितं भोजनमादरेण समाचरेन्निर्मलचित्तवृत्त्या ।
प्रवालपञ्चामृतनामधेयो योगोत्तमः सर्वगदापहारी ॥ ६ ॥

इस'प्रवालपञ्चामृत' के सेवन के समय प्रसन्न चित्त होकर पथ्य ही भोजन करना चाहिये। सब रोगों को नष्ट करने वाला यह योग अति उत्तम है ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

संवत्सरसमुत्पन्नाः कलमा रक्तशालयः । खण्डं कुलत्थयूषश्च धन्वमांसरसः सुरा ॥ १ ॥
गवामजायाश्च पयो मृद्वीका च परूषकम् । तक्रमेरण्डतैलं च लशुनं बालमूलकम् ॥ २ ॥
पत्तूरो वास्तुकं शिग्रुर्मातुलुङ्गं हरीतकी । वातानुलोमनं चैव पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—एक वर्ष के पुराने कलम तथा शालिधान के चावल, शक्कर, कुलथी का यूष, धन्वदेशीय जीवों का मांसरस, मद्य, गौ तथा बकरी का दूध, मुनक्का, फालसा, मट्ठा, एरण्डतैल, लहसुन, छोटी मूली, पत्तूरनामक शाक, बथुआ, सहिजन, बिजौरा नीबू, हर्रा और वात को अनुलोमन करने वाले पदार्थ गुल्म रोग में मनुष्यों के लिये पथ्य होते हैं ॥ १–३ ॥

माषादयः शिम्बिधान्ये शूकधान्ये यवादयः। वल्लूरं मूलकं मत्स्यं मधुराणि फलानि च ॥

शिम्बीधान्यों में उड़द आदि और शूकधान्यों में यव आदि तथा सूखा मांस, मूली, मछली, मीठे फल आदि को गुल्म का रोगी नहीं सेवन करे ॥ ४ ॥

अधोवायुशकृन्मूत्रश्रमश्वासाश्रुधारणम्। वमनं जलपानं च गुल्मरोगी परित्यजेत् ॥ ५ ॥

अधोवात, मल, मूत्र, परिश्रम, श्वास, आँसू इनके वेग का धारण, वमन कर्म, अधिक जलपान अथवा अनियमित जलपान इन सबको गुल्म का रोगी त्याग देवे ॥ ५ ॥

इति गुल्मप्रकरणं समाप्तम्

अथातो हृद्रोगनिदानम्।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तैः श्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

हृद्रोग का निदान—अति उष्ण और अतिगुरु पदार्थों और अति अम्ल—अतिकषाय तथा अति तिक्त रस वाले पदार्थों के अति सेवन करने से, अत्यन्त परिश्रम करने से, आघात होने से, अध्यशन अर्थात् भोजन करने के पश्चात् पुनः भोजन कर लेने से, अति मैथुन से, अति चिन्ता से और मलमूत्रादि के वेगों के अवरोध से, हृदय दूषित होकर पांच प्रकार का हृद्रोग होता है ॥१॥

तस्य संप्राप्तिमाह—

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः। हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

हृद्रोग की सम्प्राप्ति—वातादि दोष अपने कुपित होने के कारण कुपित होकर रसधातु को दूषित कर और हृदय में प्रवेश कर जो पीड़ा उत्पन्न करते हैं उस पीड़ा को हृद्रोग कहते हैं ॥२॥

वातिकमाह—

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा। निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥ ३ ॥

वातिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में हृदय तन जावे (फैल जावे), हृदय में सूई चुभाने के समान, मथने के समान, चीरने के समान, फोड़ने के समान या टूटने (टुकड़े करने) के समान पीड़ा हो उस हृदय रोग को वात के प्रकोप का (वातज) हृद्रोग जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पैत्तिकमाह—

तृष्णोष्णदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये क्लमः। धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥

पैत्तिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में तृषा, उष्णता, दाह, चूसने के समान हृदय में पीड़ा और क्लान्ति हो, मुख से धूंआ निकलने के समान ज्ञात हो, मूर्च्छा, स्वेद और मुख सूखता हो उस हृदय रोग को पित्त के प्रकोप का (पैत्तिक) जानना चाहिये ॥ ४ ॥

श्लैष्मिकमाह—

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम्। माधुर्यमपि चाऽऽस्यस्य बलासावतते हृदि ॥

कफज हृद्रोग—जिस हृद्रोग में भारीपन हो (हृदय भारी हो), मुख से कफ का स्राव, अरुचि, जड़ता, मन्दाग्नि और मुख मधुर स्वाद का बना रहे उस हृदय रोग को कफ के प्रकोप का (कफज) जानना चाहिये ॥ ५ ॥

त्रिदोषकृमिजयोर्लक्षणमाह—

विद्यात्त्रिदोषमप्येवं सर्वलिङ्गं हृदामयम्। त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ ६ ॥
तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते। मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति ॥ ७ ॥

त्रिदोषज तथा कृमिज हृद्रोग—जिस हृदयरोग में वातादिक तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण दिखाई देवें उसको त्रिदोष के कोप का (त्रिदोषज) हृद्रोग जानना चाहिये। हृद्रोग में जो दुरात्मा मनुष्य तिल, दूध, गुड़ आदि का अधिक सेवन करता है उसके हृदय में मर्म के एक स्थान में ग्रन्थि (गांठ) उत्पन्न हो जाती है, उसमें क्लेद होता है और रस भी पहुँचता रहता है ॥ ६-७ ॥

तत्क्लेदात्कृमयश्चास्य भवन्त्युपहतात्मनः। तीव्रार्तितोदं कृमिदं तद्दोषत्रयसम्भवम् ॥ ८ ॥

अपथ्य करनेवाले रोगी को उसी क्लेद से कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और उससे हृदय में कठिन पीड़ा होती है, सूई चुभाने के समान ज्ञात होता है। इसको त्रिदोषज कृमिज हृद्रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः। अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥९॥

कृमिज हृद्रोग—जिस हृद्रोग में उबकाई आवे (वमन की इच्छा हो-हो कर रुक जावे), मुख से अधिक थूक निकले, सूई चुभाने के समान पीड़ा हो, शूल, हृल्लास (वमनेच्छा), आँखों के सामने अंधेरा, अरुचि, नेत्र श्याम वर्ण के हो जावें और शोष हो उस हृद्रोग को कृमिज जानना चाहिये ॥ ९ ॥

उपद्रवाः—**क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।**
क्रिमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ते मताः ॥ १० ॥

हृद्रोग के उपद्रव—क्लोम (शिथिलता), भ्रम और शोथ ये सब हृद्रोग के उपद्रव हैं। कृमिज हृद्रोग में कृमिरोग के उपद्रव और कफ दोष सम्बन्धी कहे गये उपद्रव होते हैं ॥ १० ॥

अथ हृद्रोगचिकित्सा।

वातहृद्रोगः—

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम्। द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन वा ॥ १ ॥

वातज हृद्रोग की चिकित्सा—वातज हृदय रोग में रोगी को स्नेह देकर दशमूल के क्वाथ को पिलाकर अथवा स्नेह युक्त पदार्थों में नमक मिलाकर पान करा कर वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम्—

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम्। सौवर्चलमथो शुण्ठी दीप्यश्चेति विचूर्णितम् ॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः। पाययेच्छुद्धदेहस्य वातहृद्रोगशान्तये ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपरि, छोटी इलायची, वच, शुद्ध हींग, यवाखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, सोंठ और जौ सबको एक-एक भाग लेकर चूर्ण कर यथायोग्य मात्रा से फलों के रस, काँजी, कुलथी के रस वा क्वाथ, दही, मद्य और आसव इनमें से किसी एक के अनुपान से रोगी को वमनादि से शुद्ध कर सेवन कराने से वातिक हृद्रोग शमन होता है ॥ १-२ ॥

पुष्करमूलाद्यं चूर्णम्—

सपुष्कराख्यं फलपूरमूलं महौषधं शट्यभया च कल्कः।
क्षाराम्लसर्पिर्लवणैर्विमिश्रः स्याद्वातहृद्रोगहरो नराणाम् ॥ १ ॥

पुष्करमूलाद्य चूर्ण—पुष्कर मूल, बिजौरा नीबू की जड़, सोंठ, कचूर, हर्रा, सम भाग ले कल्क बनाकर यवाखार, काँजी, घृत, नमक इन सबको उस कल्क में मिश्रित कर सेवन करने से मनुष्यों का वातज हृदयरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पित्तजहृद्रोगः—

श्रीपर्णी मधुकं क्षौद्रं सितागुडजलैर्वमेत्। पित्तोपसृष्टे हृदये सिञ्चेत मधुरैः शृतैः ॥ १ ॥

पित्तज हृद्रोग चिकित्सा—गम्भार की छाल, मुलहठी, मधु, शर्करा और पुराना गुड़ इनको

जल के साथ पीस-घोलकर पान कर वमन कराना चाहिये । इससे पित्तज हृदयरोग शमन होता है । पित्तज हृदयरोग वाले मधुर द्रव्यों के शीतल क्वाथों से सिञ्चन करना चाहिये ॥ १ ॥

शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ १ ॥

पित्तज हृद्रोग वाले को शीतल पदार्थों का लेप लगाना चाहिये और शीतल क्वाथों से सिञ्चन करना चाहिये, तथा द्राक्षा, शर्करा, मधु और फालसा इनको जल के साथ पीस कर पान कराकर विरेचन देकर शुद्ध कराकर तब पित्तनाशक अन्न-पान आदि सेवन कराना चाहिये ॥ १ ॥

द्राक्षादिचूर्णम्—

हारहूराहरीतक्योस्तुल्यं शर्करया रजः । पीतं हिमाम्बुना हन्ति पित्तहृद्रोगमञ्जसा ॥ १ ॥

द्राक्षादि चूर्ण—द्राक्षा और हरीतकी इनको समान लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके बराबर शर्करा मिलाकर मर्दन कर मात्रापूर्वक शीतल जल के अनुपान से पान करने से पित्तज हृद्रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अर्जुनादिचूर्णम्—

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं पित्तहृदार्तिजित् । सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥१॥

अर्जुनादि क्षीरपाक—अर्जुन की छाल का कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना गाय का दूध मिलाकर पाकार्थ जल दूध से चौगुना मिलाकर दुग्धपाक की विधि से पाक कर केवल दूध शेष रहने पर उतार-छानकर शीतल होने पर उसमें शर्करा मिलाकर पान करने से पित्तज हृद्रोग नष्ट होता है एवं लघु पञ्चमूल (शालिपर्ण्यादि) से विधिपूर्वक सिद्ध किया दूध अथवा बरिआरा और मुलहठी के कल्क के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया दूध पित्तज हृद्रोग को शमन करता है ॥ १ ॥

वृन्दात् कसेरुकादिसर्पिः—

कसेरुकाशैवलशृङ्गबेरप्रपौण्डरीकं मधुकं बिसं च ।
ग्रन्थिश्च सर्पिः पयसा पचेत्तैः क्षौद्रान्वितं पित्तहृदामयघ्नम् ॥ १ ॥

कसेरुकादि घृत—कसेरू, सेवार और अद्रक, पुंडरिया, मुलहठी, भिसाण और नागरमोथा अथवा पिपरामूल समभाग लेकर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और पाकार्थ घृत से चौगुना गोदुग्ध मिलाकर घृत सिद्धकर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर शीतल कर मधु मिलाकर सेवन करने से पित्तज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कफजहृद्रोगः—

हृद्रोगे कफजे स्विन्नं सुवान्तं लङ्घितं नरम् । कफघ्नैर्भेषजैर्युञ्ज्याज्ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥१॥

कफज हृद्रोग चिकित्सा—कफज हृद्रोग के रोग को स्वेद देकर वमन और लङ्घन कराकर दोष-बल आदि का विचार करके कफनाशक औषध का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

त्रिवृताद्यौ चूर्णक्वाथौ—

त्रिवृच्छटीबलारास्नाशुण्ठीपथ्याः सपौष्कराः । चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्याः कफहृद्गदे ॥२॥

त्रिवृतादिचूर्ण और क्वाथ—निशोथ, कचूर, बरिआरा, रास्ना, सोंठि, हर्रा और पुहकरमूल समभाग लेकर चूर्ण अथवा क्वाथ बनाकर गोमूत्र के साथ पान करने से (चूर्ण को गोमूत्र के अनुपान से और क्वाथ को गोमूत्र के प्रक्षेप से) कफज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथैलादि—

सूक्ष्मैला मागधीमूलं पटोलं सर्पिषा सह । नाशयेदाशु हृद्रोगं कफजं सपरिग्रहम् ॥ १ ॥

एलादिचूर्ण—छोटी इलायची के दाने, पिपरामूल, परवर की जड़ वा डाकपात समभाग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से उपद्रवों सहित कफज हृद्रोग नष्ट होता है ॥१॥

त्रिदोषजहृद्रोगः—त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्यादन्नं तु सर्वेषु हितं विधेयम् ।
चूर्णानि सर्पींषि च वक्ष्यमाणान्यत्र प्रयोज्यानि भिषग्भिराशु ॥ १ ॥

त्रिदोषज हृद्रोग चिकित्सा—त्रिदोषज हृद्रोग में प्रथम लङ्घन कराना चाहिये फिर त्रिदोषों को शमन करने वाले अन्न को देना चाहिये तथा दूसरे जगह (आगे) कहे हुए चूर्ण तथा घृतादि का प्रयोग इसमें वैद्य को शीघ्र करना चाहिये ॥ १ ॥

कृमिजहृद्रोगः—

हृद्रोगे कृमिजे कार्यं लङ्घनं चापतर्पणम् । पश्चात्कृमिहरं कर्म कृमिरोगोक्तमाचरेत् ॥ १ ॥

कृमिज हृद्रोग चिकित्सा—कृमिजन्य हृद्रोग में पहले लङ्घन और पीछे अपतर्पण कराना चाहिये । तत् पश्चात् कृमिरोग में कहे हुए कृमिनाशक कर्मों को करना चाहिये ॥ १ ॥

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम् । हृदि स्थिताः पतन्त्येव ह्यसाध्याः कृमयो नृणाम् ॥

कृमिजन्य हृदोग में बायबिडंग और कूठ इनके समान चूर्ण को लेकर गोमूत्र के अनुपान से पान करने पर मनुष्यों के हृदय में रहने वाले असाध्य कृमि भी गिर जाते हैं ॥ २ ॥

अथ सामान्यहृदामयप्रतीकारः ।

पवनारिजटा द्विपलाष्टगुणे सलिले पचिता यवजेन युतम् ।
क्वथनं हृदयोद्भवपार्श्वतटीकटिशूलविदारणसिंहनखम् ॥ १ ॥

हृद्रोग के सामान्य प्रतीकार—एरण्डमूल की छाल को दो पल लेकर अठगुने जल में पाककर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छानकर यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से हृदय के शूल, पार्श्वदेश के शूल और कटिशूल इन सबको नष्ट करने में सिंह के नख के समान है अर्थात् जिस तरह सिंह का नख हाथियों के मस्तक को फाड़ देता है उसी तरह यह क्वाथ इन रोगों को नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

दशमूलादिक्वाथः—

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारसंयुतः । पीतो निहन्ति सहसा हृदामयमसंशयम् ॥ १ ॥

दशमूलादि क्वाथ—दशमूल के द्रव्यों को समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें सेंधा नमक और यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से हृद्रोग को हठात् निश्चय ही नष्ट करता है ॥ १ ॥

पुष्करादिक्वाथः—क्वाथः कृतः पुष्करमातुलुङ्गपलाशपूतीकशटीसुराह्वैः ।
सनागराजाजिवचायवाह्वसक्षार उष्णो लवणेन पेयः ॥ १ ॥

पुष्करादि क्वाथ—पुहकरमूल, बिजौरा नीबू की जड़, पलास की जड़, पूतिकरंज, कचूर, देवदारु, सोंठि, जीरा, वच और यवाखार समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार और सेंधानमक का प्रक्षेप देकर पान करने से हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादिचूर्णम्—हिङ्गूग्रगन्धाबिडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ।
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ १ ॥

हिंग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, अजवाइन, बिडनमक, सोंठि, पीपरि, कूठ, हर्रा, चित्रकमूल, यवाखार, सोंचरनमक और पुहकरमूल समान लेकर चूर्ण बनाकर इसको यव के विधिवत् बने हुए क्वाथ के अनुपान से सेवन करने से शूल और हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

चूर्णं पुष्करमूलस्य मधुना सह लेहयेत् । हृल्लासश्वासकासघ्नं हृदामयहरं परम् ॥ १ ॥

पुष्कर चूर्ण—पुष्कर मूल का चूर्ण बना कर मधु के अनुपान से सेवन करने से हृल्लास, श्वास, कास और हृदय रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

ककुभाद्यं चूर्णम्—घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबेत्सचूर्णं ककुभत्वचोत्थम् ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं जित्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ १ ॥

ककुभाद्य चूर्ण—घृत के अनुपान से, दूधके अनुपान से अथवा गुड़ के जल के अनुपान से इनमें से किसी एक के साथ (अनुपान से) विधिपूर्वक बनाया हुआ अर्जुन की छाल का चूर्ण सेवन करने से हृदय रोग, जीर्ण ज्वर तथा रक्तपित्त नष्ट होता है । यह आयुवर्धक है ॥ १ ॥

एणश्रृङ्गभस्मयोगः—

शरावसम्पुटे दग्ध्वा शृङ्गं हरिणजं पिबेत् । गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥१॥

एणश्रृङ्ग भस्म योग—एण मृग के सींग को शराव सम्पुट में रख कर विधिपूर्वक गजपुट में पुट देकर भस्म कर पीस कर गोघृत में मिला कर (गोघृत के अनुपान से) पान करने से हृदय के शूल को निश्चित ही नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात् कटुकादि—

पिष्ट्वा वा कटुका पेया सयष्टीका सुखाम्बुना । जीर्णज्वरं रक्तपित्तं हृद्रोगं च व्यपोहति ॥१॥

कटुकादि योग—कुटकी और जेठी मधु सम भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर सुखोष्ण जल के साथ पान करने से जीर्ण ज्वर, रक्तपित्त और हृदय रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

अथादौ वल्लभघृतम्—शतार्धमभयानां तु सौवर्चलपलद्वयम् ।
पचेत्कल्कैर्घृतप्रस्थं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् । घृतं वल्लभकं नाम्ना श्रेष्ठं हृद्रोगनाशनम् ॥१॥

वल्लभ घृत—सुपक्व उत्तम हरड़ संख्या में ५०, और सोंचर नमक दो पल लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो अथवा एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना (४ प्रस्थ) गोदुग्ध मिला कर घृतपाक की विधि से मन्द २ अग्नि पर पाक करे, घृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से हृद्रोग नष्ट होता है । यह 'वल्लभ' नाम का उत्तम घृत है ॥ १ ॥

यष्ट्यादिघृतम्—

यष्टीनागबलोदीच्यार्जुनैः सर्पिः सुसाधितम् । हृद्रोगक्षयपित्तास्रश्वासकासज्वरार्तिजित् ॥१॥

यष्ट्यादि घृत—जेठी मधु, नागबला, सुगन्धवाला, अर्जुन की छाल सममाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और पाकार्थ घृत से चौगुना जल देकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, रक्तपित्त, श्वास, कास और ज्वरादि तथा इनकी पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात् पुनर्नवादितैलम्—

पुनर्नवादारुसपञ्चमूलरास्नायवाङ्कोलकपित्थबिल्वम् ।
पक्त्वा जले तेन पचेच्च तैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्गदघ्नम् ॥ १ ॥

पुनर्नवादि तेल—पुनर्नवा (गदहपुरना), दारुहरदी, पञ्चमूल (शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू) की पाँचों ओषधियाँ पृथक् २, रास्ना, जव, अङ्कोल, कैथ और बेल की छाल इन ओषधियों को पृथक् २ एक २ भाग लेकर आठगुने जल के साथ विधिपूर्वक क्वाथ करे और चौथाई शेष रहने पर उतार छान लेवे तथा जितना क्वाथ हो उसके चौथाई मूर्च्छित तिल का तेल लेकर मिलाकर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर तेल मात्र शेष रहने पर उतार छान कर इसके मर्दन करने से अथवा पान करने से वातज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽऽदौ त्रिनेत्रो रसः—

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना । एकविंशतिधा घर्मे भावितानि विधानतः ॥ १ ॥
माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा त्रिदोषजम् । कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ॥२॥

त्रिनेत्र रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्म सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अभ्रक भस्म मिलाकर मर्दन कर अर्जुन वृक्ष की छाल के जल (स्वरस अथवा क्वाथ) २१ बार घाम में रखकर भावना की विधि से भावित कर रख लेवे। इस चूर्ण को एक माष (मासा) के प्रमाण की मात्रा से मधु के साथ लेह बनाकर सेवन करने से वात जनित, पित्तज, कफज अथवा त्रिदोषज और कृमिज हृद्रोग निश्चित ही नष्ट होते हैं ॥ १–२ ॥

हृदयार्णवरसः—सूतार्कगन्धं क्वाथेन वराया मर्दयेद्दिनम् ।
काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्रां तु भक्षयेत् । हृदयार्णवनामाऽयं हृद्रोगदलनो रसः ॥१॥

हृदयार्णव रस—शुद्धपारद, ताम्रभस्म और शुद्ध गन्धक सम भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर ताम्र भस्म मिलाकर मर्दन कर त्रिफला के क्वाथ के साथ दिन भर मर्दन करे फिर मकोय के स्वरस के साथ दिन भर खरल कर चने के प्रमाण की बटी विधिपूर्वक बना कर सेवन करने से यह 'हृदयार्णव' नामक रस हृद्रोग को नष्ट करने वाला है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

शालिर्मुद्गा यवा मांसं जाङ्गलं मरिचान्वितम् । पटोलं कारवेल्लं च पथ्यं प्रोक्तं हृदामये ॥१॥

पथ्यापथ्य—शालि धान्य, मूंग, जव, जाङ्गल जीवों का मांसरस, मरिच का चूर्ण मिला हुआ परवर, करैली ये सब हृदय रोग में पथ्य हैं ॥ १ ॥

तैलाम्लतक्रगुर्वन्नकषायश्रममातपम् । रोषं स्त्रीनर्म चिन्तां वा भाष्यं हृद्रोगवांस्त्यजेत् ॥२॥

तेल, अम्लरस वाले पदार्थ, तक्र, गुरु अन्न, कषाय रस वाले पदार्थ, परिश्रम, धूप सेवन, क्रोध, मैथुन, चिन्ता और अधिक सम्भाषण ये सब हृद्रोग का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये सब अपथ्य हैं ॥ २ ॥

इति हृद्रोगप्रकरणम् समाप्तम्

अथ उरोग्रहनिदानम् ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात् । सास्रं मांसं यकृत्प्लीह्नोः सद्यो वृद्धिं यदा गतम् ॥
उरोग्रहं तदा कुक्षौ कुरुतः कफमारुतौ ।

उरोग्रह निदान—अत्यन्त अभिष्यन्दी पदार्थ के सेवन से, अति गुरु अन्न के सेवन से और सूखा हुआ तथा दुर्गन्ध युक्त मांस के खाने से मांस तथा रक्त के सहित शीघ्र यकृत और प्लीहा जब बढ़ जाते हैं तब कुक्षि स्थान में कफ और वायु प्रविष्ट होकर उरोग्रह रोग को करते हैं ॥ १ ॥

सस्तम्भं सज्वरं घोरं रूक्षं स्पर्शासहं गुरुम् ॥ २ ॥
आध्मानं कुक्षिहृत्कण्ठे वातविण्मूत्ररोधतः । तन्द्रारोचकशूलानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥

उरोग्रह के लक्षण—उरोग्रह रोग में स्तम्भन, घोर ज्वर, रूक्षता, स्पर्श का सहन नहीं होना, गुरुता, कुक्षि, हृदय और कण्ठ में आध्मान, अधोवायु, मल तथा मूत्र का अवरोध, तन्द्रा, अरुचि और शूल होते हैं ॥ २–३ ॥

अथ उरोग्रहचिकित्सा ।

अत्राऽऽशु स्वेदनं युक्त्या वमनं रक्तमोक्षणम् । तीक्ष्णैर्निरूहणं चैकं क्रमाल्लङ्घनमाचरेत् ॥१॥

उरोग्रह चिकित्सा—उरोग्रह रोग में शीघ्र स्वेदन कर्म, वमन कर्म, रक्तमोक्षण, तीक्ष्ण पदार्थों से निर्मित निरूह बस्ति और क्रम से लङ्घन कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

पुत्रजीवकशिग्रुत्वक्सूर्यावर्तबलोद्भवाः । रसा एकैकशः कोष्णा द्विशो वा रामठाश्रिताः ॥२॥
सपञ्चलवणाः पेयास्त्रिवृद्गुडयुकल्किताः । तन्निवृत्तौ यथालाभं मूत्रतैलसुरासवैः ॥ ३ ॥
वच्याम्लवेतसक्षाररामठसचित्रकान् । पिबेत्सक्षारनालाभ्यामुरोग्रहनिवृत्तये ॥ ४ ॥

पुत्रजीवक, सहिजन की छाल, सूर्यमुखी और बरिआरा इनमें से एक-एक द्रव्य का रस अथवा दो २ द्रव्यों का रस थोड़ा गरम कर शुद्ध हींग के प्रक्षेप के साथ पान करने से तथा पाँचो नमक मिश्रित, निशोथ और गुड़ इन द्रव्यों के कल्क विधिपूर्वक बनाकर पान करने से और उरोग्रह के निवृत्त होने पर गोमूत्र, तिल का तेल, मद्य और आसव इनमें से जो प्राप्त हो सके उसके साथ वच, अम्लवेत, यवाखार, शुद्ध हींग और चित्रक मूल इनके समान मिश्रित विधिवत् बने चूर्ण को पान करने से अथवा इस चूर्ण को तेल और कांजी के साथ पान करने से उरोग्रह निवृत्त होता है ॥ १-४ ॥

यो वा नरस्यात्र कृतस्य कर्मणो विधिविरुद्धो न भवेन्मनागपि ।
यथाबलं वीक्ष्य च शुद्धविग्रहं तथाविधं पथ्यमपि प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

पथ्यापथ्य—यहाँ इस रोग में कहे हुए जो कर्म हैं उनको करे तथा जो विधि तनिक भी विरुद्ध न हो उसे (पथ्य) करे और बल आदि का विचार कर विधिपूर्वक पथ्य भी देवे और रोगी का शरीर निरन्तर शुद्ध रक्खे ॥ ५ ॥

इति उरोग्रहप्रकरणं समाप्तम्

अथातो मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात् ।
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ ॥ १ ॥

मूत्रकृच्छ्र निदान—अति व्यायाम, तीक्ष्ण ओषधियों के अधिक सेवन, रूक्ष अन्न के अति सेवन, अति मद्यपान, अति मैथुन, अति नृत्य कर्म, अति शीघ्र चलने, घोड़े आदि की अधिक सवारी करने, आनूप जीवों के मांस सेवन, अति मत्स्य भक्षण, अध्यशन तथा अजीर्ण इन सब कारणों के होने से मनुष्यों को आठ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग होते हैं ॥ १ ॥

तस्य सम्प्राप्तिमाह—पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

मूत्रकृच्छ्र की सम्प्राप्ति—वातादिक मल (दोष) अपने २ प्रकोपक कारणों से कुपित होकर पृथक् २ अथवा सब मिलकर जब मूत्राशय में कोप को प्राप्त होते हैं तब मूत्रमार्ग को पीड़ित करते हैं उससे मूत्र कष्ट से होता है ॥ २ ॥

वातजमाह—तीव्रा हि रुग्वङ्क्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥

वातजमूत्रकृच्छ्र—जिस मूत्रकृच्छ्र में वङ्क्षण, बस्ति और शिश्न में तीव्र पीड़ा हो और बार २ मूत्र होवे उसे वात के कोप का (वातज) मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पित्तजमाह—पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ४ ॥

पित्तज मूत्रकृच्छ्र—जिस मूत्रकृच्छ्र में पीतवर्ण का रक्त मिश्रित, पीड़ा सहित तथा दाह सहित कष्ट से बार २ मूत्र होवे उसे पित्त के कोप का (पित्तज) मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये ॥४॥

श्लैष्मिकमाह—बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोफौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५ ॥

कफज मूत्रकृच्छ्र—जिस मूत्रकृच्छ्र में बस्ति स्थान तथा शिश्न में गुरुता और शोथ हो और मूत्र पिच्छिलता युक्त कष्ट से होता हो उसे कफ के कोप का (कफज) मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये ॥ ५ ॥

त्रिदोषजमाह—सर्वाणि रूपाणि च सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥ ६ ॥

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र—जिस मूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण हों उसे त्रिदोष के कोप का (त्रिदोषज) मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये यह (त्रिदोषज) मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य होता है ॥६॥

शल्यजमाह—मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ।
मूत्रकृच्छ्रं तदा वाताज्जायते भृशवेदनम् । वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥

शल्यजमूत्रकृच्छ्र—मूत्र को वहन करने वाली नाड़ियाँ जब किसी शल्य आदि से क्षत अथवा अभिहत (किसी प्रकार पीड़ित) हो जाते हैं, तब उस शल्य के आघात से मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न हो जाता है। इस शल्यज मूत्रकृच्छ्र में पीड़ा अत्यन्त होती है और वातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षणों के समान इसमें लक्षण दिखाई पड़ते हैं ॥ ७ ॥

पुरीषजमाह—

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः । आध्मानं वातशूलं च मूत्रसङ्गं करोति च ॥ ८ ॥

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र—मल के आघात (अवरोध) होने से वायु विकृत होकर आध्मान, वातशूल और मूत्रावरोध कर देता है ॥ ८ ॥

अथाश्मरीजमाह अश्मरीषु तु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहृतम् ॥ ९ ॥

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र—अश्मरी (पथरी) रोग के कारण जब मूत्र कष्ट से होता है तब उसे अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥ ९ ॥

शुक्रजमाह—

शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते । सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ १० ॥

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र—शुक्र दोष से (वातादि से दूषित शुक्र से) मूत्र मार्ग के उपहत (अवरुद्ध) होने पर धारण किया (रुका) हुआ वीर्य मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न कर देता है। इसमें मनुष्य को शुक्र के साथ कष्ट से मूत्र होता है और बस्ति तथा शिश्न में शूल होता है ॥ १० ॥

अवान्तरभेदमाह—

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे । शर्कराया विशेषं तु शृणु कीर्तयतो मम ॥ ११ ॥

अश्मरी और शर्करा का भेद—अश्मरी और शर्करा इन दोनों रोगों के उत्पन्न होने के कारण और लक्षण एक ही समान होते हैं। इसलिये इन रोगों के ज्ञान के लिये शर्करा के विशेष विवरण कहते हैं। (अर्थात् इस विशेषता से यह ज्ञात हो जावेगा कि अश्मरी है अथवा शर्करा) ॥ ११ ॥

पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना । विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥

जब अश्मरी (पथरी) पित्त से पकती हुई, वायु से शोषित हुई और कफ के संयोग से छोड़ी हुई (पृथक्-पृथक् टुकड़ी हुई) मूत्रमार्ग से गिरने लगती है तब उसी को शर्करा कहते हैं ॥ १२ ॥

हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षौ वह्निश्च दुर्बलः । तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥१३॥

शर्करा रोग में हृदय में पीड़ा, शरीर-कम्पन, कुक्षिस्थान में शूल, मन्दाग्नि और मूर्च्छा होती है तथा कठिन मूत्रकृच्छ्ररोग होता है ॥ १३ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

तत्राऽदौ वातमूत्रकृच्छ्रम्— अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहबस्तिस्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

वातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—वातज मूत्रकृच्छ्र में अभ्यङ्ग कर्म, स्नेह, निरूह बस्ति, स्वेद, उपनाह, उत्तर बस्ति और सेक कर्म (काथादिकों द्वारा सिञ्चन कर्म) करना चाहिये तथा सिरा, (शालिपर्णी आदि) वातनाशक ओषधियों से सिद्ध किये रसों को देना चाहिये ॥ १ ॥

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् । निष्क्वाथ्य प्रपिबेत्क्वाथं मूत्रकृच्छ्रे समीरजे ॥२॥

गुरुचि, सोंठ, आँवरा, असगन्ध, गोखरू समान (एक-एक भाग) लेकर क्वाथ की विधि से इनका क्वाथ सिद्ध कर पान करने से वातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ पित्तकृच्छ्रम् ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहाः श्रेष्ठो विधिर्बस्तिपयोविरेकाः ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतं च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ १ ॥

पित्तज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा— पित्तज मूत्रकृच्छ्र में सेक कर्म (क्वाथादिकों द्वारा सिञ्चन), अवगाहन, शीतल ओषधियों से निर्मित लेप, बस्तिकर्म, दुग्धपान (विधि से औषधादि के साथ पाक किये हुए दूध का पान) और विरेचन कर्म आदि कराना श्रेष्ठ है और दाख, विदारीकन्द ईख के रस आदि के द्वारा निर्मित घृत का सेवन कराना चाहिये ॥ १ ॥

तृणपञ्चमूलक्वाथपयसी कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम् । एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ॥१॥

तृण पञ्चमूल क्वाथ और दूध—कुश की जड़, कास (राड़ा) की जड़, शर (सरकण्डा) की जड़, दर्भ (डाभ) की जड़ तथा ईख की जड़ समभाग लेकर पान करने से यह तृण पञ्चमूल नाम का क्वाथ पित्तज मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है और बस्ति को शुद्ध करता है। इसी तृण पञ्चमूल के साथ यदि क्षीरपाक विधि से दूध सिद्ध कर पान किया जावे तो शिश्न से निकलते हुए रक्त को नष्ट करता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिक्वाथः—शतावरीकाशकुशाश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकसेरुकाणाम् ।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

शतावर्यादि क्वाथ—शतावरि, कास (राड़ा) की जड़, कुश की जड़, गोखरू, विदारीकन्द, शालि (धान्य) की जड़, ईख की जड़ और कसेरू समान लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ १ ॥

हरीतक्यादिक्वाथः—हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् ।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ १ ॥

हरीतक्यादि क्वाथ—हर्रा, गोखरू, अमलतास के फल का गूदा, पाषाणभेद (पत्थर चूर), यवासा इन द्रव्यों को एक एक भाग लेकर क्वाथ कर शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से वह मूत्रकृच्छ्र जिसमें दाह, पीड़ा और विबन्ध हो, शान्त होता है ॥ १ ॥

उर्वारुकबीजयोगः—उर्वारुबीजं मधुकं सदार्वि पित्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन ।
दार्वी तथैवाऽऽमलकीरसेन समाक्षिकां पित्तकृतेऽथ कृच्छ्रे ॥ १ ॥

उर्वारुक बीज योग—खीरे के बीज, मुलहठी, दारुहरदी, समभाग लेकर चावल के धोवन के साथ पान करने से और इसी प्रकार दारुहरदी और आँवले के रस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से (इन दोनों योगों में से किसी एक के सेवन से) पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

वृन्दान्मन्थादियोगः—मन्थं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयो वाऽर्धसिताप्रयुक्तम् ।
धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

मन्थादि योग—इस पित्तज मूत्रकृच्छ्र रोग में विधिवत् बने हुए किसी मन्थ में शर्करा और घृत मिलाकर पीना चाहिये, अथवा औटाए हुए शीतल दूध में आधा भाग शर्करा मिलाकर पीना चाहिये, अथवा आँवले का स्वरस वा ईख का स्वरस मधु के प्रक्षेप के साथ पीना चाहिये। इन योगो में किसी एक के पान करने से रक्त के सहित मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्राक्षादियोगः—

द्राक्षा सितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुना युतम् । पिबेद्वा कामतः क्षीरमुष्णं गुडसमन्वितम् ॥

द्राक्षादि योग—द्राक्षा और मिश्री दोनों को समान लेकर कल्क बनाकर दही के पानी के अनुपान से अथवा उष्ण किया हुआ दूध और पुराना गुड़ मिलाकर इच्छाभर पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

वृन्दान्नारिकेलादियोगः—

नारिकेलजलं योऽयं गुडधान्यसमन्वितम् । सदाहं मूत्रकृच्छ्रं च रक्तपित्तं निहन्ति च ॥ १ ॥

नारिकेलादि योग—नारियल के जल में पुराना गुड़ और धनियाँ का चूर्ण मिला कर पान करने से दाह सहित मूत्रकृच्छ्र तथा रक्तपित्त नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अन्यच्च—रक्तस्य नारिकेलस्य जलं कतकसंयुतम् । शर्करैलासमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रहरं विदुः ॥

रक्तवर्ण के नारियल के जल में निर्मली फल, शर्करा और छोटी इलायची के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिसर्पिः—शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकल्कसिद्धम् ।
सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ १ ॥

शतावर्यादिसर्पिः—शतावरि मूल, कास (राड़ा) की जड़, कुश की जड़, गोखरू, विदारीकन्द, ईख की जड और आँवला समभाग लेकर कल्क कर इस कल्क के साथ विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे अथवा पाक विधि से दूध ही सिद्धकर उसमें शर्करा मिला कर पान करने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। (घृत सिद्ध करना हो तो कल्क से चतुर्गुण मूर्च्छित गोघृत लेना चाहिये) ॥ १ ॥

अथ श्लेष्मकृच्छ्रम् ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहः ।
तक्रं च तिक्तोषणसिद्धतैलं बस्तिश्च शस्तः कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार (यवाखारादि), उष्ण तथा तीक्ष्ण औषध और अन्न-पानादि का सेवन करना चाहिये, स्वेदकर्म, जौ अन्न का भक्षण, वमनकर्म और निरूह बस्ति देना चाहिये, तक्र सेवन, तिक्त पदार्थ तथा मरिच इनसे सिद्ध किया हुआ तैल सेवन तथा बस्ति देना, ये सब उत्तम हैं अर्थात् इन क्रियाओं से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूत्रादियोगः—

मूत्रेण सुरया वाऽपि कदलीस्वरसेन वा । कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मां पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥

मूत्रादियोग—छोटी इलायची के सूक्ष्म चूर्ण को गोमूत्र अथवा मद्य अथवा केले के वृक्ष के रस के अनुपान से सेवन (पान) करने से, कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

तक्रादियोगो वृन्दात्—तक्रेण युक्तं सितवारुकस्य बीजं पिबेत्कृच्छ्रविघातहेतोः।
पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

तक्रादि योग—हिलिञ्चा के बीजों को चूर्ण कर तक्र के अनुपान से अथवा प्रवाल भस्म को चावल के धोवन के अनुपान से सेवन करने से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ त्रिदोषकृच्छ्रम् ।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे तु कृच्छ्रे यथाबलं कर्म समीक्ष्य कार्यम् ।
तत्राधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु वस्तिः ॥ १ ॥

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—त्रिदोष से उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों में कही हुई विधियों को रोगी के दोष बला-बल को विचार कर करनी चाहिये तथा उसमें यदि कफ की अधिकता मालूम हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये, यदि पित्त की अधिकता हो तो प्रथम विरेचन करना चाहिये तथा यदि वात की अधिकता हो तो प्रथम वस्ति कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

बृहत्यादिक्काथः—

बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गकान् । पक्त्वा क्काथं पिबेन्मर्त्यः कृच्छ्रे दोषत्रयोद्भवे ॥ १ ॥

बृहत्यादि क्काथ—बड़ी कटेरी, पृष्ठपर्णी, पुरइन पाढ़ी, जेठीमधु, इन्द्रजौ समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्काथ कर पान करने से त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिक्काथः—

शतावर्यास्तु मूलानां निक्काथः ससितामधुः । मूत्रदोषं निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवम् ॥१॥

शतावर्यादि क्काथ—शतावरि की जड़ का क्काथ बनाकर शीतल कर उसमें शर्करा और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से वात-पित्त तथा कफदोष से उत्पन्न होने वाले मूत्रदोष (मूत्रकृच्छ्र) शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडदुग्धयोगः—

गुडेन मिश्रितं दुग्धं कदुष्णं कामतः पिबेत् । मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करा वातरोगनुत् ॥ १ ॥

गुड़ दुग्ध योग—थोड़े गरम दूध में पुराना गुड़ मिला कर इच्छाभर पान करने से सभी प्रकार के (त्रिदोषज) मूत्रकृच्छ्र, शर्करा रोग और वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथाभिघातजमूत्रकृच्छ्रम ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया हिता । पञ्चवल्कलमृल्लेपः कवोष्णोऽत्र प्रशस्यते ॥१॥

अभिघातज मूत्रकृच्छ्रे चिकित्सा—अभिघात से (शस्त्रादि से क्षत अथवा अभिहत होने से) उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्र रोग में वातज मूत्रकृच्छ्र में कही हुई क्रिया हितकर है । और पञ्च-वल्कल (वट, पीपल (अश्वत्थ), पाकर, गूलर, बेत इनकी छाल) की सम भाग (एक-एक भाग) लेकर एक भाग मिट्टी मिला कर पीस कर (जल के साथ) गरम कर कुछ गर्म-गर्म लेप (पेडूपर) करने से अभिघातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मन्थादियोगः—मन्थं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयो वाऽर्धसिताप्रयुक्तम् ।
धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वाऽभिघातकृच्छ्रे मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

मन्थादि योग—विधिपूर्वक बने हुए मन्थ में शर्करा और घृत मिला कर अथवा औटाये हुए दूध में आधा भाग शर्करा मिला कर अथवा आँवले के रस में वा ईख के रस में मधु मिला कर पान करने से अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ शुक्रविबन्धजकृच्छ्रम ।

कृच्छ्रे शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् । सक्षीरं ससितं सर्पिर्मिश्रञ्चापि पिबेन्नरः ॥१॥

शुक्र विबन्धज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—शुक्र विबन्ध से मूत्रकृच्छ्र रोग में शुद्ध शिलाजीत मधु, दूध, शर्करा और घृत (गोघृत) मिश्रित कर पान करना चाहिये इससे लाभ होता है ॥ १ ॥

शुक्रदोषविशुद्ध्यर्थं समदां प्रमदां श्रयेत् । तृणपञ्चकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिबेदपि ॥ १ ॥

शुक्र विबन्धज मूत्रकृच्छ्र दोष की शुद्धि के लिये मदमत्त (यौवनमद से मत्त) स्त्री के साथ रमण करना चाहिये और तृण पञ्चमूल के योग से विधिपूर्वक सिद्ध किये घृत को पान करना चाहिये । इससे शुक्रज (शुक्रविबन्धज) मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

लेहः शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतुसमाक्षिकः ।
बलाहिङ्गुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः । मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ २ ॥

शुक्रविबन्धज मूत्रकृच्छ्र में शुद्ध शिलाजीत को मधु के साथ लेह बनाकर चाटना चाहिये और बरिआरा तथा शुद्धहींग मिले हुए दूध में गोघृत मिलाकर पीना चाहिये । इससे मूत्र दोष की शुद्धि होती है और शुक्र दोष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अथ शकृद्विघातजं कृच्छ्रम ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे । कृच्छ्रे तत्र विधिः कार्यः सर्वः शुक्रविबन्धजित् ॥

पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—मलावरोध से उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्ररोग में चूर्णसेवन, अभ्यङ्ग, वस्तिकर्म ये सब करना चाहिये और शुक्रविबन्ध को नष्ट करने वाले सब कार्य (सभी चिकित्सा) करना चाहिये । इससे पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरादिक्वाथः—

क्काथो गोक्षुरबीजानां यवक्षारयुतः सदा । मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जातं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥१ ॥

गोक्षुरादि क्वाथ—गोखरू के बीजों का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें जवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथाश्मरीजं कृच्छ्रम ।

अश्मरीजे मूत्रकृच्छ्रे स्वेदाद्या वातजित्क्रिया । पाषाणभेदक्काथस्तु कृच्छ्रमश्मरिजं जयेत् ॥ १ ॥

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र रोग में स्वेदादि कर्म वात को नष्ट करने वाले हैं उन्हें करना चाहिये । और पाषाणभेद (पथरचूर) के क्वाथ को पान करने से अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथैलादिः—एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करं साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

एलादियोग—छोटी इलायची, पीपरि, मुलहठी, पाषाणभेद, रेणुका बीज, गोखरू, अरूसा, एरण्डमूल सम भाग लेकर क्काथ कर इसमें शुद्ध शिलाजीत और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

त्रिकण्टकादिक्वाथो गदनिग्रहात्—

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्पटभेदपथ्याः ।
निघ्नन्ति पीता मधुनाऽश्मरीकां सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादि क्काथ—गोखरू, अमलतास की गुद्दी, डाभ की जड़, राड़ा की जड़, जवासा, पित्तपापड़ा, पाषाणभेद और हर्रा सम भाग लेकर क्काथ सिद्ध कर शीतल होने पर मधु प्रक्षेप देकर पान करने से मारडालने वाला भी अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पाषाणभेदादिः—पाषाणभेदस्त्रिवृता च पथ्या दुरालभा पुष्करगोक्षुरं च।
पलाशशृङ्गाटककर्कटीजबीजं कषायः सुनिरुद्धमूत्रे ॥ १ ॥

पाषाणभेदादि क्वाथ—पाषाणभेद, निशोथ, हर्रा, जवासा, पुहकरमूल, गोखरू, पलास के बीज, सिंघाड़े के बीज और ककड़ी के बीज सम भाग लेकर क्वाथ बना कर पान करने से अवरुद्ध हुए मूत्ररोग में लाभ होता है अर्थात् मूत्र सुगमता से होता है ॥ १ ॥

समूलगोक्षुरादिः—

समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः। नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥ १ ॥

समूल गोक्षुरादि क्वाथ—मूलसहित गोखरू के क्वाथ में शीतल होने पर शर्करा और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है और उष्णवात को नष्ट करता है ॥ १ ॥

यवादिर्वृन्दात्—यवोरुबूकैस्तृणपञ्चमूलीपाषाणभेदैः सशतावरीभिः।
कृच्छ्रेषु गुल्मेष्वभयाविमिश्रैः कृतः कषायो गुडसम्प्रयुक्तः ॥ १ ॥

यवादि क्वाथ—यव, एरण्डमूल, तृण पंचमूल की पाँचो ओषधियाँ, पाषाण भेद, शतावरी और हर्रा सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें पुराने गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र और गुल्म मे लाभ होता है ॥ १ ॥

अथैलादियोगः—एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां चूर्णानि तण्डुलजलैर्लुलितानि पीत्वा।
यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य धीमानासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ १ ॥

एलादि योग—छोटी इलायची के बीज, पाषाण भेद (पथरचूर), शुद्ध शिलाजीत, पीपरि सम भाग लेकर चूर्ण कर तण्डुलोदक के अनुपान से पीने से अथवा इस चूर्ण में पुराना गुड़ मिलाकर चाटने से मृत्यु के मुख में गया हुआ भी मूत्रकृच्छ्र का रोगी जीवित हो जाता है ॥ १ ॥

क्षाराणां प्रयोगः—

अङ्कोलतिलकाष्ठानां क्षारः क्षौद्रेण संयुतः। दधिवाद्यनुपानेन मूत्ररोधं नियच्छति ॥ १ ॥

क्षारों का प्रयोग—अङ्कोल के लकड़ी का और तिल के लकड़ी का क्षार समान लेकर मधु मिला कर दही के अनुपान से सेवन करने से मूत्रावरोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रनिवारणः। निदिग्धिकारसो वाऽपि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥

शर्करा और यवाखार सम भाग लेकर सेवन करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं। अथवा छोटी कटेरी के रस में मधु मिला कर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

यवक्षारसमायुक्तं पिबेत्तक्रं च कामतः। मूत्रकृच्छ्रविनाशाय तथैवाश्मरिनाशनम् ॥ ३ ॥

यवाखार को तक्र में मिला कर इच्छापूर्वक पान करने से मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

माषमेकं यवक्षारं कूष्माण्डस्वरसं पलम्। शर्कराकर्षसंयुक्तं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४ ॥

यवाखार १ माषा, श्वेतकूष्माण्ड (पेठा वा भतुहा) का स्वरस १ पल और शर्करा १ कर्ष मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ४ ॥

वृन्दाद्दाडिमादियोगः—

दाडिमाम्लयुतां हृद्यां शुण्ठीजीरकसंयुताम्। पीत्वा सुरां सलवणां मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥१॥

दाडिमादि योग—खट्टे अनार के रस, सोंठ, जीरा और सेंधा नमक मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग से मुक्ति होती है १ ॥

उर्वारुबीजकल्कं वृन्दात्—

उर्वारुबीजकल्कं च श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽक्षसंमितम्। धान्याम्ललवणैः पेयं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥

उर्वारु बीज कल्क—ककड़ी के बीज को भलीभांति पीस कर कल्क बनाकर एक कर्ष प्रमाण

लेकर धान्याम्ल (कांजी) और सेंधा नमक मिलाकर उसके अनुपान से पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिकल्कः—

त्रिफलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम्। वारिणा लवणीकृत्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥१॥

त्रिफलादि कल्क—त्रिफला समान लेकर भली भाँति पीस कर कल्क कर एक कोल (आधा कर्ष) प्रमाण लेकर सेंधानमक मिलाकर जल के अनुपान से सेवन करने से मूत्र के कष्ट को (मूत्रकृच्छ्ररोग को) नष्ट करता है ॥ १ ॥

एलादिः—

पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्रीफलरसेन वा। शितिवारकबीजं वा तक्रे श्लक्ष्णं च चूर्णितम् ॥

एलादियोग—मद्य अथवा आँवले के फल के रस के साथ छोटी इलायची के बीजों के चूर्ण को पान करने से अथवा सुसुना के शाक के बीजों के श्लक्ष्ण चूर्ण को तक्र के साथ पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

हरिद्रादिः—हरिद्रागुडकर्षैकं चाऽऽरनालेन वा पिबेत्।
वन्ध्याकर्कोटिकाकन्दं भक्षेत्क्षौद्रसितायुतम्। अश्मरीं हन्ति नो चित्रं रहस्यं हि शिवोदितम्॥

हरिद्रादि योग—हरदी और पुराना गुड़ एक कर्ष लेकर आरनाल (कांजी) के साथ भक्षण करना चाहिये। इससे (इन दोनों प्रकार के योगों से) अश्मरी नष्ट होती है। इसमें विचित्रता की (चकित होने की) कोई बात नहीं है। यह रहस्य शिवजी का कहा है ॥ १ ॥

योगसारादेलादिः—

एलागोक्षुरयोश्चूर्णं शिशोर्देयं मधुप्लुतम्। मूत्रकृच्छ्रापहः क्वाथः पेयस्तन्मूलवारिणा ॥ १ ॥

छोटी इलायची के बीज और गोखरू समभाग लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर बालकों को देने से उनका मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और इनके जड़ के क्वाथ का भी सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरजस्तथा क्वाथो यवक्षारयुतः शुभः। सर्वकृच्छ्रविनाशाय शिलाजतुयुतोऽथ वा ॥ २ ॥

गोखरू का क्वाथ बनाकर उसमें यवाखार का प्रक्षेप देकर शुद्ध शिलाजीत को मिला कर पान करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करता है ॥ २ ॥

खर्जूरादिचूर्णम्—

खर्जूरामलबीजानि पिप्पली च शिलाजतु। एलामधुकपाषाणं चन्दनोर्वारुबीजकम् ॥ १ ॥
धान्यकं शर्करायुक्तं पातव्यं ज्येष्ठवारिणा।
अङ्गदाहं लिङ्गदाहं गुदवङ्क्षणशुक्रजम्। शर्कराश्मरिशूलघ्नं बल्यं वृष्यकरं परम् ॥ २ ॥

खर्जूरादि चूर्ण—खजूर, आँवले के बीज (गिरी), पीपरि, शुद्ध शिलाजीत, छोटी इलायची, मुलहठी, पाषाण भेद (पत्थरचूर), श्वेतचन्दन, ककड़ी के बीज और धनियां समान (एक २ भाग) लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके समान उसमें शर्करा मिलाकर जेष्ठाम्बु अर्थात् शालिधान के चावलों के धोवन के अनुपान से पान करने से अङ्गों का और लिङ्ग, गुदा-वङ्क्षण और शुक्र के दाह तथा शर्करा और अश्मरी के शूल इन सबको नष्ट करता है और अत्यन्त बलकारक तथा वृष्य है। (पाठान्तर में मूत्र-वीर्य तथा शर्करा रोग में मुलहठी के क्वाथ के अनुपान का विधान है) ॥

इक्षुरसादियोगः—

भृष्टेक्षुस्वरसं ग्राम्यमाखुविट्सहितं पिबेत्। नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि सद्य एव न संशयः ॥ १ ॥

इक्षुरसादि योग—ईख को आग में भूजकर स्वरस निकाल कर (कोल्हू में पेर कर) उसमें

मूषक के मल का चूर्ण मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग को शीघ्र नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १ ॥

कुटजयोगः—

पिष्ट्वा गोपयसा श्लक्ष्णं कुटजस्य त्वचं पिबेत् । तेनोपशाम्यते क्षिप्रं मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ॥

कुटजयोग—कुटज (कोरया) की छाल को गोदुग्ध के साथ भली भाँति पीसकर पान करने से कठिन मूत्रकृच्छ्ररोग शीघ्र शमन हो जाता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकाद्यं घृतम्—**त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेक्षुरसेन सिद्धम् ।**
सर्पिर्गुडार्धांशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहारि ॥ १ ॥

त्रिकण्टकाद्यघृत—गोखरू, एरण्डमूल, कुशादि तृणपञ्चमूल, शतावरि, ककड़ी के बीज, सम भाग (एक २ भाग) लेकर कल्ककर जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत के चौगुना ईख का रस मिला कर घृत सिद्ध कर जितना घृत हो उसमें आधा भाग पुराना गुड़ मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और मूत्राघात रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शतावरीघृतम्—

घृतप्रस्थं शतावर्या रसस्यार्धाढकं पचेत् । अजाक्षीरेण संयुक्तं चतुष्प्रस्थान्वितेन तु ॥ १ ॥
द्विगोक्षुरामृतानन्ताकाशकण्टकिनीरसान् । कुडवार्धं पृथग्दत्त्वा पिष्टैर्यष्टिकटुत्रयम् ॥ २ ॥
श्वदंष्ट्राफलिनीदुग्धाशिलाजत्वश्मभेदकैः । त्रिसुगन्धान्वितैरर्धपलांशैः सघृतं पुनः ॥ ३ ॥
शर्कराद्विपलोपेतं क्षौद्रपादसमन्वितम् । हन्ति कृच्छ्राणि सर्वाणि मूत्रदोषाश्मशर्कराः ॥
सर्वकृच्छ्राणि हन्त्याशु एतच्छतावरीघृतम् ॥ ४ ॥

शतावरी घृत—मूर्च्छित गाय का घृत एक प्रस्थ, शतावरि का रस आधा आढ़क (२ प्रस्थ) दोनों को मिला कर पाक करे जब शतावरि का रस जल जावे तब उसमें बकरी का दूध चार प्रस्थ देकर पाक करे जब दूध जल जावे तब उसमें दोनों (छोटा-बड़ा) गोखरू, गुरुचि, अनन्तमूल, कास (राढ़ा) की जड़, छोटी कटेरी के पृथक् २ स्वरस को देकर पाक कर उसमें जेठीमधु, सोंठि, पीपरि, मरिच, गोखरू, प्रियङ्गु, दुग्धा (दूधी बूटी), शुद्ध शिलाजीत, पाषाण-भेद, दालचीनी, इलायची, तेजपात आधा २ पल लेकर कल्क बनाकर और मिलाकर पुनः पाकार्थ घृत से चतुर्गुण जल मिलाकर यथाविधि सिद्ध कर उतार-छानकर शीतल कर उसमें दो पल शर्करा और घृत जितना हो उसके चतुर्थांश मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग, मूत्रदोष, अश्मरी और शर्करारोग को नष्ट करता है । यह 'शतावरीघृत' सब प्रकार के कृच्छ्र रोगों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

त्रिकण्टकादिगुग्गुलुः—

त्रिकण्टकानां क्वथितेऽष्टनिघ्ने पुरं पचेत्पाकविधानयुक्त्या ।
फलत्रिकव्योषपयोधराणां चूर्णं पुरेण प्रमितं प्रदद्यात् ॥ १ ॥
वटी प्रमेहं प्रदरं च मूत्राघातं च कृच्छ्रं च तथाऽश्मरीं च ।
शुक्रस्य दोषान् सकलांश्च वाताद्विहन्ति मेघानिव वायुवेगः ॥ २ ॥

त्रिकण्टकादि गुग्गुलु—गोखरू का अष्टमांशावशिष्ट सिद्ध क्वाथ लेकर उसमें शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर गुग्गुलु पाक की विधि से पाक करे जब पाक सिद्ध होवे तब उसमें अवरा, हर्रा, बहेड़ा, सोंठि, पीपरि, मरिच और नागरमोथा समभाग लेकर श्लक्ष्ण चूर्णकर गुग्गुलु के समान मात्रा में मिलाकर वटी बनाकर सेवन करने से प्रमेह, प्रदर, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और सम्पूर्ण वीर्य दोष तथा अन्यान्य दोषों को भी इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार मेघ को वायु का वेग नष्ट (तितर-बितर) कर देता है ॥ १-२ ॥

सेकलेपौ—**पिष्ट्वा श्वदंष्ट्राफलमूलिकाबिडैर्वारुबीजानि सकाञ्जिकानि ।**
आलिप्यमानानि समानि बस्तौ मूत्रस्य निष्यन्दकराणि सद्यः ॥ १ ॥

सेक तथा लेप विधि—गोखरू के फल, मूली, बिडनमक, ककड़ी के बीज समान भाग लेकर काँजी के साथ पीस कर लेप की विधि से बस्ति स्थान पर लेप करने से शीघ्र मूत्र को निकालने वाला होता है ॥ १ ॥

बस्तावेरण्डतैलेन स्निग्धरवे किंशुकोद्भवैः । स्विन्नपुष्पैः स्वेदसेकं मूत्रकृच्छ्रोपशान्तये ॥ २ ॥

बस्तिस्थान को एरण्डतैल से स्निग्ध करके ढाक (पलास) के फूलों को क्वथित कर उससे स्वेद देने तथा सिञ्चन करने से मूत्रकृच्छ्र शमन होता है ॥ २ ॥

कोष्णाखुविट्कल्कलेपो बस्तेरुपरि कृच्छ्रिणः । त्रपुसीबीजलेपो वा धारा वा किंशुकाम्भसः ॥
ध्वजच्छिद्रे चेन्दुदानं दानं वा चटकाविशः । मेघनादशिफालेपः स्वेदो वा कर्कटाम्भसा ॥४॥
पातो वा कोष्णतैलस्य धारा वा कोष्णवारिणः । नवैते पादिका योगा मूत्रकृच्छ्रहरा मताः॥

आखु (चूहे) के मल को जल के साथ पीस कर कुछ गरम कर अथवा ककड़ी के बीजों को जल के साथ पीस कर मूत्रकृच्छ्र के रोगी के बस्तिस्थान पर लेप करने से अथवा ढाक को क्वथित कर उसकी जलधारा (क्वाथ धारा) बस्ति पर देने से, अथवा लिङ्ग के छिद्र में कर्पूर अथवा चटक पक्षी (गवरैया) के मल को डालने से अथवा मेघनाद (चौराई) की जड़ को जल में पीसकर बस्तिपर लेप करने से अथवा केकड़े के विधिवत् बने क्वाथ से स्वेद देने से अथवा थोड़े-थोड़े गरम तेल अथवा जल की धारा बस्ति पर देने से, (इनमें से किसी एक के व्यवहार से) मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ ३-५ ॥

चन्द्रकलारसः, संग्रहात्—

प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्सूतं ताम्रं तथाऽभ्रकम् । द्विगुणं गन्धकं चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ॥
मुस्तादाडिमदूर्वोत्थैः केतकीस्तनजद्रवैः । सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्य च वारिणा ॥ २ ॥
रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च । भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥
तिक्ता गुडूचिकासत्वं पर्पटोशीरमाधवी । श्रीगन्धं सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥४॥
द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत् । ततः तापाश्रयं कृत्वा वटयः कार्याश्चणोपमाः ॥५॥
अयं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः । सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ६ ॥

चन्द्रकला रस—शुद्ध पारद, ताम्रभस्म और अभ्रक भस्म प्रत्येक एक-एक कर्ष, शुद्ध गन्धक द्विगुण (दो कर्ष) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली विधिपूर्वक कर के फिर ताम्र तथा अभ्रक भस्म को मिलाकर मर्दन कर नागरमोथा, अनार, दूब तृण, केतकी, गोदुग्ध, सहदेवी, कुमारी (घृत कुमारी) पित्तपापड़ा, रामशीतला और शतावरि के स्वरस अथवा क्वाथ से (जिसका स्वरस नहीं निकाल सके उसके क्वाथ से) पृथक्-पृथक् एक-एक दिन विधिपूर्वक भावित करे, फिर कुटकी, गुरुचि के सत्त, पित्तपापड़ा, खस, माधवीलता, श्वेत चन्दन, सारिवा, समान लेकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर उपयुक्त भावित पारदादि द्रव्यों में समान (जितना भावित रस हो उसके तुल्य समान मिलित इनका चूर्ण) मिला कर एकत्र मर्दन कर द्राक्षाफल के क्वाथ से सात बार भावित कर धान्य राशि में रखकर चने के प्रमाण की वटी बना कर रख लेवे । यह चन्द्रकला नाम का रस सब रसों में श्रेष्ठ कहा गया है । यह सब प्रकार के पित्त के और वातपित्त के रोगों को नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाघनः । ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ ७ ॥

इससे अन्तर्दाह तथा बाह्य दाह इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार ऊष्मा मेघ से नष्ट हो

जाती है । इसको ग्रीष्म ऋतु में और शरद ऋतु में (अर्थात् पित्त के संचय और प्रकोप के समय में) विशेष करके प्रयोग में लाना चाहिये ॥ ७ ॥

कुरुते नाग्निमान्द्यं च महातापं ज्वरं हरेत् । भ्रममूर्च्छाहरश्चाऽऽशु स्त्रीणां रक्तं महास्रवम् ॥

यह मन्दाग्नि नहीं करता है और महाताप तथा ज्वर को अथवा ज्वर के महाताप को नष्ट करता है तथा भ्रम, मूर्च्छा और स्त्रियों के महास्राव (जो रक्त निरन्तर बहता रहता है) उसे शीघ्र नष्ट करता है ॥ ८ ॥

ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तं च रक्तवान्तिं विशेषतः । मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥९॥

ऊर्ध्वग और अधोगामी रक्तपित्त तथा विशेष कर रक्त वमन को नष्ट करता है और सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग को निश्चित ही नष्ट करता है ॥ ९ ॥

रसरत्नप्रदीपात्लघुलोकेश्वरो रसः—

रसभस्म च भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकम् । पिष्ट्वा वराटकान्कुर्याद्रसपादं च टङ्कणम् ॥१॥
क्षीरेण पिष्ट्वा रुद्ध्वाऽऽस्यं भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पचेत् ।
स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो रसः ॥ २ ॥

लघुलोकेश्वर रस—पारद भस्म अथवा रससिन्दूर एक भाग और शुद्ध गन्धक चार भाग लेकर खरल कर कौड़ियों में भर देवे फिर जितना पारद भस्म हो उसके चतुर्थांश शुद्ध टङ्कण लेकर दूध के साथ पीस कर उन कौड़ियों के मुख पर लगा कर मुख बन्द कर एक मृत्-पात्र में रख कर उसका मुख मुद्रण कर गज पुट में फूंक देवे स्वांग-शीत होने पर निकाल कर खरल कर रख लेवे यह 'लघुलोकेश्वर रस' है ॥ १–२ ॥

चतुर्गुञ्जो घृतैर्देयो मरिचैकोनविंशतिः । जातिमूलपलं चैकमजाक्षीरेण पाचयेत् ।
शर्कराभावितं चानु पीतं कृच्छ्रहरं परम् ॥ ३ ॥

इस रस को चार रत्ती के प्रमाण की मात्रा से लेकर उसमें गोघृत और १९ मरिचों के चूर्ण को मिलाकर चाटकर चमेली की जड़ एक पल लेकर बकरी के दूध के साथ क्षीरपाक विधि से पका कर शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करने में यह श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

वैक्रान्तगर्भनामा रसः—

सूतं स्वर्णं च वैक्रान्तं मृतं तुल्यं च मर्दयेत् । चाण्डालीराक्षसीद्रावैर्द्वियामान्ते च गोलकम् ॥
शुष्कं रुद्ध्वा पुटे पाच्यं करीषाग्नौ महापुटे । माषैकं मधुना लेह्यं मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ २ ॥

वैक्रान्तगर्भ रस—पारदभस्म अथवा रससिन्दूर, स्वर्ण भस्म, वैक्रान्त भस्म, तीनों समान एकत्र मर्दन कर चाण्डाली (शिवलिंगी) और राक्षसी (मुरामांसी) इनसे स्वरस के साथ पृथक् २ दो २ पहर तक खरल कर (भावित कर) गोलाकार बनाकर सुखा कर एक मृत्-पात्र में रख कर मुख मुद्रण कर पुटपाक की विधि से उपलों की अग्नि से महापुट देवे और स्वांग-शीत होने पर निकाल कर खरल कर एक माषा के प्रमाण से मधु के साथ चाटने से मूत्रकृच्छ्र शमन होता है ॥ १–२ ॥

वैक्रान्तगर्भनामाऽयं सर्वकृच्छ्रामयाञ्जयेत् । अपामार्गस्य मूलं तु तक्रे पिष्ट्वाऽनुपाययेत् ॥

यह 'वैक्रान्त गर्भ' नामक रस सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करता है । इसके सेवन के समय अपामार्ग की जड़ को तक्र के साथ पीस कर अनुपान देना चाहिये ॥ ३ ॥

लोहभस्मयुगः—

अयोभस्म श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् । मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥

लोहभस्म योग—लोहभस्म को भली भांति खरल कर मधु के साथ मिला कर तीन बार चाटने से निश्चय ही मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

रसादियोगः—

रसवल्लं यवक्षारं सितातक्रयुतं पिबेत् । मूत्रकृच्छ्राण्यशेषाणि हन्यन्ते पानतो जवात् ॥१॥

रसादि योग—शुद्ध पारद भस्म अथवा रससिन्दूर एक वल्ल (ड़ेढ़ रत्ती) के प्रमाण से लेकर उसमें यवाखार, शर्करा और तक्र मिलाकर पान करने से सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातना लोहितशालयश्च धन्वामिषं मुद्गरसः सिता च ।
तक्रं पयो गोश्च दधि प्रभूतं पुराणकुष्माण्डफलं पटोलम् ॥ १ ॥
उर्वारुखर्जूरकनारिकेलं तण्डुलियं चाऽऽमलकं च सर्पिः ।
प्रतीरनीरं हिमवालुका च मित्रं नृणां स्यात्सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने तथा रक्त वर्ण के शालिधान्यों का चावल, धन्वदेशीय (मरुस्थलीय) जीवों के मांस, मूंग का रस, शर्करा, गाय का मट्ठा, दूध और दही प्रचुर मात्रा में, पुराना श्वेत कुष्माण्ड, परवर, ककड़ी, खजूर, नारियल, चौराई शाक, आंवला, घृत, नदी के तीर का जल, शीतल बालु का सेवन ये सब मूत्रकृच्छ्र रोग में मनुष्यों के हितकारी अर्थात् पथ्य हैं ॥ १–२ ॥

मद्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं सर्वं विरुद्धमशनं विषमाशनं च ।
ताम्बूलमत्स्यलवणार्द्रकतैलभृष्टं पिण्याकहिङ्गुतिलसर्षपमूत्रवेगान् ।
माषान्करीरमतितीक्ष्णविदाहिरूक्षमम्लं प्रमुञ्चतु जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ३ ॥

मद्यपान, परिश्रम, मैथुन, हाथी-घोड़े की सवारी, सब प्रकार के विरुद्ध भोजन, विषम भोजन, ताम्बूल, मछली, नमक, अद्रक, तेल में भूजे हुए पदार्थ, तिलकुट, हींग, तिल, सर्सों, मूत्र वेग का धारण, उड़द, करीर, अत्यन्त तीक्ष्ण पदार्थ, विदाही पदार्थ, रूक्ष द्रव्य और अम्ल पदार्थ इन सब द्रव्यों को मूत्रकृच्छ्र का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये सब अपथ्य हैं ॥ ३ ॥

इति मूत्रकृच्छ्रप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ मूत्राघातनिदानम् ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश । प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

मूत्राघात निदान—प्रायः करके मूत्र-मल आदि के वेग के आघात से (अवरोध वा धारण करने से) कुपित हुए वातादि दोष वातकुण्डलिका आदि तेरह प्रकार के मूत्राघात रोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १ ॥

तत्रादौ तेषां मध्ये क्रमेण वातकुण्डलिकामाह—

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः । मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं सम्प्रवर्तते । वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥

वातकुण्डलिका के लक्षण—रूक्षता से अथवा वेगों (मूत्र-मलादि के वेगों) के आघात से कुपित हुआ वायु बस्ति में जाकर मूत्र में प्रवेश कर पीड़ा करता हुआ कुण्डलिका के आकार का होकर घूमता है । जिससे मूत्र थोड़ा २ अथवा पीड़ा के साथ निकलता है उस कठिन व्याधि को 'वातकुण्डलिका' जानना चाहिये ॥ २–३ ॥

अष्ठीलामाह—

आध्मापयन्वस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् । कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रमार्गनिरोधिनीम् ॥

अष्ठीला के लक्षण—जिस मूत्राघात में वायु आध्मान करती हुई बस्ति और गुदा को अवरुद्ध

कर चलने वाली और उठी हुई, तीव्र पीड़ा करने वाली तथा मूत्रमार्ग का अवरोध कर देने वाली अष्ठीला (ग्रन्थि) उत्पन्न कर देती है उसे 'अष्ठीला' कहते हैं ॥ ४ ॥

वातबस्तिमाह—

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः। निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिरुजाकरः। वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥६॥

वातबस्ति के लक्षण—जो अज्ञानी मनुष्य मूत्र के वेग को धारण करता है उसकी बस्ति स्थान में रहने वाली वायु बस्ति के मुख को अवरुद्ध कर देती है जिससे मूत्र का अवरोध हो जाता है और बस्तिस्थान तथा कुक्षि में पीड़ा होती है। इसे 'वातबस्ति' जानना चाहिये। यह रोग कष्टसाध्य है ॥ ५–६ ॥

मूत्रातीतमाह—

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते। मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

मूत्रातीत के लक्षण जो मनुष्य बड़ी देर तक मूत्र के वेग को धारण करता है उसको फिर मूत्र शीघ्रता से नहीं आता अथवा मन्द-२ वेग से मूत्र होता है, इस अवस्था को 'मूत्रातीत' रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

मूत्रजठरमाह—

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः। अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद् भृशम् ॥ ८ ॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम्। तन्मूत्रजठरं विद्याद् गुदबस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

मूत्रजठर के लक्षण—मूत्र के वेग को धारण करने से उदावर्त को उत्पन्न कर देने वाला कुपित अपान वायु उदर को अत्यन्त पूर्ण कर देता है उससे नाभि के नीचे आध्मान हो जाता है और तीव्र पीड़ा होती है तथा इस आध्मान से गुदा और बस्ति का मार्ग रुक जाता है। इसको 'मूत्रजठर' कहते हैं ॥ ८–९ ॥

मूत्रोत्सङ्गमाह—

बस्तौ वाऽप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः। मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥
स्रवेच्छनैः शनैरल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम्। विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥

मूत्रोत्सङ्ग के लक्षण—जिस मनुष्य को बस्ति में अथवा मूत्रनाड़ी (शिश्न) में अथवा शिश्न के मुण्ड में प्रवृत्त हुआ (निकलता हुआ) मूत्र रुक जाता है अथवा बलपूर्वक बहाने से (बल लगा कर मूत्रोत्सर्ग करने से) रक्त के साथ धीरे २ मूत्र निकलता है और उसमें पीड़ा होती है अथवा नहीं भी होती है। यह 'मूत्रोत्सङ्ग' नाम की व्याधि वायु के विगुण (विमार्ग) होने से होती है ॥ १०–११ ॥

मूत्रक्षयमाह—

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ। मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥

मूत्रक्षय के लक्षण—जिसका शरीर रूक्ष तथा क्लान्त (थकित) हो गया हो उसके बस्ति स्थान में रहने वाला पित्त तथा वायु कुपित होकर पीड़ा तथा दाह सहित मूत्रक्षय कर देते हैं। इसको 'मूत्रक्षय रोग' कहते हैं ॥ १२ ॥

मूत्रग्रन्थिमाह—

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत्। अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥

मूत्रग्रन्थि के लक्षण—बस्ति के भीतर मुख पर अकस्मात् जो गोल, स्थिर, छोटी सी, अश्मरी समान पीड़ा करने वाली ग्रन्थि (गांठ) उत्पन्न हो जाती है उसे 'मूत्रग्रन्थि' कहते हैं ॥ १३ ॥

तन्त्रान्तरे उक्तम्—

मूत्रं वातकफाद्दुष्टं बस्तिद्वारेषु दारुणम्। ग्रन्थिं कुर्यात्स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम् ॥१४॥

वात और कफ से दूषित हुआ मूत्र बस्ति के द्वार पर कठिन ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है। उससे (उस ग्रन्थि से) घिरा हुआ मूत्र कष्ट से बाहर निकलता है। उसे 'मूत्रग्रन्थि' कहते हैं ॥१४॥

मूत्रशुक्रमाह—**मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम्।**
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्तते। भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १५ ॥

मूत्रशुक्र के लक्षण—जो मनुष्य मूत्र का वेग होने के समय मूत्र का अवरोध करके स्त्रीप्रसंग करता है उसका वीर्य कुपित वायु से उद्धूत होकर अपने स्थान से भ्रष्ट होकर मूत्र के प्रथम वा पश्चात् भस्म मिले हुए जल के समान निकलता है उसको मूत्र शुक्र' कहते हैं ॥ १५ ॥

उष्णवातमाह—

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलावृतम्। बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ॥
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा। कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥ १७ ॥

उष्णवात के लक्षण—अधिक व्यायाम करने से, अधिक मार्ग चलने से, अधिक ताप में रहने से, इन सब कारणों से कुपित हुआ पित्त बस्ति में प्राप्त होकर वायु से घिर कर बस्ति, शिश्न और गुदा में दाह करता है और हरदी के समान, रक्तवर्ण का अथवा रक्तसहित कष्ट से मूत्र का नीचे की ओर स्राव होता है। उसे 'उष्णवात' कहते हैं ॥ १६–१७ ॥

मूत्रसादमाह—

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत्। कृच्छ्रान्मूत्रं तदा रक्तं पीतं श्वेतं घनं सृजेत् ॥
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत्। शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥१९॥

मूत्रसाद के लक्षण—पित्त और कफ अथवा दोनों जब वायु के संग मिलकर बस्ति में कुपित हो जाते हैं तब कष्ट से रक्त, पीत या श्वेत वर्ण का और घना मूत्र निकलता है। उसमें दाह होता है तथा गोरोचन, शङ्ख तथा चूने के समान श्वेतवर्ण का मूत्र होता है अथवा सूखा हुआ सब वर्णों का मूत्र होता है। उसको 'मूत्रसाद' कहते हैं ॥ १८–१९ ॥

विड्विघातमाह—**रूक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्तं शकृद्यदा।**
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विड्विसृष्टं तदा नरः। विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं तमादिशेत् ॥

विड्विघात के लक्षण—रूक्ष तथा दुर्बल मनुष्य का वात कुपित होकर जब मल को आवृत कर लेता है (घेर लेता है) तब वह मल-मूत्रवाहिनी नाड़ियों में प्राप्त हो जाता है और मूत्र में मिल जाता है जिससे विष्ठा मिला हुआ और विष्ठा के गन्ध वाला बड़े कष्ट से मूत्र होता है। उसको 'विड्विघात' कहते हैं ॥ २० ॥

बस्तिकुण्डलमाह—

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात्प्रपीडनात्। स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि। पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥
बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम्। पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २३ ॥

बस्तिकुण्डल के लक्षण—अति शीघ्र २ मार्ग चलने से, अधिक उपवास करने से, अधिक परिश्रम करने से, आघात हो जाने से अथवा किसी अन्य प्रकार से बस्ति के पीड़ित हो जाने से अपने स्थान से हटकर बस्ति स्थूल होकर (फूल कर) गर्भ के समान हो जाती है, जिससे शूल, कम्पन वा संचालन, दाह इनसे पीड़ित होकर बिन्दु-बिन्दु करके मूत्र का स्राव होता है और बस्ति को दबाने से मूत्र धारा रूप में बहता है तथा स्तम्भन और पीड़न होता है इससे रोगी दुखी होता है। इसको अति कठिन शस्त्र और विष के समान दुःखप्रद 'बस्तिकुण्डल' रोग कहते हैं। यह रोग प्रायः वायु की प्रबलता से होता है और अबुद्धि अथवा अल्पबुद्धि पुरुषों के लिये दुर्निवार (असाध्य) है ॥ २१–२३ ॥

तस्मिन्पित्तावृते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता । श्लेष्मणा गौरवं शोफः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥

इस रोग में जब पित्त का अधिक कोप होता है तब उसमें दाह, शूल और मूत्र में विवर्णता होती है, और जब कफ की अधिकता होती है तब गुरुता, शोथ और स्निग्धता युक्त श्वेतवर्ण का घना (गाढ़ा) मूत्र निकलता है ॥ २४ ॥

श्लेष्मरुद्धबिलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति ।
अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ।
स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥ २५ ॥

साध्यासाध्यता—जिसमें बस्ति का मुख कफ से अवरुद्ध हो गया हो और पित्त बढ़ गया हो वह कुण्डलिका असाध्य है। जिसमें बस्ति का मुख खुला हो और जो कुण्डली की भाँति नहीं हुई हो वह 'बस्तिकुण्डलिका' साध्य है। बस्ति जब कुण्डली की भाँति हो जाती है तब उसमें तृषा, मोह और श्वास हो जाता है। यह भी असाध्य है ॥ २५ ॥

अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् । दद्यादुत्तरबस्तिं च मूत्राघाते सवेदने ॥ १ ॥

मूत्राघात चिकित्सा—मूत्राघात के रोगी को प्रथम स्नेहन तथा स्वेदन कराकर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये और पीड़ायुक्त मूत्राघात में उत्तरबस्ति देना चाहिये।

नलादिक्वाथः—**नलकुशकाशेक्षुशिफाक्वथितं प्रातः सुशीतलंससितम् ।**
पिबतः प्रयाति नियतं मूत्राघातः सवेदनः पुंसः ॥ १ ॥

नलादि क्वाथ—नरकट की जड़, कुश की जड़, काश की जड़ और ईख की जड़ समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर शीतल करके प्रातःकाल उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पीड़ा सहित मूत्राघात रोग निश्चित ही नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोधावत्यादिक्वाथः—

गोधावत्या मूलक्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् । पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य सङ्घातम् ॥

गोधावत्यादि क्वाथ—गोधावती (गोहालिया) के मूल का क्वाथ बनाकर उसमें गोघृत, तिल का तेल और गाय का दूध मिलाकर पान करने से मूत्रसङ्घात को शीघ्र ही भेदन कर निकालता है ॥१॥

शार्ङ्गधरात्—

वीरतरुर्वृक्षवृन्दा वासा सहचरद्वयम् । कुशद्वयं नलो गुन्द्रा बकपुष्पोऽग्निमन्थकः ॥१॥
मूर्वा पाषाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा । अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ॥२॥
वीरतर्वादिरित्येष शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा । मूत्राघातं वातरोगान्नाशयेदखिलानपि ॥ ३ ॥

वीरतर्वादि क्वाथ—गांडर दूब अथवा सरकण्डे की जड़, वन्दा (वृक्ष पर की बांझी), अरूसा, दोनों सहचर (पीत पुष्पवाली और नील पुष्पवाली), दोनों कुश (कुश और डाभ), नरकट, पटेर इनका मूल, अगस्त के फूल, गनियार की छाल, मूर्वा, पाषाणभेद, सोना पाठा की छाल, गोखरू, अपामार्ग, कमल और ब्राह्मी ये वीरतर्वादि गण हैं। इन वीरतर्वादि गण का क्वाथ बना कर सेवन करने से शर्करा रोग, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात तथा सम्पूर्ण वात रोगों को नष्ट करता है (शार्ङ्गधर में 'सहचरत्रयम्' पाठ है अर्थात् तीनों प्रकार के नील, पीत और श्वेत पुष्प के सहचर) ॥ १-३ ॥

पिबेच्छिलाजतु क्वाथे गणे वीरतरादिके । रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य च ॥ ४ ॥

इस वीरतरादि-गण के क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत अथवा जवासे का रस मिलाकर पीने से अथवा अरूसा का क्वाथ पीने से भी उपर्युक्त शर्करादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

दशमूलादि क्वाथः—

दशमूलीशृतं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम् । वातकुण्डलिकाष्ठीलावातबस्तौ प्रमुच्यते ॥ १ ॥

दशमूलादि क्वाथ—दशमूल की प्रत्येक ओषधियों को समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें शुद्ध शिलाजीत और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से वातकुण्डलिका अष्ठीला और वात बस्ति से रोगी मुक्त होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरादिक्वाथः—

पीतो गोकण्टकक्वाथः सशिलाजतुकौशिकः । मूत्रकृच्छ्रान्मूत्रशुक्रान्मूत्रोत्सङ्गाद्विमुच्यते ॥१॥

गोक्षुरादि क्वाथ—गोखरू के विधिपूर्वक बने क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध गुग्गुल मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्रशुक्र और मूत्रोत्सङ्ग से रोगी मुक्त होता है ॥ १ ॥

शिलाजतुयोगः—

सशर्करं च ससितं लीढं सिद्धं शिलाजतु । निहन्ति मूत्रजठरं मूत्रातीतं च देहिनः ॥ १ ॥

शिलाजतु योग—शुद्ध शिलाजीत में शर्करा और श्वेत शर्करा मिलाकर चाटने से मूत्रजठर और मूत्रातीत रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादियोगः—

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वातभवे च शूले ।
गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादि योग—गोखरू, एरण्डमूल और शतावरि इन द्रव्यों के द्वारा क्षीरपाक विधि से दूध सिद्ध कर उसमें पुराने गुड़ का प्रक्षेप देकर सेवन करने से वातज शूल नष्ट होता है। अथवा घृत और दूध मिलाकर पान करने से भी मूत्रकृच्छ्रादि रोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

निदिग्धिकादियोगः—

निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तक्रसंयुतम् । जले कुङ्कुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥१॥
शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना । पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥ २ ॥

निदिग्धिकादि योग—छोटी कटेरी के स्वरस को तक्र में मिलाकर अथवा केसर के कल्क को पर्युषित कर उसमें मधु मिलाकर पान करने से और औटा कर शीतल किया हुआ दूध तथा अन्न का भक्षण करने से, तथा श्वेत चन्दन को चावल के धोवन में घिस कर शर्करा मिलाकर पान करने से रक्त सहित उष्णवात नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

शतावर्यादियोगः—

वरीगोक्षुरभूधात्रीमूलानां स्वरसं पलम् । माषमेकं यवक्षारं सौरं माषद्वयं तथा ॥ १ ॥
द्विगुञ्जं टङ्कणं क्षारं सर्वमेकत्र मेलयेत् । पिबेत्तत्तु विनाशाय मूत्राघाते सुदारुणे ॥ २ ॥

शतावर्यादि योग—शतावरि, गोखरू और भुईं आंवला की जड़ों का स्वरस मिलित १ पल, यवाखार १ माषा, तुम्बरूफल (झाड़मरिच) दो माषा, टङ्कण क्षार (शुद्ध सुहागा) दो रत्ती सब को एकत्र कर कठिन मूत्राघात को नष्ट करने के लिये देना चाहिये ॥ १-२ ॥

मूत्रशोणितचिकित्सा—**स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य सिच्यते ।**
मैथुनोपरमश्चास्य बृंहणीयो विधिर्मतः । ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरबस्तिषु ॥ १ ॥

मूत्रशोणित चिकित्सा—जब अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्ग करने से शिश्न से रक्त का स्राव होने लगता है तब उसे मूत्रशोणित कहते हैं। उसमें मैथुन सर्वथा त्याग देना चाहिये और बृंहण क्रिया करनी चाहिये तथा कुक्कुट का वसा अथवा तेल की उत्तरबस्ति देनी चाहिये ॥ १ ॥

स्वगुप्ताद्यं चूर्णम्—

स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारजः । समानमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ॥ १ ॥

सर्वं सम्यग्विमर्द्याक्षमात्रां लीढ्वा पयः पिबेत् । हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ॥

स्वगुप्ताद्य चूर्ण—केवांच के फल (बीज), मुनक्का, पीपरि, ताल मखाना और शर्करा सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके आधा गोदुग्ध, मधु और घृत इनको समान मिलित लेकर उसमें भली भाँति मर्दनकर एक अक्ष (कर्ष) के प्रमाण की मात्रा से चाटकर ऊपर से दूध का अनुपान पान करने से शुक्रक्षय से उत्पन्न होने वाले दोष नष्ट होते हैं और वन्ध्या यदि सेवन करे तो उसे पुत्र होता है ॥ १–२ ॥

क्षौद्रार्धभागघृतम्—

क्षौद्रार्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीरसर्पिषोः । शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् ॥
स्वयंगुप्ताफलं चैव तथैवेक्षुरकस्य च । पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥ २ ॥
तदेकस्थं मेलयित्वा खल्वेनोन्मथ्य च क्षणम् । तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्क्षीरं ततः पिबेत् ॥

क्षौद्रार्ध भाग घृत—मधु आधा भाग, गोघृत, गोदुग्ध, शर्करा, द्राक्षा, केवाँच के बीज, ताल मखाना और पीपरि का चूर्ण प्रत्येक १ भाग एकत्रकर कुछ समय तक खरल में मर्दन कर इसमें से एक कर्ष भर लेकर चाट कर ऊपर से गोदुग्ध पान करे ॥ १–३ ॥

एतत्सर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः सदा ।
शुक्रदोषाञ्जयेत्सर्वानेवापि सुदुर्जयान् । जयेच्छोणितदोषांश्च वन्ध्या स्त्री गर्भमाप्नुयात् ॥

इस घृत को सेवन करने के पहले शरीर शुद्ध कर लेना चाहिये । इसके प्रयोग से सब प्रकार के अत्यन्त कठिन तथा बढ़े हुए शुक्रदोष नष्ट होते हैं और रक्त दोष या आर्तव सम्बन्धी दोष नष्ट होते हैं तथा वन्ध्या स्त्री को इसके सेवन से गर्भ रहता है ॥ ४ ॥

धान्यगोक्षुराद्यं घृतम्—

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कसिद्धं घृतम् हितम् । मूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु शुक्रदोषे च दारुणे ॥ १ ॥

धान्य गोक्षुराद्य घृत—धनियाँ और गोखरू इनके क्वाथ तथा इन्हीं के कल्क के साथ घृत पाक की विधि से (कल्क से चतुर्गुण मूर्च्छित गोघृत और घृत से चतुर्गुण क्वाथ के द्वारा) सिद्ध घृत के सेवन करने से मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और कठिन शुक्र दोष में लाभ करता है ॥ १ ॥

चित्रकाद्यं घृतम्—

चित्रकं सारिवा चैव बला काला च सारिवा । द्राक्षाविशालापिप्पल्यस्तथा च त्रिफला भवेत् ॥
तथैव मधुकं दद्याद्दद्यादामलकानि च । घृताढकं पचेदेतैः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ २ ॥
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् । शीतं परिस्रुतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ३ ॥
तुगाक्षीर्या च तत्सर्वं मतिमान्परिमिश्रयेत् । ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ॥४॥
मूत्रग्रन्थि मूत्रप्रसादमुष्णवातमसृग्दरम् । विड्विघातं निहन्त्येतद्वस्तिकुण्डलिमप्यलम् ॥५॥

चित्रकाद्य घृत—चित्रकमूल, सारिवा लता, बरिआरा, नागबला, कृष्ण सारिवा, द्राक्षा, माहरि की जड़, पीपरि, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, मुलहठी और आँवला प्रत्येक एक-एक अक्ष के प्रमाण से लेकर कल्क कर मूर्च्छित गोघृत एक आढक (४ प्रस्थ) में मिलावे और उसमें गाय का दूध एक द्रोण और जल एक द्रोण (४ आढ़क) मिलाकर घृत सिद्ध करे जब घृत मात्र शेष रहे तो उतार-छानकर शीतल होने पर उसमें शर्करा और वंशलोचन का चूर्ण एक २ प्रस्थ मिलाकर रख लेवे, इस घृत को दोष, बल और अग्नि के अनुसार मात्रा से पान करने से मूत्रग्रन्थि, मूत्रसाद, उष्णवात, रक्तप्रदर, विड्विघात और बस्तिकुण्डलिका ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १–५ ॥

सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ।
अस्रदोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च । प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चित्रकाद्यं सदा बुधैः ॥ ६ ॥

इस घृत के प्रयोग से स्त्री शीघ्र ही गर्भधारण कर लेती है तथा रक्तदोष, योनिदोष और मूत्रदोष में इस 'चित्रकाद्य घृत' का प्रयोग बुद्धिमान् को सदा करना चाहिये ॥ ६ ॥

सदाभद्राद्यं चूर्णम्— **सदाभद्राश्मभिन्मूलं शतावर्याश्च चित्रकम् ।**
रोहिणीकोकिलाक्षौ च क्रौञ्चस्थूलं त्रिकण्टकम् ॥
श्लक्ष्णपिष्टाः सुरा पीता मूत्राघातप्रणाशनाः ॥ १ ॥

सदाभद्राद्य चूर्ण—गम्भार की छाल, पाषाणभेद की जड़, शतावरि मूल, चित्रक मूल, कुटकी, तालमखाना, कमल बीज, ईख की जड़ और गोखरू को सम भाग लेकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर सुरा (मद्य) के अनुपान से सेवन करने से मूत्राघात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

उशीरादिचूर्णम्—

उशीरं बालकं पत्रं कुष्ठं धात्री च मौसली । एला हरेणुकं द्राक्षा कुङ्कुमं नागकेसरम् ॥ १ ॥
पद्मकेसरकन्दं च कर्पूरं चन्दनद्वयम् । व्योषं मधुकलाजाश्च अश्वगन्धा शतावरी ॥ २ ॥
गोक्षुरं कर्कटाख्यं च जाती कङ्कोलचोरकम् । एतानि समभागानि द्विगुणाऽमृतशर्करा ॥ ३ ॥
मत्स्यण्डिकामधुभ्यां च प्रातरेव बुभुक्षितः । क्षयं च रक्तपित्तं च पाददाहमसृग्दरम् ॥ ४ ॥
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं रक्तस्रावं च नाशयेत् । अशीतिं वातजान्रोगान्विशेषान्मेहनुत्परम् ॥५॥

उशीरादि चूर्ण—खस, सुगन्धबाला, तेजपात, कूठ, आँवला, मूसली, छोटी इलायची के बीज, रेणुका बीज, द्राक्षा, केसर, नागकेसर, पदुमकेसर, पदुम की जड़, कपूर, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, सोंठ, पीपरि, मरिच, मुलहठी, धान की खील, असगन्ध, शतावरि, गोखरू, ककड़ी के बीज, चमेली, कङ्कोल, मरिच, चौरा (चोरक) समभाग लेकर (एक-एक भाग लेकर चूर्णकर जितना हो उसके दुगुना गुडूची सत्व मिलाकर मर्दन कर रख लेवे । इसको श्वेत शर्करा (मिश्री) तथा मधु के साथ प्रातः काल भक्षण करने से क्षय, रक्तपित्त, पाददाह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, रक्तस्राव और अस्सी प्रकार के वात रोग नष्ट होते हैं तथा विशेष कर यह प्रमेह रोग नष्ट करने में उत्तम है ॥

सामान्यक्रिया—

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रेषु भेषजं यत्क्रिया च या । मूत्राघातेषु सर्वेषु कुर्यात्तत्सर्वमादरातः ॥ १ ॥

सामान्य क्रिया—अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र रोग में कही हुई सभी ओषधियाँ और क्रियायें मूत्रकृच्छ्र रोग में प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ १ ॥

रसश्चन्द्रकलाख्यश्च कृच्छ्रघ्नो यः पुरेरितः । मूत्राघातेषु सर्वेषु स प्रयोज्यो विजानता ॥ २ ॥

चन्द्रकला नामक जो रस मूत्रकृच्छ्र रोग के प्रकरण में पहले कह आये हैं उन्हें सब प्रकार के मूत्राघात रोग में बुद्धिमान् वैद्य को प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातना लोहितशालयश्च मांसानि धन्वप्रभवाणि मद्यम् ।
तक्रं पयो दध्यपि माषयूषः पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ॥ १ ॥
उर्वारुखर्जूरकनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि ।
यथामलं सर्वमिदं च मूत्राघातातुराणां हितमादिशन्ति ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने रक्तवर्ण के शालिधान का चावल, धन्वदेशीय (मरुस्थल के) जीवों का मांस, मदिरा, तक्र, दूध, दही, उड़द का यूष, पुराने श्वेत कुष्माण्ड (पेठा), परवर, ककड़ी, खजूर, नारियल, तथा ताड़ वृक्ष के मस्तक, ये सब पदार्थ दोषानुसार मूत्राघात के रोगियों के लिये हितकर कहे गये हैं ॥ १–२ ॥

विरुद्धाशनसर्वाणि व्यायामं मार्गशीलनम् ।

रूक्षं विदाहि विष्टम्भि व्यवायं वेगधारणम् । करीरं वमनं चापि मूत्राघाती विवर्जयेत् ॥३॥

सब प्रकार के विरुद्ध भोजन, व्यायाम, मार्ग चलना, रूक्ष, विदाही और विष्टम्भी पदार्थ, मैथुन, मलादि वेगों का अवरोध, करीर फल खाना और वमन मूत्राघात का रोगी त्याग देवे ॥३॥

इति मूत्राघातप्रकरणं समाप्तम्

अथाश्मरीनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा । प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा ह्यश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥

अश्मरी निदान—अश्मरी (पथरी) रोग चार प्रकार का होता है । एक वात के कोप से, दूसरा पित्त के कोप से, तीसरा कफ के कोप से और चौथा शुक्र दोष से । प्रायः करके सब प्रकार के अश्मरी रोग श्लेष्मा को ही आश्रय करके रहते हैं और उक्त चारो प्रकार के अश्मरी रोग यम के समान भयङ्कर होते हैं ॥ १ ॥

तत्संप्राप्तिमाह—विशोषयेद् वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ।

यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

अश्मरी की सम्प्राप्ति—जब वायु वस्ति स्थान में कुपित होता है तब वस्ति में स्थित हुए शुक्र सहित अथवा पित्त सहित अथवा कफ सहित मूत्र को सुखा देता है जिससे अश्मरी रोग हो जाता है । यह अश्मरी रोग जिस क्रम से गाय के पित्त के सूखने से गोरोचन हो जाता है उसी क्रम से मूत्र के सूखने से हो जाता है ॥ २ ॥

तस्यास्सनेकदोषाश्रयत्वमाह—

नैकदोषाश्रयाः सर्वास्तथाऽऽसां पूर्वलक्षणम् । वस्त्याध्मानं तथाऽऽसन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥

मूत्रे च बस्तगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ।

अश्मरी के अनेक दोषाश्रयत्व—सब प्रकार की अश्मरी एक दोष के आश्रय से नहीं रहती अर्थात् अनेक दोषों से युक्त होती है और इस अश्मरी के होने के समय (पहले) वस्ति में आध्मान और वस्ति के समीप के स्थानों में (वस्ति के ऊपर-नीचे, शिश्न तथा अण्डकोशादि में) अति पीड़ा होती है और मूत्र में बकरे के गन्ध के समान गन्ध होती है तथा मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि होती है ॥ ३ ॥

तासां सामान्यलक्षणमाह—

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसीवनीवस्तिमूर्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते ॥४॥

तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् । तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥

अश्मरी के सामान्य लक्षण—नाभिस्थान, सीवनी, वस्ति स्थान तथा सिर में पीड़ा होती है, अश्मरी के मूत्र मार्ग में रोध के कारण मूत्र कई धार से होता है और वह अश्मरी जब मूत्रमार्ग से पृथक् हो जाती है तब सुखपूर्वक स्वच्छ गोमेद के समान मूत्र होता है । उस अश्मरी के संक्षुभित (क्रुद्ध) होने से क्षत भी हो जाता है जिससे रक्त के साथ मूत्र निकलता है और कुछ मूत्र वेग में बल करने से अत्यन्त पीड़ा होती है । ये सब अश्मरी रोग के सामान्य लक्षण हैं ॥४–५॥

वातजामाह—

तत्र वाताद् भृशं चाऽऽर्तो दन्तान्खादति वेपते । मृद्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥

सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः । श्यावारुणाश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव ॥

वातज अश्मरी—जिस अश्मरी रोग में अत्यन्त पीड़ा होती है जिससे मनुष्य दाँत कटकटाता है, काँपता है, शिश्न को मर्दन करता है तथा निरन्तर नाभि को पीड़ित करता रहता है और काँखता है उसको वायु सहित मल निकलता है, बार-बार बूँद २ मूत्र त्याग करता है तथा जो अश्मरी श्याम अथवा अरुण वर्ण की तथा काँटेदार होती है उसे वात के कोप की (वातज) अश्मरी जाननी चाहिये ॥ ७ ॥

पित्तजामाह—

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् । भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीता तथाऽश्मरी ॥

पित्तज अश्मरी—जिस अश्मरी में वस्ति में दाह होती है और व्रण पकने के समान पीड़ा होती है तथा ऊष्मा होती है, और अश्मरी भिलावे की गुठली के समान (आकार की) होती है, तथा रक्त या पीत वर्ण की होती है उसे पित्त के कोप की (पित्तज) अश्मरी कहते हैं ॥ ८ ॥

श्लेष्मजामाह—

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः । अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथ वा सिता ॥

कफज अश्मरी—जिस अश्मरी में वस्ति में सूई चुभाने के समान पीड़ा, शीतलता और गुरुता होती है और अश्मरी बड़ी, पिच्छिल, मधु के वर्ण की अथवा श्वेत वर्ण की होती है उसे कफ के कोप की (कफज) अश्मरी कहते हैं ॥ ९ ॥

एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा । आश्रयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः ॥१०॥

ये तीनों प्रकार की (वातज, पित्तज, कफज) अश्मरियाँ प्रायः करके बालकों को होती हैं (कदाचित् बड़ों को भी हो जाती हैं) । इनके रहने के आश्रय (वस्ति) और संचय (पथरी की स्थूलता) दोनों ही अल्प होते हैं इसलिये उसके पकड़ने (बड़िश यन्त्र से) और निकालने में शस्त्र से चीरकर सुगमता होती है ॥ १० ॥

शुक्राश्मरीमाह—शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।

स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः । शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रजाश्मरी ॥११॥

शुक्राश्मरी—शुक्राश्मरी पूर्ण वयस्क मनुष्य को ही (जो मैथुन के योग्य होते हैं) शुक्र के धारण करने से होती है । मैथुन द्वारा स्थान से च्युत हुए जिस वीर्य को जो हठपूर्वक या भयादि से रोक लेते हैं (गिरने नहीं देते) उस वीर्य को जो कुपित वायु शिश्न में रहती है वह लेकर अण्ड-कोश और वस्ति के मध्य में सुखा देती है । उसको 'शुक्राश्मरी' कहते हैं अर्थात् इसी कारण से शुक्राश्मरी होती है ॥ ११ ॥

तल्लक्षणमाह—

बस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी । तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥१२॥

जिस अश्मरी में वस्तिस्थान में पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र और मुष्कदेश (अण्डकोश) में शोथ होता है और उसके (पथरी के) उत्पन्न होते ही यदि किसी प्रकार से विलीन हो जावे तब शुक्र निकलता है उसे 'शुक्राश्मरी' कहते हैं ॥ १२ ॥

शर्करालक्षणमाह—

पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा । अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥

निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते । मूत्रस्रोतःश्रिता सा तु सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥१४॥

शर्करा के लक्षण—अश्मरी को पीड़ित करने से (छिद्र को दबाने से) अवस्था भेद से वही अश्मरी शर्करा हो जाती है । वह वायु से भिन्न होकर टुकड़े-टुकड़े होकर शर्करा के कण के समान वायु के अनुलोम होने से मूत्र के साथ बाहर निकलती है और प्रतिलोम होने से बँध जाती है । वह अश्मरी का कण मूत्रस्रोत में लगी रह जाने से उपद्रव करती है अर्थात् ये शर्करा के लक्षण हैं ॥

तानेवोपद्रवानाह—

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिः । पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णा हृत्पीडनं वमिः ॥

अश्मरी के उपद्रव—दुर्बलता, अङ्ग की ग्लानि, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डु, उष्णवात, तृषा, हृदय में पीड़ा, वमन ये सब अश्मरी के उपद्रव हैं ॥ १५ ॥

तस्या असाध्यत्वमाह—

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजार्दितम् । अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विताः ॥ १६ ॥

अश्मरी के असाध्य लक्षण—जिस अश्मरी के रोगी का नाभिस्थान और अण्डकोश शोथ युक्त और मूत्र का अवरोध हो जाय, पीड़ा से पीड़ित हो और सिकता (शर्करा) से युक्त हो उसको अश्मरी शीघ्र मार डालती है अर्थात् अश्मरी के ये असाध्य लक्षण हैं ॥ १६ ॥

अप्सु स्वच्छास्वपि तथा निषिक्तासु घटेऽथ वा । कालान्तरेण पङ्कः स्यादश्मरीह भवेत्तथा ॥

स्वच्छ जल अथवा पानी से भरे घड़े में इस अश्मरी को डाल देने से कुछ समय के पश्चात् वह पङ्क के समान हो जावेगी ॥ १७ ॥

अथ अश्मरीचिकित्सा ।

आदौ शूलः कुक्षिदेशे कटौ स्यात् पश्चाद्रोधो जायते मूत्रमुष्णम् ।
एतैर्लिङ्गैरश्मरीरोगचिह्नं ज्ञात्वा कुर्याद्भिषजाद्यैश्चिकित्साम् ॥ १ ॥

अश्मरी चिकित्सा—रोग के प्रारम्भिक अवस्था में यदि कुक्षि देश तथा कटि भाग में शूल हो पश्चात् शूल अवरुद्ध (शमन) हो जाय और मूत्र उष्ण होवे तो ये लक्षण अश्मरी रोग के हैं ऐसा जान कर वैद्य चिकित्सा करे ॥ १ ॥

वाताश्मरी—**वाताश्मरीपूर्वरूपे स्नेहपानं प्रशस्यते ॥ १ ॥**

वाताश्मरी चिकित्सा—वाताश्मरी के पूर्वरूप में ही (जब पूर्वरूप ज्ञात हो तभी) स्नेहपान कराना चाहिये ॥ १ ॥

शुण्ठ्यादिक्वाथः—

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणभिच्छिग्रुवरुणगोक्षुरैः । अभयारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥ १ ॥
रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ।
वाताश्मरीं हन्ति कृच्छ्रं मान्द्यमग्नेश्च तद्रुजः । कटयूरुगुदमेढ्रस्थं वङ्क्षणस्थं च मारुतम् ॥२॥

शुण्ठ्यादि क्वाथ—सोंठ, गनियार, पाषाणभेद, सहिजन की छाल, वरुण की छाल, गोखरू, हर्रा और अमलतास के फल का गूदा इनको समान भाग लेकर क्वाथ बना उसमें शुद्ध हींग, यवाखार और सेन्धा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वाताश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि से होने वाली अन्य प्रकार की पीड़ायें कटि, ऊरु, गुदा, शिश्न तथा वङ्क्षण में स्थित वात इन सबों को नष्ट करता है ॥ १–२ ॥

वरुणक्वाथः—**वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ।**
क्वाथयित्वा शृतं तस्य यवक्षारगुडान्वितम् । पीत्वा वाताश्मरीं हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥

वरुणादि क्वाथ—वरुणा की उत्तम छाल, सोंठ और गोखरू सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार और पुराने गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से पुरानी वाताश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

वीरतर्वादिः—

वीरतर्वादिकः क्वाथः पूर्वोक्तो वातजाश्मरीम् । सद्यो हन्ति यवक्षारगुडयुक्तो न संशयः ॥

वीरतर्वादि क्वाथ—पूर्व कथित वीरतर्वादि गण (गांडर दूब, बन्दा (बाह्मी), राढ़ा की जड़ दोनों सहचर (कहीं २ तीनों सहचर का पाठ है), कुश की जड़, डाभ की जड़, नरकट की जड़, पटेर की जड़, अगस्त की छाल, गनियार, मूर्वा, पाषाणभेद, अरलू, गोखरू, चिचिड़ा,

कलम और ब्राह्मी) की ओषधियों को समान लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार और पुराना गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र तथा निश्चित ही वाताश्मरी को नष्ट करता है ॥ १ ॥

क्षारान्यवागूं पेयाश्च कषायाणि पयांसि च । भोजनार्थं प्रयोज्यानि वाताश्मरिजुषां नृणाम् ॥

वाताश्मरी में पथ्य—सब प्रकार के क्षार (यवाखारादि), यवागू, पेया, कषाय तथा क्षीरपाक ये सब भोजन के लिये वाताश्मरी रोगी को देना चाहिये ॥ २ ॥

पित्ताश्मरी—

पीत्वा पाषाणभित्क्वाथं सशिलाजतुशर्करम् । पित्ताश्मरीं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

पित्ताश्मरी चिकित्सा—पाषाण भेद के क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत शर्करा प्रक्षेप देकर पान करने से पित्ताश्मरी को शीघ्र इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार बिजली वृक्ष को नष्ट करती है ॥ १ ॥

कफाश्मरी—

क्वाथो निपीतः सक्षारः शिग्रुत्वग्वरुणत्वचोः । कफजामश्मरीं हन्ति शक्राशनिरिव द्रुमम् ॥

कफाश्मरी चिकित्सा—सहिजन और वरुण की छाल को समान लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से कफाश्मरी को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार बिजली वृक्ष को नष्ट करती है ॥ १ ॥

शुक्राश्मरी—

शुक्राश्मर्यां तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः ॥ १ ॥

शुक्राश्मरी चिकित्सा—शुक्राश्मरी रोग में अश्मरी को नष्ट करना ही सामान्य विधि है अर्थात् अश्मरी नाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

कूष्माण्डरसः—

यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् । रसं मूत्रविबन्धघ्नं शुक्राश्मरिविनाशनम् ॥ १ ॥

कुष्माण्ड रस—श्वेत कुष्माण्ड (पेठा) के रस में यवाखार और पुराना गुड़ मिलाकर पान करने से मूत्र विबन्ध रोग और शुक्राश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

शतावर्यादिः—

शतावरीमूलरसो गव्येन पयसा समः । पीतो निपातयत्याशु ह्यश्मरीं चिरजामपि ॥ १ ॥

शतावर्यादि रस—शतावरि के मूल का रस समान भाग गाय के दूध में मिलाकर पान करने से पुरानी शुक्राश्मरी भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

कुटजादियोगः—

पिबतः कुटजं दध्ना पथ्यमन्नं च खादतः । निपतत्यचिरादस्य निश्चितं मेढ्रशर्करा ॥ १ ॥

कुटजादि योग—कोरया की छाल का चूर्ण दही के अनुपान से सेवन करने से तथा पथ्य अन्न (अश्मरी रोग में जो पथ्य अन्न कहे गये हैं वे अन्न) भोजन करने से शीघ्र शिश्न की शर्करा निश्चित ही नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

कुटजकल्कः—

अपि च कुटजमूलं धेनुदध्नाऽनुपिष्टं पिचुमितमवलीढं पातयत्यश्मरीकाम् ॥ १ ॥

कुटज कल्क—कोरया की जड़ को गाय के दही के साथ पीस कर कल्क बना कर एक अक्ष (एक कर्ष) प्रमाण की मात्रा चाटने से अश्मरी गिर जाती है ॥ १ ॥

एरण्डादिकल्कः—

गन्धर्वहस्तबृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात् । मूलकल्कं पिबेद्दध्ना मधुरेणाश्मभेदनः ॥ १ ॥

एरण्डादि कल्क—एरण्ड, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, तालमखाना लेकर कल्क बना कर मधु या दही के अनुपान से सेवन करने से अश्मरी रोग नष्ट होती है ॥ १ ॥

पाषाणभेदादि क्वाथः—

पाषाणभिद्वरुणगोक्षुरकोरुबूकक्षुद्राह्वयक्षुरकमूलकृतः कषायः ।
दध्ना युतो जयति मूत्रविबन्धशुक्रमुग्राश्मरीमपि च शर्करया समेताम् ॥१॥

पाषाणभेदादि क्वाथ—पाषाणभेद, वरुणा, गोखरू, एरण्ड, छोटी कटेरी और तालमखाना इनके मूल भाग को समान लेकर क्वाथ कर उसमें दही का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्र विबन्ध, उग्र शुक्राश्मरी और शर्करा रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

एलादि—एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

एलादि क्वाथ—छोटी इलायची, पीपरि, मुलहठी, पाषाणभेद, रेणुका, गोखरू, अरूसा, एरण्डमूल समभाग लेकर क्वाथ बनाकर उसमें शुद्ध शिलाजीत तथा शर्करा का प्रक्षेप देकर अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र में पान करने को देना चाहिये ॥ १ ॥

शिग्रुमूलादिः—क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिपातनः ।
क्षीराशभुग्बर्हिशिखामूलं वा तण्डुलाम्बुना ॥ १ ॥

शिग्रुमूलादि क्वाथ—सहिजन के जड़ का क्वाथ बनाकर कुछ उष्ण रहते २ पान करने से अश्मरी गिर जाती है अथवा मयूरशिखा के मूल को चावल के धोवन के साथ पीसकर पान करने तथा केवल दूध और अन्न भोजन करने से अश्मरी नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

शिलाजत्वादिः—

अश्मर्यां चाश्मरीकृच्छ्रे शिलाजतु समाक्षिकम् । यवक्षारं गोक्षुरं च खादेद्वा चाश्मरीहरम् ॥१॥

शिलाजत्वादि योग—शुद्ध शिलाजीत को मधु के अनुपान से सेवन करने से अश्मरी में तथा अश्मरी सहित मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है अथवा यवाखार और गोखरू इनके चूर्ण को भक्षण करने से अश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

त्रपुसीबीजादि—त्रपुसीबीजं पयसा पीत्वा वा नारिकेरजं कुसुमम् ।
रुद्धमूत्रशर्करावान् भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ १ ॥

त्रपुसी बीजादि योग—ककड़ी के बीजों को अथवा नारियल के फूलों को दूध में पीसकर पान करने से कुछ ही दिनों में मूत्राघात और शर्करा का रोगी सुखी हो जाता है ॥ १ ॥

राजमार्तण्डाद् गोपालकर्कट्यादि—

गोपालकर्कटीमूलं पिष्टं पर्युषिताम्भसा । पीयमानं त्रिरात्रेण पातयत्यश्मरीं हठात् ॥ १ ॥

गोपालकर्कट्यादि योग—गोपाल कर्कटी (गोपाल कांकड़ी) की जड़ को पर्युषित जल (बासी पानी) के साथ पीस कर पान करने से तीन रात में ही अश्मरी को बलपूर्वक नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात् शृङ्गबेरादियोगः—

शृङ्गबेरयवक्षारपथ्याकालीयकान्वितम् । आज दधि भिनत्त्युग्रामश्मरीमाशु पातयेत् ॥ १ ॥

शृंगबेरादि योग—सोंठ, यवाखार, हर्रा और काली अगर समभाग लेकर चूर्णकर बकरी के दही के अनुपान से सेवन करने से बढ़ी हुई कठिन अश्मरी को भी शीघ्र भेदन कर गिरा देता है ॥

अर्कपुष्पीकल्कः—गव्येन पिष्टा पयसाऽर्कपुष्पी निपीयमानाऽनुदिनं प्रभाते ।
विदार्य वीर्येणानिजेन तीव्रामप्यश्मरीं या कुरुते सदाहाम् ॥ १ ॥

अर्कपुष्पी कल्क—अर्कपुष्पी (श्वेत पुष्प का हुरहुर) को गाय के दूध के साथ पीसकर प्रतिदिन प्रातः काल पान करने से यह योग अपने प्रभाव से तीव्र-दाहयुक्त अश्मरी को भी तोड़कर निकाल देता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादिचूर्णम्—

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् । अविक्षीरेण सप्ताहं पिबेदश्मरिभेदनम् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादि चूर्ण—गोखरू के बीजों का चूर्ण मधु के अनुपान से चाटकर पश्चात् भेड़ी का दूध पान करने से एक सप्ताह में अश्मरी का भेदन कर गिरा देता है ॥ १ ॥

हरिद्रादियोगः—

यः पिबेद्रजनीं सम्यक्सगुडां तुषवारिणा । तस्याऽऽशु चिररूढाऽपि यात्यस्तं मेढ्रशर्करा ॥१॥

हरिद्रादि योग—जो मनुष्य हल्दी के चूर्ण और पुराने गुड़ को भलीभाँति मिलाकर कांजी के साथ पान करता है उसको अत्यन्त पुरानी मेढ्र शर्करा भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

तिलादिक्षारयोगः—

तिलापामार्गकदलीपलाशयवसम्भवः । क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ॥ १ ॥

तिलादिक्षार योग—तिल, चिचिड़ा, कदली (केला), पलाश और यव इनके क्षार को भेड़ी मूत्र के साथ पान करने से शर्करा तथा अश्मरी में लाभ होता है। (ग्रन्थान्तर में भेड़ी के दूध के साथ पान करने का विधान है) ॥ १ ॥

तिलक्षारः—क्षारो निपीतस्तिलनालजातः समाक्षिकः क्षीरयुतस्त्रिरात्रम् ।
हन्त्यश्मरीं सिन्धुविमिश्रितं वा निपीयमानं रुचकं प्रयत्नात् ॥ १ ॥

तिलक्षार योग—तिलनाल के क्षार को मधु और दूध के साथ तीन रात (तीन दिन) पान करने से अश्मरी नष्ट होती है अथवा सेंधानमक मिलाकर रुचक नमक को यत्नपूर्वक पान करने से भी अश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

वरुणादिघृतम्—

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥
वारुणी कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् । अमृता त्वश्मजं देयं बीजं च त्रपुसस्य च ॥ २ ॥
शतपर्वा तिलक्षारः पलाशक्षार एव च । यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥ ३ ॥
अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया ।
जीर्णे चानुपिबेत्पूर्वमजीर्णे न तु मस्तुना । अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥४॥

वरुणादि घृत—वरुणा की छाल सौ पल लेकर काटकूट कर एक द्रोण (४ आढ़क) जल में पाक करे, चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ तथा माहरि की जड़, केले की जड़, बेल की छाल, तृणपंचमूल की पांचों ओषधियां, गुडूची, शुद्ध शिलाजीत, ककड़ी के बीज, बाँस की जड़, तिल का क्षार और पलास का क्षार, जूही की जड़, एक एक कर्ष लेकर कल्क कर मिलाकर सिद्ध करे। उस घृत को देश, काल, वय, बल आदि का विचार कर मात्रा से यदि भोजन पच चुका हो तो दही के पानी से पिलावे और अजीर्ण हो तो दही का पानी नहीं पिलावे। इसके सेवन से अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

पाषाणभेदपाकः—

अश्मभेदात्प्रस्थमेकं चूर्णितं वस्त्रगालितम् । गव्ये दुग्धाढके क्षिप्त्वा पाचयेन्मृदुवह्निना ॥१॥
दर्व्या सम्मर्दयेत्तावद्यावद्घनतरं भवेत् । एला लवङ्गमगधा यष्टीमध्वमृताऽभया ॥ २ ॥
कौन्ती श्वदंष्ट्रा वृषकं शरपुङ्खा पुनर्नवा । यावशूको विलम्बी च मांसी सप्ताङ्गुलात्पलम् ॥३॥

वङ्गं लोहं तथाऽभ्रं च कर्पूरं पर्पटं सटी । पत्रेभकेसरं त्वक्च संशुद्धं च शिलाजतु ॥ ४ ॥
पृथगर्धपलं चूर्णं चूर्णिता सितशर्करा । सार्धप्रस्थमिता ग्राह्या दुग्धे वै लेह्यतां नयेत् ॥ ५ ॥
सर्वं तन्निक्षिपेत्तत्र स्वाङ्गशीतलतां नयेत् । मधुनः प्रस्थकं दद्यात्स्निग्धभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥६॥
कर्षार्धं भक्षयेत्प्रातस्तीक्ष्णं तैलादिकं त्यजेत् । पञ्चाश्मरीभेदनः स्यान्मूत्रकृच्छ्रं खुडं तथा ॥७॥
मूत्राघातान्प्रमेहांश्च नाशयेन्मधुमेहताम् । अधोगं रक्तपित्तं च बस्तिकुक्षिगदं तथा ॥८॥
तीव्राश्मरीपरीतानां विशेषेण हितं हि तत् । प्रागत्रिणा विरचितं च्यवनाय निवेदितम् ॥९॥

पाषाणभेदपाक—पाषाणभेद को कूट-चूर्ण कर कपड़े में छानकर एक प्रस्थ लेवे और एक आढ़क (४ प्रस्थ) गाय के दूध में मिलाकर मन्द २ अग्नि पर पाक करे और तब तक चलाता रहे जब तक की वह गाढ़ा न हो जावे । गाढ़ा होने पर (खोवा हो जाने पर) उसमें छोटी इलायची के बीज, लौंग, पीपरि, जेठीमधु, गुडूची, हर्रा, रेणुका, गोखरू, अरूसा, सरफोंका, गदह पुरना, जवाखार, विलम्बी (संभवतः इन्द्रायण अर्थ करना उचित है ।), जटामांसी, छितवन की छाल, इन ओषधियों के चूर्ण को एक २ पल लेवे और वंगभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्धकपूंर, पित्तपापड़ा, कचूर, तेजपात, नागकेसर, दालचीनी और शुद्ध शिलाजीत के चूर्ण को पृथक् २ आधा २ पल लेकर तथा श्वेत शर्करा आधाप्रस्थ लेकर उपर्युक्त दुग्धपाक (अवलेह पाक) में मिला कर मर्दन कर उतार लेवे और स्वांग शीतल होने पर उसमें एक प्रस्थ मधु मिलाकर इस सिद्ध अवलेह पाक को स्निग्ध पात्र में रख लेवे । इसको आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से सेवन करे और तीक्ष्ण पदार्थ तथा तेल आदि का सेवन त्याग देवे तो पांचों प्रकार की अश्मरी नष्ट होती है । यह मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, मूत्राघात, प्रमेह, मधुमेह, अधोगामी रक्तपित्त, बस्ति तथा कुक्षि के रोग को नष्ट करता है तथा तीव्र अश्मरी से युक्त रोगियों के लिये विशेष हितकर है । इस योग को प्रथम अत्रि ऋषि ने रचकर च्यवन को निवेदित किया था (सुनाया था) ॥ १-९ ॥

अथ रसाः—

तत्राऽऽदौ पाषाणवज्रकरसः—

शुद्धसूतं त्रिधा गन्धं द्रावैः श्वेतपुनर्नवैः । मर्दयित्वा दिनं खल्वे रुद्ध्वा तद्भूधरे पचेत् ॥१॥
पाषाणभेदचूर्णं तु समयुक्तं द्विमाषकम् । भक्षयेदश्मरीं हन्ति रसः पाषाणवज्रकः ॥ २ ॥
गोपालकर्कटीमूलक्वाथं तदनु पाययेत् ॥ ३ ॥

पाषाणवज्रक रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध गन्धक तीन भाग लेकर दोनों की कज्जली कर श्वेत पुनर्नवा के रस के साथ दिन भर मर्दन कर 'भूधर यन्त्र' में रख कर पकावे । शीतल होने पर इसके सम भाग पाषाणभेद का चूर्ण मिलाकर दो माषा के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से यह 'पाषाणवज्रक रस' अश्मरी रोग को नष्ट करता है । इसके साथ अनुपान में गोपाल ककड़ी के मूल का क्वाथ देना चाहिये ॥ १-३ ॥

त्रिविक्रमरसः—

ताम्रभस्म त्वजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये घृते पचेत् । तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम् ॥१॥
निर्गुण्ड्युत्थद्रवैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलमाहरेत् । यामैकं वालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥
बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत् । रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना सिकतां चाश्मरीं जयेत् ॥३॥

त्रिविक्रम रस—ताम्रभस्म एक भाग लेकर बकरी के दूध और उसके समभाग घृत मिलाकर अग्नि पर पाक करे, परिपक्व हो जाने पर निकाल कर जितना हो उसके समान शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक पृथक् २ लेकर कज्जली बनाकर ताम्र में मिलाकर निर्गुण्डी के स्वरस के साथ दिन भर मर्दन कर गोलक (गोला) बनावे । पुनः उस गोलक को 'बालुका यन्त्र' में रख कर एक पहर तक पाक करे । स्वांगशीत होने पर निकाल कर दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करे । बिजौरे नीबू के मूल को जल के साथ पीसकर अनुपान देवे तो इस 'त्रिविक्रम' नामक रस से सिकता और अश्मरी रोग नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

अथ पथ्यम् ।

कुलित्था मुद्गगोधूमा जीर्णशालियवा हिताः ।
धन्वामिषं तण्डुलीयं जीर्णकूष्माण्डकं फलम् । आर्द्रकं यावशूकश्च पथ्यश्मरिरोगिणाम् ॥ १

पथ्य—कुलथी, मूंग, गेहूँ, पुराने शालिधान के चावल, यव, धन्वदेशीय जीवों का मांस, चौराई के साग, पुराने श्वेत कूष्माण्ड (पेठा) के फल, अद्रख, यवाखार ये सब अश्मरी के रोगियों के हितकर पथ्य हैं ॥ १ ॥

इति अश्मरीप्रकरणं समाप्तम्

अथातो मेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि ।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

प्रमेह निदान—अत्यन्त सुखपूर्वक अधिक बैठे रहने से, सोये रहने (परिश्रम रहित होने से, अधिक दधि खाने से, ग्राम्य जीवों (बकरी आदि), जल जीवों (मत्स्यादि), और आनूप जीवों (जल के निकट रहने वाले चक्रवाकादि) के मांस अधिक भक्षण करने से, दूध अधिक पीने से, नये अन्न, जल और गुड़ विकार (शर्करा मिठाई आदि) तथा सब प्रकार के कफकारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से प्रमेहरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च ।
मूत्रदोषाश्च ये वाऽपि वस्तौ चैव भवन्ति हि ॥ २ ॥

मूत्राघात, प्रमेह, शुक्रदोष तथा मूत्रदोष अथवा जो २ अन्य दोष (रोग) बस्ति में होने वाले हैं वे सभी उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् इन सब रोगों के ये ही कारण हैं ॥ २ ॥

सम्प्राप्तिमाह—मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो वस्तिगतः प्रदूष्य ।
करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तान्येव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ ३ ॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य वस्तौ धातून्प्रमेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥ ४ ॥

प्रमेह की सम्प्राप्ति बस्ति स्थान में स्थित कुपित कफ मेद, मांस तथा शारीरिक क्लेद (द्रव भाग) को दूषित कर कफज प्रमेह को उत्पन्न करता है और उष्णता से (उष्णवीर्य तथा उष्ण स्पर्शादि से) बढ़ा हुआ बस्ति में स्थित पित्त मेदा-मांसादिकों को दूषितकर पित्तज प्रमेह को उत्पन्न करता है । इसी प्रकार कुपित वायु अन्य दोषों (कफ-पित्त) के क्षीण होने पर धातुओं (वसा-मज्जादि) को बस्ति में खींच कर प्रमेहों (वातिक प्रमेहों) को उत्पन्न कर देता है ॥३-४॥

क्रमेण साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः ।
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥ ५ ॥

साध्यासाध्यता—प्रमेह २० प्रकार का होता है, जिसमें दस प्रकार के प्रमेह होते हैं वे कफज (कफकोपजन्य) समक्रिय होने से साध्य हैं क्योंकि इसके दोष (कफ) और दूष्य (मेदादि धातु) दोनों एक ही क्रिया (कटु-तिक्तादि क्रिया कषायादि) से शमन हो जाते हैं इसलिये कफज दस सुखसाध्य हैं । पित्तज प्रमेह छ प्रकार के होते हैं वे (पित्त के कोपक)

विषम क्रिया होने से याप्य है क्योंकि इसके दोष (पित्त) और दूष्य (मेदादिधातु) दोनों की क्रिया विषम है (जिस क्रिया से पित्त शमन होता है उससे मेदादि में वृद्धि होती है) अर्थात् एक से दूसरे में समता नहीं होती है इसलिये पित्तज कष्टसाध्य है। वातज प्रमेह चार प्रकार के होते हैं वे (वात के कोप से होते हैं) मदात्ययकारी (विनाशकारी) होने से असाध्य हैं क्योंकि वायु मज्जादि गम्भीर धातुओं का अपकर्षण करने वाला व्याप्त एवं शीघ्रकारी होने के कारण विनाश कर देता है इसलिये चार प्रकार का वातज असाध्य है ॥ ५ ॥

तन्त्रान्तरे—

ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता। रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

ज्वर रोग में दोष और ऋतु दोनों समान हों, प्रमेह रोग में दोष तथा दूष्य दोनों समान हों और रक्तज गुल्म में पुराणत्व (बहुत दिन का पुराना) हो तो ये सुख साध्य के लक्षण हैं ॥ ६ ॥

तन्त्रान्तरे वातचतुष्टयस्य साध्यत्वमुक्तम्—

या वातमेहान्प्रति पूर्वमुक्ता वातोल्बणानां विहिता क्रिया सा।
वायुर्हि मेहेष्वतिकर्षितेषु करोति मेहान्प्रति नास्ति चिन्ता ॥ ७ ॥

जो क्रिया वात प्रमेहों के लिये पहले कही गयी है वही क्रिया वातोल्बण प्रमेहों के लिये करनी चाहिये। वायु मेद को अति कर्षित (क्षीण) करके प्रमेह करती है उस मेह के प्रति (वातोल्बण प्रमेह की) चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥

प्रमेहे दोषदूष्यवर्गमाह—

कफः सपित्तः पवनश्च दोषो मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः।
मज्जा रसौजः पिशितं च दूष्यं प्रमेहिणं विंशतिरेव मेहाः ॥ ८ ॥

प्रमेह दोष दूष्य वर्ग—प्रमेह रोग में कफ, पित्त और वायु ये दोष कहे जाते हैं और मेद, रक्त, शुक्र, जल (शरीरज क्लेद स्वेदादि) वसा, लसीका, मज्जा, रस, ओज तथा मांस ये सब दूष्य कहे जाते हैं। इन्हीं से बीस प्रकार के एवं शब्द से संख्या निश्चित किया है कि मेह २० ही होते हैं। अधिक नहीं होते ॥ ८ ॥

तन्त्रान्तरे दूष्यसंग्रह उक्तः—

वसा मांसं शरीरस्य क्लेदः शुक्रं च शोणितम्। मेदो मज्जालसीकौजः प्रमेहे दूष्यसंग्रहः ॥

वसा, मांस, शरीर का क्लेद (स्वेदादि), शुक्र (वीर्य), रक्त, मेद, मज्जा, लसीका, ओज ये सब प्रमेह रोग में दूष्य माने गये हैं ॥ ९ ॥

पूर्वरूपमाह—

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः। दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते ॥

प्रमेह के पूर्वरूप—जब प्रमेह रोग होने को होता है तब उसके पहले दाँत आदि (दाँत–नेत्र, गला, तालु, कान और जिह्वा) में मल का अधिक होना, हाथ पाँव में दाह, शरीर में स्निग्धता (चिकनाई), तृषा और मुखका मधुर होना और चकार (च) ग्रहण से केशों का जटिल होना, नख का अधिक बढ़ना ये सब होते हैं ॥ १० ॥

सामान्यलक्षणमाह—**सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता।**

प्रमेह के सामान्य लक्षण—सब प्रकार के प्रमेहों का सामान्य लक्षण यही है कि मूत्र अधिक तथा मलिन (विकृत) होता है ॥

कारणभेदात्कार्यभेदमाह—**दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ११ ॥**
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते। सम्यग्भेदं परीक्ष्याऽऽदौ क्रिया कार्या भिषग्वरैः ॥

प्रमेह के भेद—दोष और दूष्य में विशेषता नहीं होने पर भी उनके संयोग विशेष से और मूत्र के वर्णादि भेद से प्रमेहों में भेद की कल्पना की जाती है अर्थात् भेद हो जाता है इसलिये श्रेष्ठ वैद्य को पहले भली-भाँति भेद की परीक्षा करके तब क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिये ॥

उदकमेहस्तथा चेक्षुः सान्द्रमेहः सुराभिधः। पिष्टप्रमेहः शुक्राख्यः सिकता शीतकः शनैः ॥
लालामेहस्तथा क्षारो नीलमेहोऽथ कालकः। हारिद्रमेहमाञ्जिष्ठौ रक्तमेहस्तथाऽपरः ॥१४॥
षोडशोऽथ वसामेहो मज्जामेहश्च कीर्तितः। क्षौद्रमेहस्तथा हस्ती मेहानां विंशतिः क्रमात् ॥

प्रमेहों के नाम—दकमेह (उदकमेह), इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, सिकतामेह, शीतमेह, शनैःमेह, लालामेह, क्षारमेह, नीलमेह, कालमेह, हारिद्रमेह, माञ्जिष्ठमेह और रक्त मेह, ये सोलह और वसामेह, मज्जामेह, क्षौद्रमेह तथा हस्तिमेह, ये मिलकर क्रम से २० प्रकार के प्रमेह कहे गये हैं। (इनमें पूर्व क्रम से उदकादि दस कफज, क्षारादि छै पित्तज और वसादि चार वातज मेह जानना चाहिये) ॥ १३–१५ ॥

उदकमेहादयो दश कफजाः तत्रोदकमेहमाह—

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम्। मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥१६॥

उदक मेह के लक्षण—जिस प्रमेह में स्वच्छ, मात्रा में अधिक, श्वेत वर्ण का, शीतल, गन्ध रहित, जल के समान मूत्र होवे उसे 'उदकमेह' जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इक्षुमेहमाह—**इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः।**

इक्षुमेह के लक्षण—जिस मेह में किञ्चित् आविल (मलिन), पिच्छिल (चिकना) और ईख के रस के समान अत्यन्त मधुर मूत्र होता है उसे 'इक्षुमेह' कहते हैं ॥

सान्द्रमेहमाह—**सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेनमेहति ॥ १७ ॥**

सान्द्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र पर्युषित होने पर (एक दिन-रात रख देने) पर घन (गाढ़ा) हो जावे उसे 'सान्द्रमेह' कहते हैं ॥ १७ ॥

सुरामेहमाह—**सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम्।**

सुरामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र सुरा के समान ऊपर स्वच्छ और नीचे घन (गाढ़ा) होता है (नीचे मूत्र जम जाता है) उसे 'सुरामेह' कहते हैं।

पिष्टमेहमाह—**संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥ १८ ॥**

पिष्टमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र होते समय रोमाञ्च हो जावे और पिसे हुए आटे के समान मात्रा में अधिक तथा श्वेत मूत्र होवे उसे 'पिष्टमेह' कहते हैं ॥ १८ ॥

शुक्रमेहमाह—**शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति।**

शुक्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शुक्र (वीर्य) के समान वर्ण वाला अथवा शुक्र मिला हुआ होता है उसे 'शुक्रमेह' कहते हैं।

सिकतामेहमाह—**मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १९ ॥**

सिकतामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र में मल के अणु (कण) सिकता (बालू) के रूप में निकलते हैं उसे 'सिकतामेह' कहते हैं ॥ १९ ॥

शीतमेहमाह—**शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम्।**

शीतमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र अधिक मात्रा में, मधुर तथा अत्यन्त शीतल होता है उसे 'शीतमेह' कहते हैं।

शनैर्मेहमाह—**शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ २० ॥**

शनैर्मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शनैः २ मन्द २ से होता है उसे 'शनैःमेह' कहते हैं ॥

लालाप्रमेहमाह—**लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १ ॥**

लालामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र लाला तन्तु (लार के धागों की तरह) अर्थात् पिच्छिल सूत्र की भाँति होता है उसे 'लालामेह' कहते हैं ॥ १ ॥

षट्पैत्तिकानाह तत्र क्षारमेहमाह—

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ २१ ॥

क्षारमेह के लक्षण—जिस मेह मे मूत्र का गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श के सब क्षार के जल के समान हो अर्थात् क्षार के सदृश मूत्र हो उसे 'क्षारमेह' कहते हैं ॥ २१ ॥

नीलकालमेहावाह—**नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम् ।**

नीलमेह तथा कालमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र नील के वर्ण का आता है उसे 'नीलमेह' तथा जिसमें मूत्र मषी (काली स्याही) के समान आता है उसे 'कालमेह' कहते हैं ।

हारिद्रमेहमाह—**हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥ २२ ॥**

हारिद्र मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र का स्वाद कटु और रंग हलदी के समान और जलन होती है उसे हारिद्र मेह कहते हैं ॥ २२ ॥

माञ्जिष्ठमेहमाह—**विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् ।**

माञ्जिष्ठमेह के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त तथा मजीठ के जल के समान मूत्र होता है उसे 'माँजिष्ठमेह कहते हैं ।

रक्तमेहमाह—**विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥ २३ ॥**

रक्तमेह के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त, उष्ण, लवण रसयुक्त तथा रक्त के वर्ण का मूत्र होता है उसे 'रक्तमेह' कहते हैं ॥ २३ ॥

एवं षट् पैत्तिकाः—चतुरो वातजानाह । तत्राऽऽदौ वसामेहमाह—

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ।

वसामेह के लक्षण—जिस मेह में वसायुक्त तथा वसा धातु की भाँति (वसा के समान) बार-बार मूत्र होता है उसे 'वसामेह' कहते हैं ।

मज्जामेहमाह—**मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥**

मज्जामेह के लक्षण—जिस मेह में मज्जा के समान तथा मज्जा मिला हुआ बार २ मूत्र होता है उसे 'मज्जामेह' कहते हैं ॥ २४ ॥

क्षौद्रमेहमाह—**कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहेन मेहति ।**

क्षौद्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र कषाय, मधुर और रूक्ष होता है उसे 'क्षौद्र मेह' कहते हैं। (किसी २ के मत से क्षौद्र मेह मधु के सदृश होता है) ।

हस्तिमेहमाह—

हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् । सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ २५ ॥

हस्तिमेह के लक्षण—जिस प्रमेह में मत्त हाथी के मूत्र की भाँति निरन्तर वेग रहित लसीका सहित बंधा हुआ मूत्र होता है, उसे 'हस्तिमेह' कहते हैं ॥ २५ ॥

उपद्रवानाह

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्राकासः सपीनसः । उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥

कफज मेह के उपद्रव—भोजन का परिपाक नहीं होना, अरुचि, वमन, निद्रा, कास और पीनस ये कफज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २६ ॥

पित्तमेहोपद्रवानाह—**वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ।**

दाहस्तृष्णा क्लमो मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ २७ ॥

पित्तज मेह के उपद्रव—वस्ति और शिश्न में तोद (सूई चुभाने के समान पीड़ा) होना, अण्डकोष फटने के समान प्रतीत होना, ज्वर होना, दाह, तृषा, क्लान्ति, मूर्च्छा और मलभेद (पतला मल का होना) ये पित्तज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २७ ॥

वातजामाह

वातजानामुदावर्तः कण्ठहृद्ग्रहलोलताः । शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥२८॥

वातज प्रमेह के उपद्रव—उदावर्त कण्ठ ग्रह होना हृदय ग्रह शूल, अनिद्रा, शोष, कास और श्वास ये वातज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ १८ ॥

अथासाध्यतामाह—

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिस्रुतमेव च । पिटिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २९ ॥

असाध्य लक्षण—जिस प्रमेह में कहे हुए उपद्रव (अविपाकादि) उपस्थित हों और स्राव (मूत्रस्राव) अधिक होता हो तथा शराविका आदि पिड़िकाओं से रोगी पीड़ित हो प्रमेह गाढ़ (अधिक दिन से) हो वह असाध्य है ॥ २९ ॥

मूर्च्छाच्छर्दिज्वरश्वासकासवीसर्पगौरवैः । उपद्रवैरुपेतो य प्रमेहा दुष्प्रतिक्रियः ॥ ३० ॥

जिस प्रमेह में मूर्च्छा, छर्दि (वमन), ज्वर, श्वास, कास, विसर्प और गौरव ये उपद्रव उपस्थित हों वह दुष्प्रतिक्रिय अर्थात् चिकित्सा के योग्य नहीं (असाध्य) है ॥ ३० ॥

नराणां दृश्यते मेहः स्त्रीणां किं तु न दृश्यते । अन्नपानविशेषेण दोषदूष्यक्रमेण च ॥ ३१ ॥

रजः प्रवर्तते यस्मान्मासि मासि विशोधयेत् । सर्वान्धातूंश्च दोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥

स्त्रियों को प्रमेह का अभाव—पुरुषों को प्रमेह दिखाई देता है किन्तु स्त्रियों को नहीं दिखाई देता इसमें दोष और दूष्य के क्रम से और अन्नपान की विशेषता से ऐसा होता है। क्योंकि मास-मास में स्त्रियों को रजःस्राव होता रहता है जिससे सब धातु और दोषों की शुद्धि होती रहती है इसलिये स्त्रियों को प्रमेह नहीं होता है ॥ ३१-३२ ॥

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा साध्यो न रोगः स हि बीजदोषात् ।

ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ ३३ ॥

अन्य असाध्य लक्षण—जो प्रमेही मधुमेही (मधुमेही से सामान्य मेह का बोध होता है) से उत्पन्न बालक (प्रमेह वाले की सन्तान) को होता है वह बीज दोष के कारण साध्य नहीं होता अर्थात् असाध्य है । अथवा और भी जो कुलज बिकार (कुष्ठ, क्षय, अर्शादि रोग) होते हैं वे सब भी असाध्य कहे जाते हैं ॥ ३३ ॥

मधुमेहिनं प्रदर्शयन्नाह—

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः । मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥३४॥

(प्रमेह की उपेक्षा से मधुमेहता)—सब प्रकार के प्रमेह (साधारण [साध्य] कफजादि मेह भी) अचिकित्स्य होने पर (चिकित्सा नहीं करने पर) और अधिक समय तक रह जाने पर (पुराने हो जाने पर) मधुमेहत्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मधुमेह हो जाते हैं और मधुमेहत्व को प्राप्त होकर असाध्य हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

तन्त्रान्तरे—

गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मी च यो नरः । अचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसपरिक्षयात् ॥

गुल्म के रोगी, मधुमेह के रोगी और राजयक्ष्मा के रोगी ये जब बल मांस से क्षीण हो जाते

है तब अचिकित्स्य हो जाते हैं अर्थात् असाध्य हो जाते हैं। (किन्तु जब तक बल, मांस रहे तब तक चिकित्सा करनी चाहिये) ॥ ३५ ॥

धातुक्षयावरणाभ्यां कुपितवातेन मधुसम्भवमाह—

मधुमेहो मधुसमं जायते स किल द्विधा। क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ ३६ ॥

धातुक्षय और आवरणभेद से मधुमेह का द्वैविध्यलक्षण—जिस मेह में मधु के समान मूत्र होता है (वर्ण में तथा स्वाद से) उसे मधुमेह कहते हैं। वह मधुमेह दो प्रकार का होता है एक धातु के क्षय होने के कारण वायु के कुपित होने से और दूसरा पित्तादि दोष के कारण मार्ग के अवरुद्ध (आवृत्त) हो जाने से अर्थात् मधुमेह दो प्रकार का होता है एक वातिक और दूसरा उपेक्षित।

आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन्। क्षीणः क्षणात्क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥

आवृत्त वायु (कफ-पित्तादि के कारण घिरा हुआ वायु) उनके (दोषों के) लक्षणों को अकस्मात् प्रकट करता हुआ क्षण में ही क्षीण हो जाता है और क्षण में ही पूर्ण हो जाता है। यह (उपेक्षित) मधुमेही कष्टसाध्य होता है ॥ ३७ ॥

मधुमेह शब्दप्रवृत्तौ निमित्तमाह—

मधुरं तच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति। सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥३८॥

मधुमेह शब्द की प्रवृत्ति में निमित्त—जिनके प्रमेह में प्रायः मधु के समान मीठा मूत्र होता है और शरीर मधुर हो उनके सभी प्रमेह मधुमेह कहे जावेंगे ॥ ३८ ॥

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशदं तिक्तकटुकं तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ ३९ ॥

प्रमेह-निवृत्ति के लक्षण—जब प्रमेह के रोगी का मूत्र मलिन और पिच्छिल नहीं हो, स्वच्छ तिक्त और कटु तब उसे आरोग्य हुआ (प्रमेह से रहित) जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

प्रमेहपिडिका—**प्रमेहिणां प्रजायन्ते पिटिकाः सर्वसन्धिषु।**

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी। मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी च विदारिका ॥

विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया दश। सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २ ॥

प्रमेह पिडिका—प्रमेह के रोगियों को सब सन्धियों में पिडिकायें उत्पन्न हो जाती हैं उनके नाम कहते हैं। शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्रधि। ये दस प्रकार की पिडिकायें प्रमेहरोग की उपेक्षा करने से (उचित चिकित्सा नहीं करने से) सन्धियों के मर्म स्थान में अथवा सन्धियों और मर्मों में तथा मांसल स्थानों में उत्पन्न हो जाती हैं ॥ १-२ ॥

शराविकामाह—**अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका।**

शराविका के लक्षण—जिस पिडिका में किनारे २ उठी हुई और मध्य में नीची शराव (सकोरे) के आकार की पिडिका हो उसे 'शराविका' कहते हैं।

सर्षपिकामाह—**गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ ३ ॥**

सर्षपिका के लक्षण—जिस पिडिका का रूप श्वेत सर्सों के समान तथा उसी के प्रमाण का आकार हो उसे 'सर्षपिका' कहते हैं ॥ ३ ॥

कच्छपिकामाह—**सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः।**

कच्छपिका के लक्षण—जिस पिडिका का आकार कछुए के समान हो और दाह युक्त हो उसे 'कच्छपिका' कहते हैं। अर्थात् जो कछुवे के पीठ के समान चारो ओर नीची और बीच में उठी हुई शोथ युक्त होती है।

जालिनीमाह—

जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता। अवगाढरुजोत्क्लेदा पृष्ठेवाऽप्युदरेऽपि वा ॥४॥

जालिनी के लक्षण—जिस पिडिका में तीव्र दाह हो, मांस के जाल से घिरी हुई हो, अत्यन्त पीड़ा तथा क्लेद (पूयादि) से युक्त हो और पीठ अथवा उदर में उत्पन्न हुई हो उसे 'जालिनी' कहते हैं ॥ ४ ॥

विनतामाह—**महती पिटिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता।**

विनता के लक्षण—जो पिडिका आकार में बड़ी हो और नीलवर्ण की हो उसे 'विनता' कहते हैं।

महत्यल्पचिता ज्ञेया पिटिका सा तु पुत्रिणी ॥ ५ ॥

पुत्रिणी के लक्षण—जिस पिडिका का आकार बड़ा हो और छोटी २ पिडिकाओं से युक्त हो अर्थात् एक पिडिका बड़ी हो और उसके साथ छोटी २ पिडिकायें भी हों उसे 'पुत्रिणी' कहते हैं ॥

मसूरिकामाह—**मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका।**

मसूरिका के लक्षण—जो पिडिका आकार-प्रकार में मसूर की दाल के समान हो उसे 'मसूरिका' जाननी चाहिये।

अलजीमाह—**रक्तासिता स्फोटवती विज्ञेया त्वलजी बुधैः ॥ ६ ॥**

अलजी के लक्षण—जो पिडिका रक्तवर्ण की अथवा श्वेत वर्ण की हो और स्फोटों से युक्त हो उसे 'अलजी' जाननी चाहिये ॥ ६ ॥

विदारिमाह—**विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका।**

विदारिका के लक्षण—जो पिडिका आकार में विदारी कन्द के समान वृत्त (गोल) तथा कठिन हो उसे 'विदारिका' कहते हैं।

विद्रधिकामाह—**विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥ ७ ॥**

विद्रधिका के लक्षण—जो पिडिका विद्रधि के लक्षणों से उक्त होती है उसे 'विद्रधिका' कहते हैं ॥

पिटिकानामारम्भकारणमाह—

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः। विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥८॥

पिडिकाओं के होने के कारण—जो २ प्रमेह जिस-जिस (वातादि) दोष से उत्पन्न होते हैं उन २ प्रमेहों में होने वाली ये पिडिकायें भी उन दोषों से युक्त होती हैं अर्थात् कफज आदि प्रमेहों में उत्पन्न पिडिका कफ आदि से युक्त होती हैं। कभी २ ये पिडिकायें बिना प्रमेह के भी दूषित मेदा वालों को हो जाती हैं ॥ ८ ॥

तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः। सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिटिकाः परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥

ये पिडिकायें तब तक नहीं लक्षित होती हैं जब तक स्थान को आवृत्त नहीं कर लेती हैं अर्थात् जब तक पूर्ण प्रकाशित नहीं हो जाती हैं तब तक इनका ज्ञान नहीं होता है। पिडिकाओं की असाध्यता—ये पिडिकायें यदि गुदा, हृदय, सिर, कन्धा, पीठ तथा अन्य मर्मस्थानों में उत्पन्न हुई हो, और उपद्रवों (आगे उपद्रव लिखे हैं उनसे) से युक्त हों तथा दुर्बल अग्नि वाले को हुई हों तो उसे त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥

चरकेण पिटिकानामुपद्रवा उक्ताः—

तृट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामदज्वराः। विसर्पो मर्मसंरोधः पिटकानामुपद्रवाः ॥ १ ॥

पिडिकाओं के उपद्रव—तृषा, कास, मांस संकोच, मोह, हिक्का, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मस्थानों का संरोध, ये पिडिका के उपद्रव होते हैं ॥ १ ॥

प्रमेहनिवृत्तिलक्षणं सुश्रुतेऽपि पठितम्—

प्रमेहिणां यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशदं कटु तिक्तं च तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥१॥

प्रमेह निवृत्ति के लक्षणान्तर—जब प्रमेह के रोगी का मूत्र अनाविल (मलिनता रहित) और स्निग्धतारहित (चिकनाई रहित), स्वच्छ, कटु तथा तिक्त हो तो उसे आरोग्य अर्थात् प्रमेह निवृत्त हुआ जानना चाहिये ॥ १ ॥

हारिद्रवर्णं रुधिरं च मूत्रं विना प्रमेहस्य तु पूर्वरूपैः।
यो मेहयेत्तं न वदेत्प्रमेहं रक्तस्य पित्तस्य स हि प्रकोपः ॥ २ ॥

प्रमेह-रक्तपित्त का भेद—यदि प्रमेह रोग का पूर्व लक्षण (पूर्वरूप) नहीं हुआ हो और उस अवस्था में भी यदि मूत्र का वर्ण पीत अथवा रक्त आता हो तो उसे प्रमेह रोग नहीं कहते हैं। ऐसा रक्त पित्त के कोप होता है यह जानना चाहिये अर्थात् रक्तपित्त और प्रमेह में यही भेद है कि प्रमेह के मूत्र का वर्णादि पूर्वरूप के पश्चात् ही प्रमेह के लक्षणों का होता है और रक्तपित्त के कोप से पीतादि वर्ण के मूत्र बिना प्रमेह के पूर्वरूप के ही प्रमेह के समान हो जाते हैं वहाँ रक्तपित्त के प्रकोप का जानना चाहिये ॥ २ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा।

दश षट् चापि चत्वारः कफपित्तसमीरजाः।
साध्या याप्या असाध्यास्ते प्रमेहाः क्रमशो नृणाम् ॥ १ ॥

प्रमेह चिकित्सा—कफज दस प्रमेह साध्य, पित्तज छह प्रमेह याप्य और वातज चार प्रमेह असाध्य इस क्रम से मनुष्यों को २० प्रकार के प्रमेह होते हैं ॥ १ ॥

कफप्रमेहचिकित्सा—**हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्राः पाठाविडङ्गार्जुनधन्वयासाः।**
उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ १ ॥
दार्वी विडङ्गं खदिरो धवश्च सुराह्वकुष्ठार्जुनचन्दनानि।
दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला सपाठा पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा ॥ २ ॥
यवान्युशीराण्यभया गुडूची जम्बूशिवाचित्रकसप्तपर्णाः।
पादैः कषायाः कफमेहिनां ते दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ३ ॥

कफज प्रमेह चिकित्सा—१-हर्रा, कायफल, नागरमोथा और लोध २-पुरइन पाढ़ी, बाभीरंग, अर्जुन की छाल और यवासा। ३—हरदी, दारुहरदी, तगर और बाभीरंग। ४—कदम्ब की छाल, सालवृक्षकी छाल, अर्जुन की छाल और जवाइन। ५—दारुहरदी, बाभीरंग, खैर और धव की छाल। ६—देवदारु, कूट, अर्जुन वृक्ष की छाल और लालचन्दन। ७—दारुहरदी, गनियार, अवरा, हर्रा, बहेड़ा और पुरइनपाढ़ी। ८—पुरइनपाढ़ी, मूर्वामूल और गोखरू। ९—जवाइन, खस, हर्रा और गुरुचि। १०—जामुन की छाल, हर्रा चित्रकमूल और छितवन की छाल। इनमें प्रत्येक श्लोक के एक २ योग है। इस प्रकार ये दस योग दस प्रकार के कफज मेहों के लिये क्रमपूर्वक कहे गये हैं। इन योगों के विधिवत् बने क्वाथ को शीतल कर मधु के प्रक्षेप के साथ यथा क्रम सेवन करने से कफज दस मेह नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

जलप्रमेहेक्षुरसप्रमेहे सान्द्रप्रमेहे च सुराप्रमेहे।
पिष्टप्रमेहेऽपि च शुक्रमेहे क्रमादमी स्युः सिकताप्रमेहे।
शीतप्रमेहे च शनैः प्रमेहे लालाप्रमेहेऽपि सुखाय तेषाम् ॥ ४ ॥

उदक मेह, इक्षु मेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकता मेह, शीतमेह शनैःमेह और लालामेह में क्रम पूर्वक हरीतक्यादि, पाठादि, हरिद्रादि, कदम्बादि, दार्वादि, सुराह्वादि (देवदार्वादि), दार्व्यादि, पाठादि, यवान्यादि और जम्ब्वादि क्वाथ का सेवन करने से लाभ होता है ॥ ४ ॥

सुश्रुतात्—तत्रोदकमेहिनाम्—पारिजातकषायं पाययेत्। इक्षुमेहिनाम्-निम्बकषायम्। सान्द्रमेहिनाम्—सप्तपर्णकषायम्। सुरामेहिनाम्—शाल्मलीकषायम्। पिष्टमेहिनाम्—द्विहरिद्राकषायम्। शुक्रमेहिनाम्-दूर्वाशैवलप्लवकरञ्जकसेरुकषायम्, ककुभचन्दनकषायं वा। सिकतामेहिनाम्—निम्बकषायम्, शीतमेहिनाम्—पाठागोक्षुरकषायम्। शनैर्मेहिनां त्रिफलागुडूचीकषायम्। लालामेहिनां त्रिफलारग्वधकषायं पाययेत् ॥ १ ॥

उदकमेह वालों को पारिजात (हर श्रृङ्गार) का विधिवत बना क्वाथ पिलाना चाहिये। इक्षुमेह वालों को निम्बकषाय (नीब का क्वाथ), सान्द्रमेह वालों को सप्तपर्ण (छितवन) का क्वाथ, सुरामेह वालों को शाल्मली (सेमर का) क्वाथ, पिष्टमेह वालों को द्विहरिद्रा (हरदी और दारु-हरदी), शुक्रमेह वालों को दूब, सेवार, केवटीमोथा, करञ्ज और कसेरू को समान लेकर क्वाथ बनाकर वह क्वाथ अथवा अर्जुन की छाल और लालचन्दन का क्वाथ, सिकतामेह वालों को नीम का क्वाथ, शीतमेह वालों को पुरइनपाढ़ी और गोखरू का क्वाथ, शनैमेह वालों को त्रिफला और गुडूची का क्वाथ और लालामेह वालों को त्रिफला और अमलतास का क्वाथ बनाकर सेवन कराना चाहिये इन दस प्रकार के क्वाथों से दसो कफज मेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पित्तमेहचिकित्सा—

उशीरलोध्रासुरचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम्।
पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयामुष्ककवृक्षकाणाम् ॥ १ ॥
लोध्राम्बुकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनानां मिशिसोत्पलानाम्।
माञ्जिष्ठहारिद्रकनीलक्षारउष्णाख्यरक्ते क्रमशः कषायाः ॥ २ ॥

पित्तमेह चिकित्सा—१-खस, लोध, देवदारु और लाल चन्दन। २-खस, नागरमोथा, आँवला और हर्रा। ३-परवर के डालपात, नीम की छाल, आँवला और गुरुचि। ४-नागरमोथा, हर्रा, मोथा और श्वेत कुटज की छाल। ५-लोध, सुगन्धवाला, काला चन्दन (देवी चन्दन), और धाय के फूल और सोंठि ६-अर्जुन की छाल, सौंफ और नील कमल, इन पृथक् २ छवों योगों को समान लेकर क्वाथ कर क्रम से मांजिष्ठ मेह, हारिद्रमेह, नीलमेह, क्षारमेह, उष्णमेह और रक्तमेह इन छै पित्तज मेहों में सेवन करने से लाभ होता है ॥ १-२ ॥

सुश्रुतात्—माञ्जिष्ठमेहिनाम्—मञ्जिष्ठाचन्दनकषायं पाययेत्। हारिद्रमेहिनाम्—राजवृक्षकषायम्, नीलमेहिनाम्—सालसारादिकषायमश्वत्थकषायं वा। क्षारमेहिनाम्—त्रिफलाकषायम्, कालमेहिनाम्—न्यग्रोधादिकषायम्। शोणितमेहिनां गुडूचीतिन्दुकास्थिकाश्मर्यखर्जूरकषायं, मधुमिश्रं पाययेत्।

पित्तजमेह चिकित्सा—मांजिष्ठ प्रमेह वालों को मजीठ और चन्दन को समान लेकर क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये। एवं हारिद्रमेह वालों को अमलतास का क्वाथ, नीलमेह वालों को सालसारादिगण का अथवा अश्वत्थ वृक्ष की छाल का क्वाथ, क्षारमेह वालों को त्रिफला का कषाय, कालमेह वालों को न्यग्रोधादि गण का क्वाथ और रक्तमेह वालों को गुरुचि, तिन्दुक के फल की गुठली, गम्भार की छाल और खजूर समभाग लेकर क्वाथ बना शीतल कर मधु के प्रक्षेप के साथ सेवन करना चाहिये।

वातमेहचिकित्सा—

अग्निमन्थकषायं तु वसामेहे प्रयोजयेत्। पाठाशिरीषदुःस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकैः ॥ १ ॥
कपित्थेन भिषक्कुर्यात्क्वाथं हस्तिप्रमेहके। पूगारिमेदयोः क्वाथः सक्षौद्रः क्षौद्रमेहिनाम् ॥२॥

वातज मेह चिकित्सा—वसामेह में गनियार की छाल का क्वाथ, हस्तिमेह में पुरइनपाढ़ी, की छाल, यवासा, मूर्वामूल, पलासपुष्प, तिन्दुक फल तथा कैथ फल के समभाग का क्वाथ और क्षौद्रमेह में पूगीफल और विटखदिर को समभाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये ॥ १–२ ॥

छिन्नावह्निकषायेण पाठाकुटजरामठम् । तिक्तां कुष्ठं च सञ्चूर्ण्य सर्पिर्मेहे पिबेन्नरः ॥ ३ ॥

गुरुचि और चित्रकमूल के क्वाथ में पुरइनपाढ़ी, कुटजत्वक्, शुद्ध हींग, कुटकी, कूट सम भाग लेकर चूर्णकर इनका प्रक्षेप देकर पान करने से सर्पिर्मेह (मज्जमेह) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुश्रुतात्—अत ऊर्ध्वमसाध्येऽष्वपि योगान्यापनार्थं वक्ष्यामः। तद्यथा-वसामेहिनाम्-अग्निमन्थकषायं शिंशपाकषायं वा । सर्पिर्मेहिनाम्-कुष्ठकुटजपाठाहिङ्गुकटुरोहिणीकल्कं गुडूचीचित्रककषायेण पाययेत् । क्षौद्रमेहिनाम्--खदिरकदरक्रमुककषायम् । हस्तिमेहिनाम्—तिन्दुककपित्थशिरीषपलाशपाठामूर्वादुःस्पर्शाकषायं मधुमिश्रम् , हस्त्यश्वशूकरखरोष्ट्रास्थिक्षारं चेति ।

सुश्रुत के मत से इसके ऊपर असाध्य जो वातिक मेह हैं उनके शमन के लिये भी उपाय लिखे जा रहे हैं :—

वसामेह वालों के लिये गनियार अथवा शीशम की छाल का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर देना चाहिये। सर्पिर्मेह वालों के लिये कूठ, कोरया की छाल, पुरइनपाढ़ी, शुद्ध हींग और कुटकी सम भाग लेकर चूर्णकर (कल्क कर पाठ है पर क्वाथ का प्रक्षेप चूर्ण ही अच्छा होता है) उसका प्रक्षेप गुरुचि और चित्रकमूल के क्वाथ में मिलाकर सेवन कराना चाहिये। क्षौद्रमेह वालों के लिये खैर, बबूर की छाल और पूगीफल का क्वाथ बनाकर देना चाहिये। हस्तिमेह वालों को तिन्दुकफल, कैथ, शिरिष की छाल, पलास की छाल, पुरइनपाढ़ी, मूर्वामूल और यवासा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये और हाथी, घोड़ा, सूअर, गधा, ऊँट, इनकी अस्थियों का क्षार बनाकर देना चाहिये ।

अथ द्वंद्वजप्रमेहचिकित्सा ।

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि बिभीतरोहीतककौटजानि ।
पुष्पाणि वृध्नश्च विचूर्णितानि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेहे ॥ १ ॥

द्वन्द्वज प्रमेह चिकित्सा—कमीला, छितवन, साल, बहेड़ा, रोहित तृण और कोरया इन ओषधियों के पुष्पों को समभाग लेकर चूर्ण कर दही के साथ मिलाकर और मधु डाल कर चाटने से कफपित्त मिश्रित द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है ॥ १ ॥

हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्रकुचन्दनोशीरकृतः कषायः ।
क्षौद्रेण युक्तः कफवातमेहं निहन्ति पीता रजसा च पीतः ॥ २ ॥

हर्रा, कायफर, नागरमोथा, लोध, पतङ्ग की लकड़ी और खस समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें हरदी के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कफवातजनित द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है ॥ २ ॥

विडङ्गरजनीद्वन्द्वखदिरोशीरपूगजः । क्वाथः पीतः प्रगे हन्ति मेहं पित्तानिलोद्भवम् ॥ ३ ॥

भाभीरंग, हरदी, दारुहरदी, खैर, खस और पूगीफल समभाग लेकर क्वाथ कर प्रातःकाल सेवन करने से वातपैत्तिक द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है ॥ ३ ॥

क्वाथः खर्जूरकाश्मर्यतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः । सुहिमः पीतमात्रस्तु सक्षौद्रो रक्तमेहहा ॥ ४ ॥

खजूर, गम्भार की छाल, तिन्दुक फल की गुठली और गुरुचि समान लेकर क्वाथ बनाकर शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तमेह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ सामान्यप्रमेहचिकित्सा ।

फलत्रिकादि क्वाथः—**फलत्रिकं दारुनिशाविशालामुस्तं च निष्क्वाथ्य निशांशकल्कम् ।**
पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु चिरोत्थितेषु ॥ १ ॥

फलत्रिकादि क्वाथ—अवरा, हर्रा, बहेड़ा, दारुहरदी, माहुरि की जड़, नागरमोथा, सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें हरदी का कल्क और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के पुराने प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विडङ्गादिक्वाथः—

विडङ्गरजनीयष्टीनागरगोक्षुरैः कृतः । कषायो मधुना हन्ति प्रमेहान्दुस्तरानपि ॥ १ ॥

विडङ्गादि क्वाथ—भाभीरंग, हरदी, जेठीमधु, सोंठि और गोखरू समभाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कठिन प्रमेह भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पलाशपुष्पाणां क्वाथः—

पलाशतरुपुष्पाणां क्वाथः शर्करया युतः । निषेवितः प्रमेहाणि हन्ति नानाविधान्यपि ॥ १ ॥

पलाश पुष्प क्वाथ—पलाश के पुष्पों का क्वाथ बनाकर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर सेवन करने से अनेक प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात्त्रिफलादिक्वाथः—

त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा । कुटजासनदार्व्यब्दफलत्रयभवोऽथवा ॥ १ ॥

त्रिफलादि क्वाथ—अवरा, हर्रा, बहेड़ा, देवदारु, दारुहरदी, नागरमोथा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है। अथवा कोरया की छाल, असना, दारुहरदी, नागरमोथा, अँवरा, हर्रा, बहेड़ा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है ॥ १ ॥

वृन्दाद्गुडूच्यादि :—

गुडूच्याः स्वरसः पेयो मधुना सर्वमेहजित् । निशाकल्कयुतो धात्रीरसो वा माक्षिकान्वितः ॥

गुडूच्यादि योग—गुरुचि के स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है। हल्दी का कल्क अथवा मधु मिलाकर आंवले का स्वरस पान करने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूधात्र्यादिः—

भूधात्री च त्रिगद्याणं मरिचानां च विंशतिः । असाध्यान्साधयेन्मेहान्सप्तरात्रान्न संशयः ॥

भूधात्रिकादि योग—भुई आंवले का स्वरस ३ गद्याण (१८ माषा) और संख्या में २० मरिच का चूर्ण मिलाकर पान करने से असाध्य प्रमेहों को भी सात रात में (एक सप्ताह के सेवन करने से) अवश्य साध्य कर देता है (नष्ट कर देता है) ॥ १ ॥

कतकबीजयोगः—**कर्षप्रमाणं कतकस्य बीजं तक्रेण पिष्ट्वा सह माक्षिकेण ।**
प्रमेहजालं विनिहन्ति सद्यो रामो यथा रावणमाहवे तु ॥ १ ॥

कतक बीज योग—निर्मली के बीजों को एक कर्ष लेकर मट्ठे के साथ पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र प्रमेह जाल को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार रावण को युद्ध में राम ने नष्ट किया (मारा) था ॥ १ ॥

आकुल्यादियोगः—

आकुलीमुकुलं धात्री हरिद्रा मधुना लिहेत् । विंशतिं च प्रमेहाणां हन्ति सत्यं न संशयः ॥१॥

आकुलादि योग—आकुल वनस्पति विशेष की कली अथवा गेहूं के दाल का होला (होरहा) और पिस्ता, आंवला हरदी समभाग लेकर चूर्ण कर मधु के अनुपान से सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेहों को निश्चय ही नष्ट करता है, यह सत्य है ॥ १ ॥

निशात्रिफलायोगः—

द्विनिशात्रिफलायुक्तं रात्रौ पर्युषितं जलम् । प्रभाते मधुना पीतं मेहमूलं निकृन्तति ॥ १ ॥

निशा त्रिफला योग—हरदी, दारुहरदी, अवरा, हर्रा, बहेड़ा इनको समान लेकर जौ कुट कर रात को जल में भिगा देवे प्रातः उस पर्युषित जल को मधु के प्रक्षेप से सेवन करने से प्रमेह रोग को समूल नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलाकल्कः—

सजलं त्रिफलाकल्कमातपे धारयेत्त्र्यहम् । तद्भाण्डे दोलिकायन्त्रे चणकान्मुष्टिमात्रकान् ॥
अहोरात्रोषितान्खादेद्वर्धमानं दिने दिने । असाध्यं साधयेन्मेहं सिद्धयोग उदाहृतः ॥ २ ॥

त्रिफला कल्क—त्रिफला (अवरा-हर्रा-बहेडा समभाग मिलित) कल्क बनाकर उसमें जल मिलाकर एक मृत पात्र में रखकर तीन दिन तक धूप में रक्खे फिर उस पात्र में कपड़े में बांधकर एक मुट्ठी चना दोला यन्त्र की भांति लटका दे (चना उस जल में डूबा रहे) एक दिन रात उसमें रहने के पश्चात् निकाल कर क्रम से दिन २ बढ़ा कर सेवन करने से असाध्य मेहों को भी साध्य कर देता है । यह सिद्ध योग कहा गया है ॥ १-२ ॥

सालमुस्तयोगः—

सालमुस्तककपित्थकल्कमक्षसमं पिबेत् । धात्रीरसेन सक्षौद्रं सर्वमेहहरं परम् ॥ १ ॥

सालमुस्त योग—साल और नागरमोथा तथा कबीला समभाग लेकर कल्क कर एक अक्ष प्रमाण लेकर आंवले का स्वरस और मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिचूर्णम्—

मधुना त्रिफलाचूर्णमथ वाऽश्मजतूद्भवम् । लोहजं वाऽभयोत्थं वा लिह्यान्मेहनिवृत्तये ॥ १ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला का चूर्ण अथवा शुद्ध शिलाजीत अथवा लोह भस्म मधु मिलाकर सेवन करने से प्रमेह रोग की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

न्यग्रोधादिचूर्णम्—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योनाकारग्वधासनम् । आम्रं कपित्थं जम्बूश्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥१॥
मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् । पटोलं मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रकपाटली ॥ २ ॥
करञ्जं त्रिफला शक्रभल्लातकफलानि च । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ३ ॥
न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् । फलत्रयरसं चानु पिबेन्मूत्रं विशुध्यति ॥ ४ ॥

न्यग्रोधादि चूर्ण—वट, उदुम्बर, पीपल, अरलू, अमलतास, असना, आम, कैथ, जामुन, प्रियाल (वृक्ष विशेष), अर्जुन, धाव, महुआ इनकी छाल, मुलहठी, लोध, वरुण की छाल, पारिभद्र (पारिजात) की छाल, परवर की डालपात, मेढ़ासिंगी, दन्तीमूल, चित्रकमूल, पाड़र की छाल, कंजु, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, इन्द्रजव और शुद्ध भिलावे के फल प्रत्येक सम भाग लेकर चूर्ण कर लेवे । यह न्यग्रोधादि चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटना चाहिये और त्रिफला का स्वरस अनुपान में पीना चाहिये । इससे मूत्र शुद्ध होता है ॥ १-४ ॥

एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च । वेगेन प्रशमं यान्ति पिडिका न च जायते ॥५॥

न्यग्रोधादि चूर्ण से बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं और जितने प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग हैं वे सब वेग से (शीघ्र) शमन हो जाते हैं तथा पिडिकायें (प्रमेह पिडिकायें) नहीं उत्पन्न होती हैं ।

कर्कटीबीजादिचूर्णम्—

कर्कटीबीजसिन्धूत्थत्रिफलासमभागिकम् । पीतमुष्णाम्भसा चूर्णं मूत्ररोधं निवारयेत् ॥ १ ॥

कर्कटी बीजादि चूर्ण—ककड़ी के बीज, सेंधा नमक, आँवला, हर्रा, बहेड़ा सम भाग लेकर चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से पान करने से मूत्रावरोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरादिगुटी—

त्रिकटुत्रिफलातुल्यं गुग्गुलुं च समांशकम् । गोक्षुरक्वाथसंयुक्तां गुटिकां कारयेद् बुधः ॥ १ ॥
देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् । न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥
प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च । मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाशु नाशयेत् ॥ २ ॥

गोक्षुरादि गुटी—सोंठ, पीपरि, मरिच, आँवला, हर्रा, बहेड़ा सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर गोखरू के क्वाथ में मर्दन कर विधिवत् वटी बना कर देश, काल और बल के अनुसार मात्रा से सेवन करने से अनुलोमक है । इसके सेवन के समय कोई विशेष परिहार नहीं है । इच्छानुकूल भोजनादि कर्म करना चाहिये । इससे प्रमेह वात रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष और प्रदर रोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

चन्द्रप्रभागुटी योगरत्नावल्याः—

वेल्लव्योषफलत्रिकं त्रिलवणं द्विक्षारचव्यानल-
श्यामापिप्पलिमूलमुस्तकसटीमाक्षीकधातुत्वचः ।
वद्ग्रन्थामरदारुवारणकणाभूनिम्बदन्तीनिशा-
पत्रैलातिविषाः पिचुप्रतिमिता लोहस्य कर्षाष्टकम् ॥ १ ॥
त्वक्क्षीरी पलिका पुराद्दश पलान्यष्टौ शिलाजन्मनो
मानात्कर्षसमा कृतेति गुटिका संयोज्य सर्वं भिषक् ।
तत्रैव प्रतिवासरं सह घृतक्षौद्रेण लिह्याद्दिमां
तक्रं मस्तु च गोघृतं मधुरसं पश्चात्पिबेन्मात्रया ॥ २ ॥

चन्द्रप्रभा गुटी—वायवीडङ्ग, सोंठि, पीपरि, मरिच, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, सेंधा, सौवर्चल और विड नमक, यवाखार, सज्जी खार, चव्य, चित्रकमूल, निशोथ, पिपरामूल, नागरमोथा, कचूर, स्वर्णमाक्षिक भस्म, दालचीनी, वच, देवदारु, गजपीपरि, चिरैता, दन्तीमूल, हरदी, तेजपात, इलायची के दाने, अतीस, इन सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर पिचु प्रमाण (२ तोला वा एक कर्ष) पृथक् २ लेवे और लोह भस्म ८ कर्ष, वंश लोचन १ पल, शुद्ध गुग्गुलु १० पल, शुद्ध शिलाजीत ८ पल लेकर सबको खरल में एकत्र मर्दन कर कर्ष प्रमाण की वटी विधिपूर्वक बनाकर घृत और मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करे, अपने अनुकूल मात्रा से तक्र, दही का पानी, गोघृत, मधु और मांस रस का अनुपान सेवन (पीना) करना चाहिये । इस योग में पारद-गन्धक की कज्जली अथवा रससिन्दूर अथवा अभ्रक भस्म भी एक पल मिलाने का योग कई ग्रन्थों में है । (इसकी मात्रा ४ रत्ती की है पर अपने २ बलानुसार सेवन करना चाहिये) ॥ १-२ ॥

अर्शांसि प्रदरं ज्वरं च विषमं नाडीव्रणानश्मरी-
कृच्छ्रं विद्रधिमग्निमान्द्यमुदरं पाण्ड्वामयं कामलाम् ।
यक्ष्माणं सभगन्दरं सपिटिकां गुल्मप्रमेहाश्मरी
रेतोदोषमुरःक्षतं कफमरुत्पित्तार्तिमुग्रां जयेत् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से सब प्रकार के अर्शरोग, प्रदर, विषम ज्वर, नाड़ीव्रण, अश्मरी, मूत्र-कृच्छ्र, विद्रधि, मन्दाग्नि, उदररोग, पाण्डुरोग, कामला, यक्ष्मा, भगन्दर, प्रमेहपिटिका और

भगन्दर की पीडिका, गुल्मरोग, प्रमेह, अरुचि, वीर्यदोष, उरःक्षत, कफ-वात और पित्त के अति उग्र रोग इनको यह नष्ट करती है ॥ ३ ॥

वृद्धं सज्जनयेद्युवानमसमोजस्कं बलं वर्धये-
देतस्यां न निषिद्धमन्नमसकृन्नाध्वागमो मैथुनम् ।
विख्याता गुटिकेयमप्यतितरा चन्द्रप्रभा नामतः
सान्द्रानन्दकरी तनोति च रुचिं चन्द्रेण तुल्यां तनौ ॥ ४ ॥

यह वटी वृद्धपुरुषों को युवा करती है अर्थात् युवा के समान शक्तिशाली करती है तथा उनके ओज और बल को बढ़ाती है । इसके सेवन करने के समय किसी प्रकार के अन्नादि, मार्ग गमन तथा मैथुनादि किसी कर्म का निषेध नहीं है । यह प्रसिद्ध वटी अत्यन्त आनन्द देने वाली, रुचि करने वाली तथा चन्द्रमा के समान शरीर को सुन्दर बनाने वाली है । इसका नाम चन्द्रप्रभा है । (यद्यपि इसके सेवन के समय कुछ वर्जित नहीं है तथापि यदि पथ्य के साथ सेवन किया जावे तो और लाभकारक है) ॥ ४ ॥

योगरत्नावल्याः पूगपाकः—

हेमाम्भोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्री प्रियालाः कटु-
लंज्जालुस्त्रिसुगन्धजीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजम् ।
जातीकोशलवङ्गधान्यबहुलाः प्रत्येकमक्षोन्मिताः
पूगस्याष्टपलं विचूर्ण्य च पयःप्रस्थत्रये सम्पचेत् ॥ १ ॥
गोसर्पिः कुडवं सितार्धकतुलाधात्रीवरी द्व्यञ्जली
मन्दाग्नौ विपचेन्निधाय शुभदिने सुस्निग्धभाण्डे क्षिपेत् ।
तं खादेत्तु यथाग्नि वासरमुखे मेहांश्च जीर्णज्वरं
पित्तं साम्लमसृक्स्रुतिं च गुदजान्वक्त्राक्षिनासासु च ॥ २ ॥
मन्दाग्निं च विजित्य पुष्टिमतुलां कुर्याच्च शुक्रप्रदो
योगो गर्भकरः परं गदहरः स्त्रीणामसृग्दोषजित् ॥ ३ ॥

पूगपाक—नागकेसर, नागरमोथा, चन्दन, सोंठ, पीपरि, मरिच, आँवरा, प्रियाल, कोरया की छाल, लज्जावन्ती, दालचीनी, तेजपात, इलायची, जीरा, कृष्णजीरा, सिंघाड़ा, वंशलोचन, जायफल, जावित्री, लवंग, धनियाँ, बड़ी इलायची के दाने प्रत्येक २ अक्ष (एक २ कर्ष) लेकर चूर्ण करे फिर उत्तम पूगीफल का चूर्ण ८ पल लेकर तीन प्रस्थ गाय के दूध के साथ पाक कर गाढ़ा, (खोवा) कर लेवे पश्चात् उस खोवे को एक कुड़व (आधामानी) गाय के घृत के साथ भून कर उसमें श्वेत शर्करा ५० पल, आँवले का चूर्ण और शतावरि मूल का चूर्ण दो २ अञ्जली (१६, १६ पल) तथा उपर्युक्त नागकेसरादि का चूर्ण मिलाकर मृदु अग्नि पर पाक कर अच्छे दिन वैद्य स्निग्ध पात्र में रख लेवे । इस पाक को अग्निबल के अनुसार प्रातः सेवन कराने से प्रमेह रोग, जीर्ण ज्वर, अम्लपित्त, रक्तस्राव, अर्श, मेह, आंख तथा नाक के रोग तथा मन्दाग्नि को नष्ट करता है और अत्यन्त पुष्टिकारक, शुक्रकारक है, तथा यह योग उत्तम गर्भकारक है, स्त्रियों के रक्तदुष्टि रोगों को नष्ट करने वाला है ॥ १-३ ॥

अश्वगन्धापाकः—पलान्यष्टावश्वगन्धां विपाच्य गोदुग्धे षट्शरके मन्दवह्नौ ।
दर्वीलेपो यावदास्ते सुपक्वश्चातुर्जातं क्षिप्य कर्षप्रमाणम् ॥ १ ॥
जातीजातं केशरं वंशसत्वं मोचं मांसी चन्दनं कृष्णसारम् ।
पत्रीकृष्णापिप्पलीमूलदेवपुष्पं कङ्कोलालिकाक्षोटसारम् ॥ २ ॥

भल्लीबीजं शृङ्गटं गोक्षुराख्यं सिन्दूराभ्रं नागवङ्गं च लोहम् ।
कर्षार्धार्धं सर्वचूर्णं प्रकल्प्य संशोध्याथो शर्करापक्वपाके ॥ ३ ॥
पक्त्वा शीतं कारयेदश्वगन्धापाकोऽयं वै हन्ति मेहानशेषान् ।
ज्वरं जीर्णं शोषगुल्मान्तिकारान्पैत्तान्वाताञ्छुक्रवृद्धिं करोति ॥ ४ ॥
पुष्टिं दद्यादग्निसन्दीपनोऽयं कान्तिं कुर्यात्सौमनस्यं नराणाम् ॥ ५ ॥

अश्व गन्धापाक—असगन्ध का चूर्ण आठ पल और गाय का दूध छै शराव या ३ प्रस्थ लेकर मन्द २ अग्नि पर पाक तब तक करे जब तक कलछी में लगे नहीं, फिर इसमें दालचीनी, नागकेसर, इलायची और तेजपात का समान मिलित चूर्ण एक कर्ष मिलावे और जायफर, नागकेसर, वंशलोचन, मोचरस, जटामांसी, चन्दन, खैरसार, जावित्री, पीपरि, पिपरामूल, लवंग, कंकोल, पाढ़र की छाल, अखरोट के फल का गूदा, शुद्ध भिलावा, सिंघाड़ा, गोखरू, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, लोहभस्म प्रत्येक का चूर्ण चौथाई २ कर्ष, मिलावे और श्वेत शर्करा ५० पल का पाक कर (चाशनी बना) एकत्र कर पाक की विधि से सिद्ध पाक शीतल होने पर स्निग्ध पात्र में रख ले । यह अश्वगन्धापाक सम्पूर्ण प्रमेहों को नष्ट करता है, जीर्ण ज्वर, शोथ, गुल्म, वात तथा पित्त के विकार को नष्ट करता है, वीर्य की वृद्धि करता है, पुष्टिकारक है, अग्निदीपक है तथा शरीर की कान्ति को बढ़ाता है और रुचिकारक है ॥ १-५ ॥

सालमपाकः—क्षीरे द्रोणयुते ससालकुडवं मन्दाग्निना पाचितं
यावत्पाकमुपाव्रजेत्परहितं प्रस्थं गुडं निक्षिपेत् ।
चातुर्जातलवङ्गजातिफलकैर्मुस्तातुगाधान्यकैः
शुण्ठीमागधिकोषणाश्वमभयालौहैश्च मिश्रीकृतम् ॥ १ ॥
हृद्रोगक्षयशोषमारुतगदान् हिक्कास्वसृक्शोषणे ।
विंशन्मेहशिरोविकारशमनो रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ २ ॥

सालम पाक—एक द्रोण गाय के दूध में सालम मिश्री का चूर्ण एक कुड़व (आधा मानी) मिलाकर मन्द २ अग्नि पर पाक करे जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें पुराना गुड़ एक प्रस्थ मिलावे और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, लवंग, जायफर, नागरमोथा, वंशलोचन, धनियाँ, सोंठि, पीपरि, मरिच, असगन्ध, हर्रा इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण और लोहभस्म, प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर यथा विधि पाक में मिश्रित कर स्निग्ध पात्र में रख ले । इसके सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, शोष, वात के रोग, हिक्का, रक्त शोष, बीसों प्रकार के प्रमेह रोग तथा सिर के रोग और सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

द्राक्षापाकः—द्राक्षादुग्धसितापृथक्परिमिता प्रस्थेन सम्पाचिता
युक्त्या वैद्यवरेण चूर्णमधुना देयं पलार्धं पृथक् ।
चातुर्जातकटुत्रयं मृगमदं लोहाभ्रकं केशरं
पत्री जातिफलं मृगाङ्करजतं कस्तुम्बरी चन्दनम् ॥ १ ॥
सम्यग्जातरसं प्रभातसमये सेव्यं द्विकर्षोन्मितं
स्निग्धं शुक्रकरं प्रमेहशमनं पित्तामयध्वंसनम् ।
मूत्राघातविबन्धकृच्छ्रशमनं रक्तार्तिनेत्रार्तिहृत्-
पादे पाणितले विदाहशमनं सौख्यप्रदं प्राणिनाम् ॥ २ ॥

द्राक्षापाक—दाख एक प्रस्थ, गाय का दूध एक प्रस्थ और श्वेत शर्करा एक प्रस्थ लेकर एकत्र कर विधिपूर्वक पाक करे, गाढ़ा हो जाने पर उसमें वैद्य युक्तिपूर्वक पाक की विधि से आगे लिखी दालचीनी, इलायची के दाने, तेजपात, नागकेसर, सोंठ, पीपरि, मरिच, कस्तूरी, लोहभस्म,

अभ्रकभस्म, केसर, जावित्री जायफर शुद्ध कपूर, रौप्यभस्म, धनियां और चन्दन इन ओषधियों के पृथक् २ आधा २ पल चूर्ण-भस्म को मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख लेवे। इसको प्रातः काल दो कर्ष के प्रमाण की मात्रा से (अथवा वय-बल के अनुसार मात्रा से) सेवन करना चाहिये। यह स्निग्ध वीर्यवर्धक प्रमेह को शमन करने वाला, पित्त के रोग को नष्ट करने वाला मूत्राघात, विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र इनको शमन करने वाला, रक्त सम्बन्धी पीड़ा, नेत्र रोग इनको नष्ट करने वाला, हाथ पैर के तलवों के दाह को शान्त करने वाला और प्राणियों को सुख देने वाला है ॥ १-२ ॥

अथाऽऽसवघृततैलादि ।

लोध्रासव—लोध्रं शटीं पुष्करमूलमेलां मूर्वां विडङ्गं त्रिफलां यवानीम् ।
चव्यं प्रियङ्गुं क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणीं च ॥ १ ॥
भार्ङ्गीं नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविषां सपाठाम् ।
कलिङ्गकान् केसरमिन्द्रसाह्वं नखं सपत्रं मरिचं प्लवं च ॥ २ ॥
द्रोणेऽम्भसः कर्षसमानि पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे ।
रसेऽर्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं विधेयो घृतभाजनस्थः ॥ ३ ॥
लोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान्क्षिप्रं निहन्याद्द्वि पलप्रयोगात् ।
पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं किलासं विविधं च कुष्ठम् ॥ ४ ॥

आसव घृत तैलादि प्रकरण—लोध्रासव—लोध, कचूर, पुहकरमूल, इलायची के दाने, मूर्वा-मूल, भार्भीरंग, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, अजवाइन, चाव, प्रियंगु, पूगीफल, माहरि की जड़, चिरैता, कुटकी, बमनेठी, तगर, चित्रकमूल, पिपरामूल, कूट, अतीस, पुरइनपाढ़ी, कोरया की छाल, नागकेसर, इन्द्रजौ, नखी द्रव्य, तेजपात, मरिच, केवटीमोथा प्रत्येक एक-एक कर्ष लेकर जौ कुट कर एक द्रोण (४ आढ़क) जल के साथ चतुर्थांशावशेष पाक करके उतार-छानकर शीतल होने पर जितना क्वाथ हो उसके आधा मधु मिलाकर एक स्निग्ध मृत पात्र में रख कर आसव की विधि से १५ दिन तक मुख बन्द कर रख दे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर एक पल के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह 'लोध्रासव' कफ और पित्त के प्रमेह को शीघ्र ही नष्ट करता है और पाण्डुरोग, अर्श, अरुचि, ग्रहणी के दोष, किलास कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के अन्यान्य कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सिंहामृतघृतम्—

कण्टकार्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् । सङ्कुट्योलूखले विद्वांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥१॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । त्रिकटुत्रिफलारास्नाविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ २ ॥
काश्मर्याश्चापि मूलानि पूतिकस्य त्वचस्तथा । कुट्टयेदिति सर्वाणि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् ॥
अस्य मात्रां पिबेत्प्रातः शालिभिः पयसा हितैः । प्रमेहं मधुमेहं च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥४॥
आलस्यं चान्त्रवृद्धिं च कुष्ठरोगं विशेषतः । क्षयं चापि निहन्त्येतन्नाम सिंहामृतं घृतम् ॥५॥

सिंहादिघृत—छोटी कटेरी, गुरुचि, दोनों को सौ २ पल पृथक् २ लेकर ओखल में कूट कर चार द्रोण (१६ आढ़क) जल के साथ चतुर्थांशावशेष पाक कर उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ मिलावे और सोंठि, पीपरि, मरिच, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, रास्ना, भाभीरंग, चित्रकमूल, गम्भार की जड़, पूतिकरञ्ज और दालचीनी समान (एक २ भाग) लेकर कूटकर कल्ककर यह कल्क घृत से चौथाई मिलाकर घृत सिद्ध कर यथायोग्य मात्रा से प्रातःकाल पान करने तथा शालिधान और दूध का पथ्य सेवन करने से प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर,

आलस्य, आन्त्रवृद्धि और विशेष कर कुष्ठरोग को नष्ट करता है तथा यह सिंहादि नामक घृत क्षयरोग को भी नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

हरिद्रादितैलम्—निशारसं चतुःप्रस्थं द्विप्रस्थक्षीरसंयुतम् ।
कुष्ठाश्वगन्धालशुननिशापिप्पलिकल्किकतम् । विपक्वं तिलजप्रस्थं मेहानां विंशतिं जयेत् ॥१॥

हरिद्रादितैल—हरदी का स्वरस ४ प्रस्थ, गाय का दूध दो प्रस्थ और मूर्च्छित तिल का तेल एक प्रस्थ मिला कर उसमें कूट, असगन्ध, लहसुन, हरदी, पीपरि इनको समान मिलित कल्क मिलाकर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥१॥

लेपनम्—

क्षीरमौदुम्बरं यत्नाद्वाकुचीं च प्रयोजयेत् । पिटिकासु समस्तासु लेपनं सम्प्रशान्तये ॥ १ ॥

लेपन—गूलर का दूध और बाकुची बीज इनको पीस कर लेप बनाकर लगाने से सब प्रकार की पिडिकायें शमन होती हैं ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्रादौ हरिशङ्कररसः—

सूताभ्रकामलजलैः सप्तवारं विभावयेत् । हरिशङ्करसंज्ञः स्याद्रसः सर्वप्रमेहनुत् ॥ १ ॥

हरिशङ्कररस—पारदभस्म अथवा रससिन्दूर तथा अभ्रकभस्म इन दोनों को समभाग लेकर आँवले के रस के साथ सात बार भावित कर लेवे। यह 'हरिशङ्कर' नामक रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

सूतं कान्तं गन्धतीक्ष्णं ताप्यं व्योषं फलत्रिकम् । शिलाजतुशिलाङ्कोलबीजं रात्रिकपित्थकम्॥
त्रिःसप्तकृत्वो भृङ्गाद्भिर्भावयेन्निष्कमानकः । मधुना मेघनादोऽयं सर्वमेहान्विनाशयेत् ॥ २ ॥
महानिम्बस्य बीजानि पेषयेत्तण्डुलाम्बुना । सघृतान्यचिराद्धन्युः पानान्मेहांश्चिरोत्थितान् ॥

मेघनाद रस—शुद्धपारद, कान्तलौहभस्म, शुद्धगन्धक, तीक्ष्णलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सोंठि मरिच, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, इनका चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध मैनसिल, अङ्कोल के बीज का चूर्ण, हरदी का चूर्ण, कैथ के फल का चूर्ण इन सब को सम भाग (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य सभी ओषधियों को एकत्र मर्दन कर भांगरे के स्वरस के साथ भावित कर सुखा कर पीस कर इसको एक निष्क (४ माषा) की मात्रा से मधु के अनुपान से सेवन करने से यह 'मेघनाद रस' सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है। (मात्रा रोग बलानुसार देनी चाहिये) ॥ १-२ ॥

मेहकुञ्जरकेसरी रसः—

रसगन्धायसाभ्राणि नागवङ्गौ सुवर्णकम् । वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ १ ॥
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे । बद्ध्वा शुष्कं तमुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत् ॥ २ ॥
सन्धिलेपं मृदा कुर्याद्भूतायां गोमयाग्निना । पुटेद्यामचतुःसंख्यमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम् ॥३॥
श्लक्ष्णखल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्दयेद् दृढम् । देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा धृत्वाऽथ कूपिके ॥
खादेद्गुञ्जाद्वयं प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् । अष्टादश प्रमेहांश्च जयेन्मांसोपयोगतः ॥ ५ ॥
तुष्टिं तेजो बलं वर्णं शुक्रवृद्धिं च दारुणम् । अग्नेर्बलं वितनुते मेहकुञ्जरकेसरी ॥
दिव्य रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

मेहकुञ्जरकेसरी रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म, सुवर्ण भस्म, हीरा भस्म, मोती भस्म, सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य ओषधियों को मिलाकर मर्दन कर फिर शतावरि के रस के साथ मर्दन कर गोला

बनाकर धूप में सुखा लेवे फिर उसे शराव सम्पुट में रख कर सम्पुट का मुख भली भाँति बन्द पुटपाक की विधि से एक गढ़े में रखकर गोबर के आग में चार पहर तक पुट देवे (पकने देवे), स्वांग शीत होने पर निकाल कर खरल में रखकर उस गोले को भली भाँति पीस लेवे फर देवता और ब्राह्मण की पूजा कर के शीशी में रख लेवे। इसको दो वल्ल के प्रमाण की मात्रा से प्रातः खाकर शीतल जल का अनुपान करे तो यह रस एक मास के सेवन करने से अठारह प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है और इससे तुष्टि होती है, तेज, बल, वर्ण और वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है और अग्नि के बल को बढ़ाता है। यह 'मेहकुञ्जरकेसरी' नामक रस दिव्य एवं श्रेष्ठ रसायन है। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ १–६ ॥

मेहान्तको रसः—

मृताभ्रकान्तलोहानि नागवङ्गौ विशोधितौ। यथोत्तरं भागवृद्ध्या खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् ॥
तलपोटेन वाराह्याः शतावर्या हिमाम्बुना। भावनाऽत्र प्रकर्तव्या यामं यामं पृथक्पृथक् ॥२॥
चणमात्रां वटीं कृत्वा नवनीतेन सेवयेत। प्रातरुत्थाय विधिना सर्वमेहकुलान्तकः ॥ ३ ॥

मेहान्तक रस—यथाभाग उत्तरोत्तर वृद्ध करके अभ्रक भस्म १ भाग, कान्त लोह भस्म २ भाग, लोहभस्म ३ भाग, नागभस्म ४ भाग, वंग भस्म ५ भाग लेकर खरल में रख कर मर्दन कर शाल्मली के रस (मूसली के रस), वाराही कन्द के रस, शतावरि के रस और सुगन्ध वाला के रस के साथ पृथक् २ एक २ पहर तक क्रम से भावित कर चने के प्रमाण की वटी विधि पूर्वक बनाकर मक्खन के साथ प्रातः काल विधिवत सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है ॥ १–३ ॥

शाल्यन्नं सपटोलं च तण्डुलीयकवास्तुकम्। मत्स्याक्षी मुद्गयूषं च अपक्वकदलीफलम् ॥४॥

रस के सेवन करते समय पथ्य में शालिधान का चावल, परवर, चौराई, बथुआ, मत्स्याक्षी, मूंग का यूष, कच्चा केला आदि का सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अर्शांसि ग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्राश्मरीप्रणुत्। कामलापाण्डुशोफांश्च अपस्मारक्षतक्षयान्।
रक्तकासविनाशे स्यात्पञ्चलोहरसायनम् ॥ ५ ॥

इस रस के सेवन से अर्श, ग्रहणी के दोष, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोग, कामलारोग, पाण्डु, शोथ, अपस्मार, क्षत, क्षय तथा रक्तसहित कास इन सबको यह पञ्चलोह रसायन (मेहान्तक रस, जिसमें ५ प्रकार के रसों का योग है) नष्ट कर देता है ॥ ५ ॥

मेहारिरसः—

वङ्गभस्म मृतं सूतं तुल्यं क्षौद्रे विमर्दयेत। द्विगुञ्जो लेहयेन्नित्यं हन्ति मेहांश्चिरन्तनान् ॥६॥

मेहारि रस—वंगभस्म, पारदभस्म वा रससिन्दूर दोनों को समान लेकर मधु के साथ मर्दन कर दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से नित्य चाटने से पुराने प्रमेहों को भी नष्ट करता है ॥ ६ ॥

चन्द्रकलावटी—एला सकर्पूरसिता सधात्री जातीफलं केसरशाल्मली च।
सूतेन्द्रवङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेच्च ॥ १ ॥
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्काधमानं मधुना ततश्च।
बद्ध्वा वटीं चन्द्रकलेतिसंज्ञां सर्वप्रमेहेषु नियोजयेत्ताम् ॥ २ ॥

चन्द्रकला वटी—छोटी इलायची के दाने का चूर्ण, शुद्ध कपूर, श्वेतशर्करा, आँवले का चूर्ण, नागकेसर, सेमल की मूसली का चूर्ण, पारदभस्म वा रससिन्दूर, वंगभस्म और लौहभस्म समभाग (एक २ भाग) लेकर एकत्र खरल में घोटकर प्रथम गुरुच के क्वाथ या स्वरस से पश्चात् सेमल के क्वाथ या स्वरस मे विधिपूर्वक भावित कर सुखाकर मधु मिला कर आधा निष्क (२ माषा) के प्रमाण की वटी बना सभी प्रमेहों में इसका प्रयोग करना चाहिये। इसका 'चन्द्रकलावटी' नाम है ॥

वङ्गेश्वरः—

रसमेकं त्रयो वङ्गं वङ्गसाम्यं तु गन्धकम्। मर्दयेद्दिनमेकं तु कुमार्याः स्वरसे बुधः ॥ १ ॥
संस्थाप्य गोलकं भाण्डे रोधयेत्सुदृढं मुखम्। पाचयेद्वालुकायन्त्रे दिनमेकं दृढाग्निना ॥ २ ॥
स्वाङ्गशीतलमादाय सम्पूज्य द्विजदेवताः। पिप्पलीमधुना युक्तं सर्वमेहेषु योजयेत् ॥ ३ ॥

वंगेश्वर रस—शुद्ध पारद एक भाग, वंगभस्म तीन भाग, और वंग के समान (३ भाग ही) शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर वंग मिलाकर मर्दन कर कुमारी के रस के साथ एक दिन भर (४ पहर) मर्दन कर गोला बनाकर एक कांच के पात्र में रख कर मुख बन्द कर कपड़मिट्टी कर विधिपूर्वक 'बालुका यन्त्र' में एक दिन भर (४ पहर तक) दृढ़ अग्नि पर पाककर स्वांगशीत होने पर निकाल पीसकर ब्राह्मण देवता का पूजाकर यथायोग्य मात्रा से पीपरि के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर सब प्रकार के प्रमेहों में प्रयोग करना चाहिये, इससे सब प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १–३ ॥

क्षीरान्नं योजयेत्पथ्यमम्ललवणवर्जितम्। रसो वङ्गेश्वरो नाम सर्वमेहनिकृन्तनः ॥ ४ ॥

इसके सेवन के समय अन्न और दूध का पथ्य देवे और अम्ल तथा लवणरस का त्याग कर देवे। यह वंगेश्वर नाम का रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करने वाला है ॥ ४ ॥

महावङ्गेश्वरः—

वङ्गं कान्तं च गगनं हेमपुष्पं समं समम्। कुमारीरसतो भाव्यं सप्तवारं भिषग्वरैः ॥ १ ॥
एष वङ्गेश्वरो नाम प्रमेहान्विंशतिं जयेत्।
मूत्रकृच्छ्रं सोमरोगं पाण्डुरोगं महाश्मरीम्। रसायनमिदं श्रेष्ठं नागार्जुनविनिर्मितम् ॥ २ ॥

महावंगेश्वर रस—वंगभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, धतूर के फूल समभाग लेकर कुमार के स्वरस से सात बार भावित कर रख लेवे, यह 'महावंगेश्वर' नामकरस बीसों प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है तथा मूत्रकृच्छ्र, सोमरोग, पाण्डुरोग और अश्मरीरोग को नष्ट करता है। यह 'नागार्जुन जी' का बनाया हुआ श्रेष्ठ रसायन है ॥ १–२ ॥

वङ्गभस्मप्रयोगो गुणाश्च—

वङ्गं शिलाजतुयुतं तु मतं प्रमेहे धातुक्षये दुर्बलनष्टशुक्रयोः।
अभ्रेण युक्तं तु सुतप्रदं स्याज्जातीफलार्ककरहाटकलवङ्गयुक्तम् ॥ १ ॥

वंगभस्म—वंगभस्म को शुद्ध शिलाजीत के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग, धातुक्षय, धातु दौर्बल्य तथा नष्ट शुक्र रोग को नष्ट करने वाला होता है। वंगभस्म को अभ्रकभस्म, जायफर के चूर्ण, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म और लवंग के चूर्ण इनके साथ सेवन करने से पुत्र को देने वाला होता है ॥ १ ॥

शाल्मलीत्वग्रसोपेतं सक्षौद्ररजनीरजः। वङ्गभस्म हरेन्मेहान्पञ्चानन इव द्विपान् ॥ २ ॥

वंगभस्म को सेमर वृक्ष की त्वचा के स्वरस, मधु, हरदी के चूर्ण, इनके साथ सेवन करने से प्रमेहों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे शेर हाथियों को ॥ २ ॥

गुडूचीसारमधुना वङ्गभस्म प्रमेहनुत्। नागभस्म तथैवापि सर्वमेहविनाशनम् ॥ ३ ॥

वंगभस्म को गुरुचि के सत्त और मधु इनके साथ सेवन करने से प्रमेह को नष्ट करता है। इसी प्रकार नाग भस्म भी सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

पयो गवां सखण्डकं त्रिकण्टवङ्गवल्लकम्। प्रमेहभञ्जकं परं बुधा वदन्ति सादरम् ॥ ४ ॥

वंगभस्म को एक वल्ल प्रमाण लेकर गोखरू के चूर्ण के साथ खांड (शर्करा) मिश्रित गोदुग्ध के अनुपान से सेवन करने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

वङ्गगुणाः—तिक्तकं सलवणं च भेदकं पाण्डुजन्तुशमनं सुशीतलम् ।
मेहदाहशमनं च कान्तिदं वङ्गमाहुरिति मारुतापहम् ॥ १ ॥

वङ्ग के गुण—वंगभस्म, तिक्त लवण रस युक्त, भेदक पाण्डु तथा कृमि रोग का नाशक, शीतल, प्रमेह और दाह को शमन करने वाला, कान्ति को देने वाला और वातनाशक कहा गया है ॥ १ ॥

अभ्रकयोगः—

निश्चन्द्रमभ्रकं भस्म सवरारजनीरजः । मधुना लीढमचिरात्प्रमेहान्विनिवर्तयेत् ॥ १ ॥

अभ्रक भस्म का योग—निश्चन्द्र (उत्तम) अभ्रक भस्म का त्रिफला (समान मिलित) के चूर्ण और हल्दी के चूर्ण के साथ मधु के अनुपान से चाटने से सब प्रकार के प्रमेहों को शीघ्र नष्ट करता है। (इसकी मात्रा रोग बलानुसार देनी चाहिये ॥ १ ॥

नागभस्मयोगः—

शुद्धस्य च मृतस्याहे रजो वल्लमितं लिहेत् । सनिशामलकक्षौद्रं सर्वमेहप्रशान्तये ॥ १ ॥

नागभस्म का योग—शुद्ध नागभस्म को एक वल्ल के प्रमाण की मात्रा से हल्दी के चूर्ण, आँवले के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह शमन होते हैं ॥ १ ॥

गन्धकयोगः—

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयः पिबेत् । विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः पिटिका अपि ॥

गन्धक का योग—शुद्ध आँवलासार गन्धक को यथायोग्य मात्रा से पुराने गुड़ के साथ सेवन कर दूध का अनुपान करने से बीसों प्रकार के प्रमेह तथा प्रमेह पिडिकायें भी नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

शिलाजतुयोगः

शिलाजतुरसं पीत्वा प्रातः क्षीरसितायुतम् । मुच्यते सर्वमेहेभ्यस्त्रिःसप्तदिवसैर्नरः ॥ १ ॥

शिलाजीत का प्रयोग—शुद्ध शिलाजीत को दूध और शर्करा के साथ प्रातः पान करने से २१ दिन में सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

स्वर्णमाक्षिकभस्मप्रयोगः—

माक्षिकं मधुना लीढं मेहं हरति सर्वथा । गुडूचीसत्त्वसंयुक्तं पित्तमेहं व्यपोहति ॥ १ ॥

स्वर्ण माक्षिक भस्म योग—स्वर्ण माक्षिक भस्म को मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह और गुडूची के सत्त्व के साथ सेवन करने से पित्तज मेह नष्ट होता है ॥ १ ॥

वसन्तकुसुमाकरः—

पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रं त्रयो वङ्गाहिकान्तजम् । चत्वारः सूतमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं तथा ॥१॥
भावना गव्यदुग्धेक्षुवासाश्रीह्रिजलैर्निशा । मोचाकन्दरसैः सप्त क्रमाद्भाव्यं पृथक्पृथक् ॥२॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमैस्तथा । पश्चान्मृगमदैर्भाव्यः सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥ ३ ॥
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः । वल्लद्वयमितः सेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः ॥ ४ ॥
वलीपलितहृन्मेध्यः कामदः सुखदः सदा । मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः परं वृष्यो रसायनम् ॥५॥

वसन्त कुसुमाकर रस—स्वर्णभस्म और रौप्यभस्म दो-दो भाग, वंगभस्म नागभस्म और कान्तभस्म प्रत्येक ३ भाग, पारदभस्म वा रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म और मोती भस्म प्रत्येक ४ भाग लेकर सबको एकत्र खरल में मर्दन कर गाय के दूध से, ईख के रस से और अड़ूसा, कमल, सुगन्धवाला, जलवेत, हरदी तथा केले के कन्द के स्वरस से पृथक् २ क्रमशः सात भावना देवे। फिर गुलाब के फूल वा कमल के फूल वा मालती या चमेली के फूल तथा कस्तूरी इन यथायोग्य स्वरस से पृथक् २ भावना देकर सुखाकर पीसकर रख लेवे। इस प्रकार भलीभाँति सिद्ध किया हुआ यह रसराज होता है। यह वसन्त कुसुमाकर के नाम से प्रसिद्ध है। इसको दो

वल्ल के प्रमाण की मात्रा (यथायोग्य मात्रा) से शर्करा, घृत और मधु के अनुपान से सेवन करना चाहिये। यह वली पलितरोग को नष्ट करता है मेधाशक्ति बढ़ाता है, सदा काम उत्पन्न करता है और सुख देता है, प्रमेह को नष्ट करता है, यह पौष्टिक, अत्यन्त वृष्य और श्रेष्ठ रसायन है ॥१-५॥

आयुर्वृद्धिकरं पुंसां प्रजाजननमुत्तमम् । क्षयकासतृषोन्मादश्वासरक्तविषार्तिजित् ॥ ६ ॥

आयु की वृद्धि करता है, सन्तानकर योगों में उत्तम है, तथा क्षय, कास, तृषा, उन्माद, श्वास, रक्तदोष तथा विषदोष को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

सिताचन्दनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगजित् । शुक्लपाण्ड्वामयाञ्छूलान्मूत्राघाताश्मरीं हरेत् ॥

इसको शर्करा और चन्दन (घिसा हुआ श्वेतचन्दन) के साथ सेवन करने से अम्लपित्तादि (पित्तज) रोगों को नष्ट करता है और शुक्लवर्ण का पाण्डुरोग (जिस रोग में रक्त की न्यूनता से शरीर का वर्ण श्वेत हो जाता है उसे श्वेत पाण्डुरोग कहते हैं) तथा पाण्डुरोग, शूल, मूत्राघात और अश्मरी इन रोगों को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

योगवाहि त्विदं सेव्यं कान्तिश्रीबलवर्धनम् । सुसात्म्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमदाशतम् ॥८॥

यह रस योगवाही है। इसके सेवन से शरीर की कान्ति, श्री तथा बल की वृद्धि होती है और इसके सेवन के समय सात्म्य मिष्ट पदार्थों का भोजन करने वाला सौ स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है ॥ ८ ॥

मदनं मदयन्मदमुज्ज्वलयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन् ।
सुरतैः सुखदैर्गतिविच्यवनैर्भवसारजुषामयमेव सुहृत् ॥ ९ ॥

यह रस कामदेव के मद को बढ़ाता है, अत्यन्त मद से विह्वल रमणियों को शान्त कराता है (अनेक रमणियों को तृप्त कराता है) सुरत के समय सुख पहुँचाता है, भोग शक्ति को बढ़ाता है और संसारी (कामी) मनुष्यों के लिये मित्र के समान है ॥ ९ ॥

जलजामृतरसः—

सवक्षीरं शिला धातुर्वङ्गं कुण्डलिसरवकम् । मेहारिबीजसंयुक्तं विदारीजीवनीरसैः ॥ १ ॥
भावयेत्तत्त्रिवारं तु सितोपलसमन्वितम् । जलजामृतविख्यातो रसोऽयं मेहकृच्छ्रनुत् ॥२॥

जलजामृतरस—तवाशीर, शुद्धमैनसिल, वंगभस्म, नागभस्म और श्वेत अपराजिता के बीजों का चूर्ण इनको समान लेकर एकत्र मर्दन कर विदारीकन्द के स्वरस तथा जीवन्ती के स्वरस से पृथक् २ तीन २ बार भावित कर सुखा कर चूर्ण कर श्वेत शर्करा के अनुपान से सेवन करे। यह 'जलजामृत' नामक प्रसिद्ध रस प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

प्रमेहपिटिकानां तु प्राक्कार्यं रक्तमोक्षणम् । पाटनं तु विपक्वानां तासां पाने प्रशस्यते ॥ ३ ॥
क्वाथो व्रणघ्नोऽत्र वस्तिर्मूलैस्तीक्ष्णैर्विरेचनम् । व्रणप्रतिक्रिया सर्वा कार्याऽत्रापि भिषग्वरैः ॥

प्रमेह पिडिका चिकित्सा—प्रमेह पिडिकाओं का प्रथम रक्त मोक्षण कराना चाहिये और जो पिडिकायें पक गयी हों उनका पाटन (चीरा लगाना) आदि कर्म करना चाहिये और उसमें पान करने के लिये व्रणनाशक क्वाथ का प्रयोग, वस्ति कर्म और तीक्ष्ण मूल दन्ती आदि द्रव्यों से विरेचन कराना चाहिये और व्रण रोग में कही हुई सारी क्रिया (चिकित्सा) इस प्रमेह पिटिका में भी श्रेष्ठ वैद्य को करनी चाहिये ॥ ३-४ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी । शालिमुद्गकुलित्थाश्च मेहिनां देहिनां हिताः ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—साँवा, कोदो, वन कोदो, गेहूँ, चना, अरहर, शालिधान का चावल, मूंग, कुलथी ये सब पदार्थ प्रमेह के रोगियों के लिये हितकर है । १ ॥

मद्योष्णा बद्धमूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु । यवान्तस्मा शस्यन्ते मेहेषु च विशेषतः ॥ २ ॥

प्रमेह रोग में जो विशेष कर लाभदायक है क्योंकि वह मेदनाशक, मूत्र को बांधने वाला और सब धातुओं के लिये इसकी प्रशंसा है ॥ २ ॥

तिक्तशाकं पटोलानि जाङ्गलामिषजा रसाः । सैन्धवं मरिचं चैव मेहिनामाहरेद्भिषक् ३ ॥

तिक्त रस वाले शाक, परवर, जाङ्गल जीवों का मांस रस, सेंधा नमक और मरिच इन सब द्रव्यों को वैद्य प्रमेह के रोगियों को आहार के लिये देवे ॥ ३ ॥

सदासनं दिवा निद्रा नवान्नानि दधीनि च । मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम् ॥४॥
सौवीरकं सुरा शुक्तं तैलं क्षारं घृतं गुडम् । अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ५ ॥

सदा आसन पर बैठे रहना, दिन में सोना, नया अन्न का भक्षण करना, दही खाना, मूत्र के वेग को रोकना, धूम्रपान करना, स्वेद कर्म करना, रक्तमोक्षण कराना, सौवीर, सुरा, सूक्त, तैल, क्षार, घृत, गुड़, अम्ल रस वाले पदार्थ, ईख का रस, पिष्ट अन्न और आनूप मांस इन सब पदार्थों को प्रमेह का रोगी त्याग देवे ॥ ४–५ ॥

इति प्रमेहप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ ग्रन्थान्तरे बहुमूत्रमेहनिदानम् ।

कार्श्यं स्वेदोऽङ्गगन्धः करपदरसनानेत्रकर्णोपदेहः
कासः शैथिल्यमङ्गेऽरुचिरपि पिटिकाः कण्ठताल्वोष्ठशोषः ।
दाहः शीतप्रियत्वं धवलिमतनुता श्रान्तता पीतमूत्रं
मूत्रस्था मक्षिकाश्चिरमपि बहुमूत्राख्यरोगे प्रवृद्धे ॥ १ ॥

बहुमूत्र प्रमेह—जिसका बहुमूत्र रोग बढ़कर पुराना हो जाता है उसके शरीर से अधिक गन्ध निकलती है, हाथ, पैर, जिह्वा, नेत्र और कर्ण स्थान में उपदेह (लेप किये हुए के समान) होता है, कास, अङ्गों में शिथिलता, अरुचि और पिटिकायें होती हैं, कण्ठ–तालु और ओठ सूखने लगते हैं, दाह और शीत से प्रेम (शीत की इच्छा) होता है, शरीर का वर्ण श्वेत हो जाता है, शरीर में अधिक थकान (ह्रास) और मूत्र का वर्ण पीला होता है और मूत्र पर मक्खियां बैठती हैं । ये सब लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

वाग्भटः—**स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे शय्यासनस्वप्नसुखाभिलाषः ।**
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गता केशनखातिवृद्धिः ॥ १ ॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो माधुर्यमास्ये करपाददाहः ।
भविष्यतो मेहगणस्य लिङ्गं मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ २ ॥

शरीर से अधिक स्वेद होना, अङ्ग से गन्ध का निकलना, अङ्गों का शिथिल होना, शय्या पर बैठे रहने, सोये रहने आदि सुख की इच्छा होना, हृदय, नेत्र, जीभ, कान इनमें उपदेह शरीर का घन (स्तम्भ) होना, केश तथा नखों का अधिक बढ़ना, शीत से प्रेम (शीत की इच्छा होना), गला तथा तालु का सूखना, मुंह का स्वाद मधुर रहना, हाथ पैरों में दाह होना और मूत्र पर चीटियों का आना ये सब प्रमेहों के होने के लक्षण होते हैं ॥ १–२ ॥

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं मधूपमं स्याद् द्विविधो विचारः ।
संतर्पणाद्वा कफसम्भवः स्यात्क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥ ३ ॥

प्रमेह को मधुर, चिकना तथा मधु के समान देखकर दो प्रकार का विचार करना चाहिये । सन्तर्पण से कफज मेह होता है और दोषों के (कफ-पित्तादि के) क्षीण होने से वातज प्रमेह (मधुमेह) होता है ॥ ३ ॥

सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ।
साध्या न ते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टम् ॥ ४ ॥

साध्यासाध्य विचार—उल्लिखित पूर्वरूपों सहित कफ–पित्त मिश्रित मेह तथा वातज मेह क्रम से साध्य नहीं हैं (असाध्य हैं) । पित्तज मेह याप्य है और यदि मेह अधिक दूषित नहीं हुआ हो तो साध्य भी होते हैं ॥ ४ ॥

अथ बहुमूत्रचिकित्सा ।

त्रिफलावेणुपत्राब्दपाठामधुयुतैः कृतः । कुम्भयोनिरिवाम्भोधिं बहुमूत्रं तु शोषयेत् ॥ १ ॥

बहुमूत्र की चिकित्सा—आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, बांस के पत्ते, नागरमोथा, पुरइनपाढ़ी, समभाग लेकर क्वाथ का शीतल होने पर मधु मिलाकर सेवन करने से इस प्रकार बहुमूत्र सूखता है जिस प्रकार अगस्त्य मुनि के पीने से समुद्र सूख गया था ॥ १ ॥

तारकेश्वररसः—**मृतं सूतं मृतं वङ्गं मृतं लोहाभ्रकं समम् ।**
मर्दयेन्मधुना सार्धं रसोऽयं तारकेश्वरः । माषैकं लेहयेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रापनुत्तये ॥ १ ॥

तारकेश्वर रस – पारदभस्म वा रससिन्दूर, वंगभस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म, समभाग लेकर मर्दन कर मधु के साथ घोटकर रख लेवे । इसमें से एक माषा के प्रमाण की मात्रा से मधु के अनुपान से चाटने से बहुमूत्र रोग को नष्ट करता है । इसका नाम 'तारकेश्वर रस' है ॥ १ ॥

आनन्दभैरववटी—

विषोषणकणाटङ्कहिङ्गुलैः समचूर्णकैः । आनन्दभैरवस्यास्य गुञ्जाऽतीसारमेहनुत् ॥ १ ॥

आनन्द भैरव वटी—शुद्ध मीठा विष, मरिच, पीपरि, शुद्ध टङ्कण, शुद्ध हिंगुल, समान लेकर चूर्ण कर एकत्र मर्दन कर विधिपूर्वक वटी बना इस 'आनन्द भैरव' नामक रस के सेवन करने से अतीसार तथा प्रमेह रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

इति बहुमूत्रप्रमेहप्रकरणं समाप्तम्

अथ मेदोरोगनिदानम् ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः । मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्धते ॥ १ ॥

मेदोरोग निदान—परिश्रम नहीं करने से, दिन में सोने से, कफकारक आहार के सेवन करने से प्रायः करके मधुर अन्न का रस स्नेह से मिलकर मेद को बढ़ाता है ॥ १ ॥

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः । मेदस्तु चीयते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

मेदकी सम्प्राप्ति मेद के बढ़ने के कारण सब धातुओं के मार्ग के आवृत हो जाने से दूसरे धातुओं (रस–रक्तादि) की पुष्टि नहीं होती है केवल मेद ही बढ़ता है और मेद बढ़ने से मनुष्य सब कामों में अशक्त हो जाता है ॥ २ ॥

मेदस्विलक्षणम्—

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः । युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ १ ॥

बढ़े हुए मेद के लक्षणादि—श्वास शीघ्र २ आना, तृषा, मोह, निद्रा अधिक होना, एकाएक श्वास का अवरोध तथा अंग शिथिल होना, क्षुधा लगना, स्वेद अधिक होना, शरीर से दुर्गन्ध निकलना, शक्ति का अल्प होना और मैथुन शक्ति का कम होना ये सब लक्षण मेद के बहुत बढ़ जाने पर उपस्थित हो जाते हैं ॥ १ ॥

मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेऽन्वस्थि तिष्ठति । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ २ ॥

मेद धातु प्रायः करके सब जीवों के उदर और अस्थि में ही स्थित होता है इसलिये मेदस्वियों का (प्रथम) उदर ही बढ़ता है ॥ २ ॥

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्कोष्ठे वायुर्विशेषतः । चरन्सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ३ ॥
तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं काङ्क्षयत्यपि । विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥

मेद के बढ़ने से जठराग्नि की प्रदीप्तता—मेद के बढ़ जाने के कारण सब स्रोतों के आवृत हो जाने से विशेष कर कोष्ठ में चलती हुई वायु अग्नि को तीव्र कर देती है इससे उसका आहार पचकर सूखता रहता है इसलिये आहार किया अन्न शीघ्र पच जाता है और फिर अन्न की इच्छा होती है । इस इच्छा के समय अन्न नहीं मिलने पर दूसरे २ घोर विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥

एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ५ ॥

दुश्चिकित्स्यता—ये दोनों अग्नि और वायु विशेष कर उपद्रव करने वाले होते हैं और ये स्थूल (मेदस्वी) को इस प्रकार दहन करते हैं जिस पकार वन को दावाग्नि ॥ ५ ॥

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥६॥

मेद के अत्यन्त बढ़ जाने से अकस्मात् वायु अत्यन्त कठिन विकारों (रोगों) को करके शीघ्र जीव को नष्ट कर देती है ॥ ६ ॥

स्थूललक्षणम्—

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः । अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ७ ॥

अतिस्थूल के लक्षण—मेद तथा मांस के अधिक बढ़ जाने के कारण जिस मेदस्वी के नितम्ब, उदर और स्तन हिलते रहते हैं और उसे वृद्धि (शरीर की स्थूलता वा मांस वृद्धि) यथायोग्य नहीं होती है तथा यथोचित उत्साह नहीं होता है । ऐसे मनुष्य को 'अतिस्थूल' कहते हैं ॥ ७ ॥

स्थूले स्युर्दुस्तरा रोगा विसर्पाः सभगन्दराः । ज्वरातिसारमेहार्शःश्लीपदापचिकामलाः ॥

अतिदस्थूलता से उत्पन्न रोग—स्थूलता के कारण मनुष्य को विसर्प, भगन्दर, ज्वर, अतिसार, मेह, अर्श, श्लीपद, अपची और कामला आदि भयङ्कररोग हो जाते हैं ॥ ८ ॥

कृशलक्षणम्—

शुष्कस्फिगुदरग्रीवो धमनीजालसन्ततः । त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वा नरः स्मृतः ॥९॥

कृश के लक्षण—जिस मनुष्य के नितम्ब, उदर, गला, सूखे हुए हों, नस सब फैली हुई दिखाई देवे, त्वचा और अस्थियां सूखी हुई हों और पर्व स्थूल हों उसे 'अतिकृश' कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ मेदोरोगचिकित्सा ।

क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः । शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मेदोहृत्क्षौद्रसंयुतम् ॥१॥

मेदरोग की चिकित्सा—आँवरा, हर्रा, बहेड़ा समान लेकर क्वाथ बनाकर शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से मेद का नाश होता है और उष्ण कर शीतल किये जल में मधु मिला कर पान करने से भी मेद का नाश होता है ॥ १ ॥

उष्णं भक्तस्य मण्डं वा पिबेत्कृशतनुर्भवेत् । सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ॥ २ ॥
मधुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः । क्षारं वा तालपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिबेन्नरः ॥
मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥ ३ ॥

भात का गरम २ मांड़ पीने से शरीर कृश होता है अर्थात् मेद नष्ट होता है तथा चाव, जीरा, सोंठि, पीपरि, मरिच, शुद्ध हींग, सोंचरनमक, चित्रकमूल इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर सत्तू में मिलाकर (१६ गुने सत्तू में मिलाकर) मधु के साथ पान करने से मेद

को नष्ट करता है और अग्नि को दीप्त करता है अथवा ताल पत्र के क्षार को शुद्ध हींग के साथ मिलाकर भात के मांड के साथ पान करने से मेद वृद्धि नष्ट होती है ॥ १-३ ॥

हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रचूतत्वचो दाडिमवल्कलं च ।
एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जम्ब्वाः कषायश्च नराधिपानाम् ॥ ४ ॥

हर्रा, लोध, नीम की पत्ती, आम की छाल, अनार की छाल, इनका अङ्गराग (उबटन) विधि पूर्वक बनाकर लगाने से स्त्रियों के वर्ण की सुन्दरता बढ़ती है इसी प्रकार जामुन के क्वाथ से राजाओं की सुन्दरता बढ़ती है ॥ ४ ॥

फलत्रिकं त्रिकटुकं सतैललवणान्वितम् । षण्मासादुपयोगेन कफमेदोनिलापहम् ॥ ५ ॥

फल त्रिकादियोग—आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, सोंठि, पीपरि, मरिच, इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर तेल और नमक के साथ मिलाकर छै मास तक सेवन करने से कफ-मेद और वायु को नष्ट करता है ॥ ५ ॥

गुडूचीभद्रमुस्तानां प्रयोगस्त्रैफलस्तथा । तक्रारिष्टप्रयोगश्च प्रयोगो माक्षिकस्य च ॥ ६ ॥

गुडूच्यादि योग—गुरुचि और नागरमोथा का चूर्ण वा त्रिफला का चूर्ण तक्रारिष्ट अथवा मधु के सेवन करने से मेदरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

त्र्यूषणाद्यं लोहम्—

त्र्यूषणं त्रिफलाचव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम् । बाकुची सैन्धवं चैव सौवर्चलमयोरजः ॥ १ ॥
माषमात्रमतश्चूर्णं लिहेदाज्यमधुप्लुतम् । अतिस्थौल्यमिदं चूर्णं निहन्त्यग्निविवर्धनम् ॥

त्र्यूषणाद्य लोह, सोंठि, पीपरि, मरिच, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, चाव, चित्रकमूल, विड़नमक, उद्भिद् नमक, बाकुची बीज, सेंधानमक, सोंचर नमक और लोहभस्म समान भाग लेकर चूर्ण एकत्र-मर्दन कर एक माषा के प्रमाण की मात्रा से मधु और घृत के साथ मिलाकर चाटने से अत्यन्त स्थूलता को यह चूर्ण नष्ट करता है और अग्नि को बढ़ाता है ॥ १-२ ॥

मेदोघ्नं मेहकुष्ठघ्नं श्लेष्मव्याधिनिबर्हणम् ।
नाऽऽहारे नियमश्चात्र विहारे वा विधीयते । त्र्यूषणाद्यमिदं चूर्णं रसायनमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से मेद, प्रमेह, कुष्ठ तथा कफज व्याधियों का नाश होता है । इसके सेवन के समय आहार-विहार का कोई नियम नहीं है । यह 'त्र्यूषणाद्य चूर्ण' (लौह) नामक ओषधि उत्तम रसायन है ॥ ३ ॥

नवकगुग्गुलुः—व्योषाग्निमुस्तात्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ।
खादन्सर्वाञ्जयेद् व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ १ ॥

नवक गुग्गुलु-सोंठि, पीपरि, मरिच, चित्रकमूल, नागरमोथा, आंवरा, हर्रा, बहेड़ा और वायबिरंग सममाग लेकर चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके समान भाग शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर विधिपूर्वक वटी बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के मेदोज कफज और आमवातज रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लेपोद्वर्तने—

हितो मोचरसो युक्तश्चूर्णैरुदधिफेनजैः । प्रलेपनं निहन्त्याशु देहदौर्गन्ध्यमुत्कटम् ॥ १ ॥

लेप और उद्वर्तन—मोंचरस में समुद्रफेन का चूर्ण मिलाकर लेप करना हितकर है । यह देह की तीव्र दुर्गन्धि को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

वासादलरसालेपाच्छङ्खचूर्णावचूर्णितात् । बिल्वपत्ररसो वाऽपि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ २ ॥

अरूसा के पत्तों के स्वरस में शङ्खभस्म मिलाकर अथवा बेल के पत्तों के रस को शरीर पर लेप करने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ २ ॥

हरीतकीं तु सम्पिष्य गात्रमुद्वर्तयेन्नरः। पश्चात्स्नानं प्रकुर्वीत देहस्वेदप्रशान्तये ॥ ३ ॥

हर्रा को भलीभाँति पीस कर शरीर पर उद्वर्तन (उबटन) करके पश्चात् स्नान करने से देह का स्वेद शमन होता है ॥ ३ ॥

चन्द्रांशुशीतलं लोध्रं शिरीषोशीरकेसरैः। उद्वर्तनं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदोद्गमनिवारणम् ॥ ४ ॥

कपूर, श्वेतचन्दन वा पदुमकाठ, लोध, शिरीष, खस, नागकेसर सम भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर ग्रीष्मऋतु में उद्वर्तन करने से स्वेद का अधिक होना नष्ट होता है ॥ ४ ॥

बब्बूलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिपेषितैः। गात्रमुद्वर्तयेत्पश्चाद्धरीतक्या सुपिष्टया ॥ ५ ॥
भूय उद्वर्तनं कृत्वा पश्चात्स्नानं समाचरेत्। प्रस्वेदान्मुच्यते क्षिप्रं ततस्त्वेवं समाचरेत् ॥६॥

बबूर के पत्तों को विधिपूर्वक जल के साथ पीसकर शरीर पर उद्वर्तन करे, फिर हर्रे को भली-भाँति पीस कर उबटन करे पश्चात् स्नान कर लेवे। इस प्रकार करने से शीघ्र स्वेद का अधिक आना नष्ट होता है ॥ ५-६ ॥

जम्बूदलार्जुनतरुप्रसवैः सकुष्ठैरुद्वर्तनं प्रकुरुते प्रतिवासरं यः।
प्रस्वेदबिन्दुकणिकानिकरानुषङ्गाद् दुर्गन्धिता वपुषि तस्य पदं न धत्ते ॥ ७ ॥

जामुन के पत्ते, अर्जुन वृक्ष के फूल या फल और कूठ को समान लेकर पीस कर प्रतिदिन उबटन करने पर स्वेद आने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः।
प्रियङ्गुलोध्राभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदिष्टः ॥ ८

शिरीष की छाल या पत्ते वा फूल, रोहिसतृण (गुलाब कण्डा), नागकेसर, लोध, समभाग लेकर उबटन बनाकर शरीर पर लेप करने से त्वचा के दोष तथा स्वेद नष्ट होता है। प्रियङ्गु, लोध, हर्रा और चन्दन समान लेकर पीस कर उबटन करने से शरीर की दुर्गन्धि को नष्ट करता है ॥ ८ ॥

बृन्दात्त्रिफलाद्यं तैलम्—

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः। निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ १ ॥
गुडूचीन्द्रयवाकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः। तैलमेभिः समं पक्वं सुरसादिरसप्लुतम् ॥ २ ॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यबस्तिषु योजितम्। स्थूलतालस्यकण्ड्वादीन् जयेत्कफकृतान्गदान् ॥

त्रिफलादि तैल—आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, अतीस, मूर्वा मूल, निशोथ, चित्रकमूल, अरूसा, नीम की छाल, अमलतास, बच, छितवन की छाल, हरदी, दारु हरदी, गुरूचि, इन्द्रजौ, पीपरि, कूठ, सर्सो, सोंठ सम भाग लेकर कल्क कर जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना सुरसादिगण की ओषधियाँ (श्वेत तुलसी, काली तुलसी, गन्धपलास, वन तुलसी, गन्धतृण, बृहद्गन्धतृण, राई, सर्सो, काली वन तुलसी, कासमर्द (कसौंजर), नकछिकनी, बाभीरंग, कायफर, सम्भालू, दोनों (श्वेत तथा नीलपुष्प वाली), चन्द्रसूर, इन्दुर कानी (मूषाकर्णी) बमनेठी, काकनासा, मकोय, महानिम्ब) का स्वरस वा क्वाथ मिलाकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर इस तेल को पान अभ्यङ्ग या गण्डूषधारण, नस्य और बस्ति कर्म करने से स्थौल्य, आलस्य, कण्डु आदि रोग तथा कफज व्याधि नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

महासुगन्धितैलम्—

चन्दनं कुङ्कुमोशीरं प्रियङ्गुरोचनम्। तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ १ ॥
जातीकङ्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च। नालिका नलदं कुष्ठं हरेणुं तगरं प्लवम् ॥ २ ॥
नखं व्याघ्रनखं स्पृक्का बालो दमनकं तथा। प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः ॥ ३ ॥
महासुगन्धिकं ह्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत्। प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ ४ ॥

महासुगन्धि तैल—लालचन्दन, केसर, खस, फूल प्रियगु, कचूर, गोरोचन, शिलारस, अगर कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफर, कङ्कोलमरिच, पूंगी फल, लवंग, नलिका नाम की सुगन्धि वृक्ष की छाल (नरसल), पीली खस, कूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा, नखी, व्याघ्र नखी, स्पृक्का, सुगन्ध बाला, दौना, पुण्डरिया, कचूर, प्रत्येक एक २ शाण की मात्रा से लेकर कल्क कर मूर्च्छित तिल के तेल एक प्रस्थ में मिलावे और पाकार्थ जल चार प्रस्थ मिलाकर तेल सिद्ध करे इस महा सुगन्धित तेल के व्यवहार से स्वेदनिर्गम, मैल, शरीर की दुर्गन्धि, कण्डु और कुष्ठ आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा। युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥
सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम्।
वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते। अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥

इस तेल के शरीर पर मालिश करने से सत्तर वर्ष का वृद्ध भी युवा के समान वीर्यवान् और स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय और सुन्दर देखने के योग्य रूपवान् तथा सौ स्त्रियों के साथ भोग करने की शक्ति वाला हो जाता है, वन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करती है, नपुंसक पुरुष भी पुरुषत्व को प्राप्त होता है, पुत्र नहीं होने वाले को पुत्र होता है और मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है ॥ ५-६ ॥

रसाः।

तत्राऽऽदौ रसभस्मयोगः—

रसभस्मवल्लमात्रं लीढ्वा मधुना पिबेत्तु क्षौद्रम्।
कोष्णाम्बुना समेतं स्थौल्यं मेदःकृतं जयति ॥ १ ॥

रसभस्म का योग—पारद भस्म अथवा रससिन्दूर को एक वल्ल (२ रत्ती) के प्रमाण की मात्रा से लेकर मधु मिलाकर चाटने से और मधु को उष्णोदक में मिलाकर अनुपान करने से मेद से उत्पन्न स्थूलता नष्ट होती है ॥ १ ॥

त्रिमूर्तिरसः—

सूतगन्धमयोभस्म समं संमेल्य भावयेत्। निर्गुण्डीपत्रतोयेन मुसलीकन्दवारिणा ॥ १ ॥
ततः सिद्धममुं माषमात्रं रसमनुत्तमम्। लोध्रक्षौद्रेण चाश्नीयाच्चूर्णमेषां पिचून्मितम् ॥२॥
षट्कटु त्रिफला पञ्चलवणावल्गुजस्य तत्। मेदःशोथाग्निमान्द्यामवातश्लेष्मगदप्रणुत् ॥३॥

त्रिमूर्ति रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म समान लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जलीकर फिर लोहभस्म मिलाकर मर्दन कर मेंउड़ी के पत्ते के स्वरस और मुसलीकन्द के रस से पृथक् २ भावित कर सुखा कर चूर्ण कर इस सिद्ध उत्तम रस को एक माषा लेकर लोध के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर चाट लेवे और ऊपर से पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, मरिच, अवरा, हर्रा, बहेड़ा, पाँचों प्रकार के नमक और बाकुची बीज समान लेकर चूर्ण कर पिचु प्रमाण (एक अक्ष) की मात्रा से खावें तो मेदरोग, शोथ, मन्दाग्नि आमवात और कफज रोग नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

वडवाग्निरसः—

शुद्धं सूतं मृतं ताम्रं तालं बोलं समं समम्। अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं क्षौद्रैर्लेह्यं द्विगुञ्जकम् ॥ १ ॥
वडवाग्निरसो नाम स्थौल्यं तुन्दं नियच्छति। पलं क्षौद्रं पलं तोयमनुपानं पिबेत्सदा ॥ २ ॥

वडवाग्नि रस—शुद्ध पारद, ताम्र भस्म, तालभस्म, शुद्ध गन्धक प्रत्येक सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिलाकर मदार के दूध के साथ दिन भर मर्दन कर सुखाकर रख लेवे। इसको दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से मधु के साथ चाटने से यह

'वडवाग्नि' नामक रस स्थूलता और तोंद को नष्ट करता है। इसके सेवन के पश्चात् एक पल मधु को एक पल जल में मिलाकर अनुपान करना (पीना) चाहिये ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यम्—

पुराणशालयो मुद्गकुलत्थोद्दालकोद्रवाः। लेखना बस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥१॥

पथ्यापथ्य—पुराने शालिधान का चावल, मूंग, कुलथी, वन कोदो, कोदो, लेखन वस्ति, ये सब मेद वाले रोगियों को सदा सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः। हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥२॥

परिश्रम करना, चिन्ता करना, मैथुन करना, मार्ग चलना, मधु सेवन, अधिक जागना, यव तथा सावाँ का भोजन करना ये सब कर्म स्थूलता को अवश्य नष्ट करते हैं ॥ २ ॥

अस्वप्नं च व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च। स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणैवं प्रवर्धयेत् ॥

निद्रा का त्याग, मैथुन, परिश्रम और चिन्ता को स्थूलता नष्ट करने की इच्छा करने वाले को क्रम से बढ़ाना चाहिये ॥ ३ ॥

इति मेदोरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथोदरनिदानम् ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु। अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥१॥

उदररोग निदान—प्रायः करके सभी रोग मन्दाग्नि मूलक होते हैं, उसमें भी उदर रोग तो अवश्य ही मन्दाग्नि मूलक होते हैं। उदर रोग अजीर्ण से, मलिन (दूषित) अन्नों के खाने से तथा मल के संचय से भी होते हैं ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—

अतिसञ्चितदोषाणां पापकर्म च कुर्वताम्। उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ २ ॥

वातादि० दोषों के अत्यन्त दूषित होकर संचित हो जाने से, पाप-कर्मों के करने से और विशेष कर मन्दाग्नि से उदर रोग होते हैं ॥ २ ॥

संप्राप्तिमाह—**रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः ॥**

प्राणाग्न्यपानान्सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ ३ ॥

उदररोग की सम्प्राप्ति—दूषित हुए वातादि दोष संचित होकर स्वेद तथा अम्बुवाही स्रोतों को रोककर प्राणवायु, अग्नि तथा अपानवायु को दूषित करके मनुष्यों को उदररोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ ३ ॥

सुश्रुते—**तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्क्षा वलीविनाशो जठरेऽपि राज्यः।**

जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यां वस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ॥ ४ ॥

जब उदररोग होने को होता है तो उसके पहले बल तथा वर्ण की आकाङ्क्षा होती है, वली (त्रिवली) में दोष आ जाता है, उदर पर रेखा हो जाती है, अन्न के जीर्ण होने का ज्ञान नहीं होता है, दाह-वस्ति स्थान में पीड़ा और पैरों में शोथ होता है ॥ ४ ॥

उदरस्य सामान्यलक्षणमाह—

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता। शोफः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ ५ ॥

दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि।

उदररोग के सामान्य लक्षण—उदर में आध्मान, चलने की शक्ति की कमी, दुर्बलता, मन्दाग्नि, शोथ, अङ्गों में शिथिलता, अधोवायु तथा मल का अवरोध, दाह, तन्द्रा, ये सब लक्षण प्रायः करके सभी उदररोगों में होते हैं ॥ ५ ॥

निर्जलोदरलक्षणम्—

स्वर्ण स्वतोयमरुणमशोफं नातिभारिकम्। गवाक्षितं शिराजालैः सदा गुडगुडायते ॥ ६ ॥

निर्जलोदर के लक्षण—जिस उदररोग के रोगी के उदर में कहीं भी जल नहीं हो, वर्ण शरीर का अरुण हो (शरीर पर रक्त की कालिमा हो), पेट में शोफ कहीं नहीं हो, पेट अधिक भारी नहीं हो, सिराओं का जाल दिखाई पड़ता हो और पेट सदा गुड़गुड़ाता हो उसे 'निर्जलोदर' कहते हैं ॥ ६ ॥

उदराणां संख्या—

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः। संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु ॥ ७ ॥

उदररोग की संख्या—पृथक् २ दोषों से (वातादिक पृथक् २) तीन, समस्त दोषों से (सन्निपात से) प्लीहा से एक, बद्ध से एक, क्षत से एक और जल से एक इस प्रकार आठ तरह के उदररोग होते हैं इनका पृथक् २ लक्षण निम्न है ॥ ७ ॥

वातोदरलक्षणमाह—

तत्र वातोदरे शोफः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु। कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥ ८ ॥

शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधो गुरुता मलसंग्रहः। श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत् ॥९॥

सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम्। आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥

वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ १० ॥

वातोदर के लक्षण—जिस उदररोग में हाथ-पैर नाभि और कुक्षिस्थान में शोथ, कुक्षि, पार्श्व-देश, उदर, कटि, पृष्ठ इन स्थानों में पीड़ा, पूर्वों में छेदने के समान पीड़ा और सूखा कास होता है, शरीर टूटता है, शरीर के अधोभाग (नाभि से नीचे) में गुरुता और मल का अवरोध हो जाता है, त्वचा आदि (त्वचा नख नेत्रादि) श्याम वा अरुण वर्ण के हो जाते हैं और अचानक उदर में वृद्धि और ह्रास होता है (पेट फूलता और कम होता है), उदर में तोद (सूई चुभाने के समान पीड़ा) तथा भेद (फटने के समान) होता है, पतली तथा काली सिराओं से उदर घिरा रहता है, फूले हुए चमड़े की थैली पर ठोंकने के समान उदर ठोंकने से शब्द करता है और उदर में वायु पीड़ा तथा शब्द करता हुआ सर्वत्र विचरता रहता है उसे वातोदर कहते हैं ॥

पैत्तिकमाह—**पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता।**

भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ ११ ॥

पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते। धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १२ ॥

पित्तोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में ज्वर मूर्च्छा, दाह, तृषा मुह का स्वाद कड़ु, भ्रम और अतिसार होता है, त्वचा, नख, नेत्रादि पीत वर्ण के होते हैं और उदर हरे वर्ण का हो जाता है, पेट ताम्र वर्ण तथा पीत वर्ण की सिराओं से घिरा रहता है, स्वेद, उदर में उष्मा तथा दाह होता है, धूयें के गन्ध के समान गन्ध का डकार आता है, स्पर्श करने से उदर मृदु ज्ञात होता है, शीघ्र पाक होता है (अर्थात् जलोदरत्व को प्राप्त हो जाता है) और पीड़ा होती है, उसे पित्त के कोप का रोग (पित्तोदर) कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

श्लैष्मिकमाह—**श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापः श्वयथुगौरवम्।**

निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ १३ ॥

उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत्। चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥

कफोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में अङ्गों में ग्लानि, शून्यता, शोथ गुरुता, निद्रा, उबकाई, अरुचि, श्वास और कास होता है तथा त्वचा, नख, नेत्रादि श्वेतवर्ण के हो जाते हैं, उदर

भीजे कपड़े से लिप्त की भाँति स्निग्ध श्वेत तथा बड़ी रेखाओं से घिरा हुआ रहता है, पेट देर में बढ़ता है तथा स्पर्श करने पर कठिन, शीत, गुरु और स्थिर ज्ञात होता है, उसे कफ के कोप का उदर रोग अर्थात् कफोदर कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

सान्निपातिकमाह—स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ।

यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १५ ॥

तेनाऽऽशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम् ।

तच्छीतवातातपदुर्दिनेषु विशेषतः कुप्यति दह्यते च ।

स चाऽऽतुरो मूर्च्छति संप्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ॥ १६ ॥

दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ।

सन्निपातोदर के लक्षण—दुष्ट प्रकृति की स्त्रियाँ (अथवा दुष्ट पुरुष) अपना नख, रोम, मूत्र मल तथा आर्तव, अन्न तथा पान की वस्तुओं में मिलाकर पति अथवा अन्य किसी पुरुष को खिला देती हैं (पति या अन्य पुरुष को अपने वश में करने के लिये स्त्रियाँ अपना आर्तव आदि खिला कर अपने वस में करती हैं) उससे अथवा शत्रु आदि के द्वारा विष (किसी अन्न-पान के संयोग से दिया हुआ) भक्षण करने से अथवा दूषित जलादि के सेवन से अथवा दूषी विष के सेवन से रक्त शीघ्र दूषित हो जाता है और तीनों दोष कुपित होकर अत्यन्त कठिन त्रिदोषज उदर रोग को करते हैं उससे उदर में शीतकाल, वायु के समय, आतप (धूप) के समय और दुर्दिन (बादल पानी आदि के समय) में विशेष कर रोग का कोप होता है, तथा उदर में दाह होता है और रोगी मूर्च्छित होता रहता है, तथा पाण्डुवर्ण का और दुर्बल हो जाता है, तृषा से मुख सूखा करता है । इसको सन्निपातोदर वा दूष्योदर भी कहते हैं । आगे प्लीहोदर कहेंगे ॥१५-१६॥

प्लीहोदरयकृदुदरलक्षणम्—

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ॥ १७ ॥

प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति ।

तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चाऽऽतुरोऽत्र ॥ १८ ॥

मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ।

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १९ ॥

प्लीहोदर के लक्षण—जो मनुष्य दाहकारक तथा अभिष्यन्दी पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं उनके रक्त और कफ दूषित होकर प्लीहा को बढ़ा देते हैं, इस बढ़े हुए प्लीहा को प्लीहोदर कहते हैं । वह प्लीहा बायें ओर पेट में बढ़ती है जिससे रोगी विशेष कष्ट पाता रहता है और इसमें मन्द २ ज्वर और मन्दाग्नि होती है, यह रोग कफ और पित्त के लक्षणों से युक्त रहता है, रोगी का बल अत्यन्त क्षीण और शरीर पाण्डु हो जाता है ये सब लक्षण प्लीहोदर के हैं । साथ ही दाहिने पार्श्व में यकृत जब दूषित हो जाय तब उसे 'यकृदुदर' कहते हैं ॥ १७-१९ ॥

कफजप्लीहोदरः—

प्लीहा निर्वेदनः श्वेतकठिनः स्थूल एव च । महापरिग्रहः शीतश्लेष्मसंभव इष्यते ॥ २० ॥

कफज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में पीड़ा नहीं होती हो, श्वेत तथा कठिन स्थूल, बहुत बड़ी (प्लीहा) हो, वह शीत तथा कफ से होनेवाली प्लीहा कही जाती है ॥ २० ॥

सज्वरः सपिपासश्च स्वेदनस्तीव्रवेदनः । पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक उच्यते ॥ २१ ॥

पित्तज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में ज्वर तृषा, स्वेद और कठिन पीड़ा होती हो, और विशेष कर शरीर का वर्ण पीला हो उसे 'पैत्तिक प्लीहोदर' कहते हैं ॥ २१ ॥

नित्यमानद्धकोष्ठश्च नित्योदावर्तपीडितः । वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते ॥२२॥

वातिकप्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में नित्य कोष्ठ में आनाह उदावर्त की पीड़ा और वेदना हो उसे 'वातिक प्लीहोदर' कहते हैं ॥ २२ ॥

रक्तजप्लीहोदरः—

क्लमोऽतिदाहः संमोहो वैवर्ण्यं गात्रगौरवम् । रक्तोदरं भ्रमो मूर्च्छा ज्ञेयं रक्तजलक्षणम् ।

त्रयाणामपि रूपाणि प्लीह्न्यसाध्ये भवन्ति हि ॥ २३ ॥

रक्तज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में क्लान्ति, अत्यन्त दाह और मोह हो, वर्ण विवर्ण हो जावे, शरीर भारी रहे, उदर का वर्ण लाल हो, भ्रम और मूर्च्छा हो उसे रक्तज प्लीहोदर कहते हैं । ये तीनों रूप प्लीहा के असाध्य अवस्था में होते हैं ॥ २३ ॥

तत्र दोषसम्बन्धमाह—

उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः । गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ २४ ॥

प्लीहोदर के दोष सम्बन्ध—यदि प्लीहोदर में उदावर्त, पीड़ा और आनाह हो तो वात दोष का सम्बन्ध जानना चाहिये । यदि मोह, तृषा, दाह और ज्वर हो तो पित्तदोष का और यदि गुरुता, अरुचि और कठिनता हो तो कफ दोष का सम्बन्ध जानना चाहिये ॥ २४ ॥

बद्धगुदमाह—यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् ।

सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः सङ्करवच्च नाड्याम् ॥ २५ ॥

निरुध्यते यस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ।

हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २६ ॥

बद्धगुदोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में मनुष्य की आँत अन्न से अथवा उपलेपी पदार्थों (चिकने पदार्थों) से, वा बालों से, पत्थरों से (अन्नादि के साथ जो पेट में चले जाते हैं उससे) आच्छादित हो जाती है उसका मल दोषों सहित धीरे २ संचित होकर आँत की नाड़ियों में जम जाता है, इस कारण उसकी गुदा में पुरीष का अवरोध हो जाता है और बड़ी कठिनता से थोड़ा २ मल निकलता है, मल के अवरोध होने से हृदय और नाभि के मध्य में उदर बढ़ जाता है इसको 'बद्ध गुदोदर' कहते हैं ॥ २५-२६ ॥

एतद्बद्धोदरं तेन स्युर्दाहज्वरतृड्भ्रमाः । कासश्वासोरुसदनं हृन्नाभिशिरस्सु च ॥ २७ ॥

मलसङ्गोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मूढमारुतम् । स्थिरं नीलारुणशिरारोमराजिविराजितम् ।

नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते ॥ २८ ॥

बद्ध गुदोदर में दाह, ज्वर, तृषा, भ्रम, कास, श्वास, ऊरुस्थान में अवसन्नता, हृदय-नाभि-स्थान और सिर में पीड़ा होती है, मल का अवरोध, अरुचि, वमन, उदर में वायु का मूढ़ होकर रहना (वायु का गुम होना), पेट का स्थिर रहना तथा नील एवं अरुणवर्ण की सिराओं और रोम की पंक्तियों से घिरा रहना आदि होता है तथा प्रायः करके नाभि के ऊपर गौ के पूंछ की आकृति का बन जाना ये सब लक्षण होते हैं ॥ २७-२८ ॥

क्षतोदरमाह—शल्यं तथाऽन्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ।

तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ २९ ॥

नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यतेऽतीव विदाह्यते च ।

एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ ३० ॥

क्षतोदर के लक्षण—जिस उदररोग में भोजन किये हुए अन्नादि के साथ काँटे कङ्कड़ आदि जो आँत में प्राप्त होकर टेढ़े-मेढ़े होने से आँतों को भेदन कर देते हैं, जिससे आँतों से जल के

समान स्राव होता है और बारबार गुदा के रास्ते बाहर निकलता रहता है और नाभिस्थान के नीचे उदर बढ़ जाता है, उसमें सूई चुभाने के समान और फटने के समान पीड़ा होती है इसको क्षतोदर अथवा परिस्रावी उदर कहते हैं। अब आगे जलोदर कहेंगे ॥ २९–३० ॥

दकोदरमाह—यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ ३१ ॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथ वापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति।
स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ॥ ३२ ॥
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ ३३ ॥

जलोदर के लक्षण—जिस उदररोग में जो कोई मनुष्य स्नेहपान करके, अनुवासन बस्ति लेकर वमन कर, विरेचन कर अथवा निरूहवस्ति लेकर शीघ्र ही जल पी लेता है उसके जलवाही स्रोत (जल को वहन करने वाली नाड़ियाँ) दूषित हो जाते हैं और उन जलवाही स्रोतों में स्नेह के लिप्त होने से पूर्वरोग (क्षतोदर) के समान (नाभि के नीचे उदर का बढ़ जाना, गुदा से स्राव होना आदि लक्षणों वाला) जलोदररोग हो जाता है जिसमें पेट स्निग्ध, बड़ा और नाभि के चारों ओर उन्नत हो जाता है, अच्छी तरह तना हुआ जल से परिपूर्ण होता है और जिस प्रकार जल चमड़े की थैली (मसक आदि) जल से पूर्ण रहने पर क्षुभित होती है, काँपती है और शब्द करती है उसी प्रकार जलोदर वाले का उदर भी क्षुभित, कम्पित और शब्द युक्त होता रहता है। ये सब जलोदर के लक्षण हैं ॥ ३१–३३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम्। बलिनस्तदजाताम्बु यत्नात्साध्यं नवोत्थितम् ॥

उदररोग के साध्यासाध्यता—प्रायः करके सभी उदररोग उत्पन्न होते ही कष्टसाध्य माने जाते हैं। परन्तु यदि रोगी बलवान हो, पेट में जल नहीं उत्पन्न हुआ हो और रोग नया ही उत्पन्न हुआ हो तो यत्न से साध्य होता है ३४ ॥

अशोफमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम्। सदा गुडगुडायुक्तं शिराजालगवाक्षितम् ॥३५॥
नाभिं विष्टभ्य वायुस्तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति। हृद्वङ्क्षणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः ॥ ३६ ॥
कर्कशं सृजते वातं नातिमन्दे च पावके। लोलस्यापि रसे चाल्पे मूत्रेऽल्पे संहते विशि ॥३७॥
अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः।

जब तक उदर में शोथ नहीं हो, उदर का वर्ण अरुण हो, शब्द करता हो, अधिक भारी नहीं हो, सदा गुड़-गुड़ करता हो, सिराओं से घिरा हुआ हो, नाभि को विष्टब्ध करके वायु वेग करे और नष्ट हो जावे, हृदय, वङ्क्षण, कटिभाग, नाभि और गुदा इन प्रत्येक में शूल हो, पेट से वेगवान् वायु निकले, अग्नि मन्द नहीं हुआ हो, उदर के चंचल होने पर भी रस (जल) का अंश कम हो, मूत्र कम हो और मल रुका हुआ हो, ये लक्षण जिस रोगी को हों उसे अजात उदक समझना चाहिये अर्थात् उसके उदर में जल नहीं आया है यह जानना चाहिये ॥ ३५–३७ ॥

कुक्षेर्वृद्धिश्चातिमात्रं शिरान्तर्धानमेव च। दकपूर्णदृतिक्षोभस्पर्शं जातोदकं भवेत् ॥ ३८ ॥

जिसकी कोख अधिक बढ़ गयी हो, सिरायें पेट पर नहीं दिखाई देवें और पानी से भरे हुए चमड़े की थैली के समान जिसके पेट में क्षोभ होता हो और वैसा ही स्पर्श करने पर भी ज्ञात हो उसे जातोदक रोग समझे अर्थात् उदर में जल आ जाने के ये लक्षण हैं ॥ ३८ ॥

विशेषेणासाध्यत्वमाह—

पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा। प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रमुदरं नृणाम् ॥३९॥

एक पक्ष (१५ दिन) के पश्चात् बद्धगुद (बद्ध गुदोदर) और जिसमें जल आ गया हो ऐसा सभी उदररोग तथा छिद्रान्त (क्षतोदर) उदररोग ये सब प्रायः मनुष्यों के नाश के लिये ही होते हैं ॥

पुनरप्यसाध्यत्वमाह—

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्। बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ ४० ॥

जिस उदर रोगी के आँखों में शोथ और लिंग टेढ़ा हो गया हो, त्वचा (पेट की) आर्द्र और पतली और बल, रक्त, मांस और अग्नि क्षीण हो गये हों, उसे त्याग देना चाहिये ॥ ४० ॥

पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम्। विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

जिसको पार्श्वभङ्ग (दोनों पँसलियों का टेढ़ा होना) अन्न से द्वेष (अरुचि), शोथ और अतिसार हो और विरेचन कराने पर भी जिसका उदर पूर्ण ही रहे उसे त्याग देना चाहिये ॥४१॥

अथोदरचिकित्सा।

तत्राष्टावुदराणि—पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥ १ ॥

उदररोग की गणना—पृथक् २ दोषों से अर्थात् वात-पित्त और कफ से तीन, समस्त अर्थात् त्रिदोष से एक और प्लीहा, बद्ध, क्षत तथा जल होने वाले उदररोग एक २ इस प्रकार ८ प्रकार के उदररोग होते हैं ॥ १ ॥

तत्र पृथग्दोषैर्वातपित्तकफैः संनिपातेनैकम्। प्लीहोदरं बद्धोदरं क्षतोदरं जलोदरमिति सञ्ज्ञा भवन्ति। तेष्वसाध्यं बद्धगुद परिस्रावि च। षडवशिष्टानि कृच्छ्रसाध्यानि। सर्वाण्येव च प्रत्याख्यायोपक्रमेत्। तेष्वाद्यश्चतुर्वर्गो भेषजसाध्यः। उत्तरः शस्त्रसाध्यः। कालप्रकर्षात्सर्वाण्येव। शस्त्रसाध्यानि भवन्ति वर्जयितव्यानि वा, इति सुश्रुतात् ॥

यहाँ पर पृथक् २ दोषों से होने वाले अर्थात् वातोदर, पित्तोदर और कफोदर कहे जाते हैं इस प्रकार ये तीन हुए और सन्निपात से (तीनों दोषों से) होने वाला सन्निपातोदर एक और प्लीहोदर एक, बद्धोदर एक, क्षतोदर एक और जलोदर एक, इन संज्ञाओं वाले आठ प्रकार के उदररोग होते हैं। इन आठों में 'बद्धगुद' और 'परिस्रावी' असाध्य हैं और शेष छ कष्टसाध्य हैं। सब उदर रोगों को असाध्य ही समझकर चिकित्सा करनी चाहिये। इनमें आदि के चार (वातोदर, पित्तोदर, कफोदर और सान्निपातोदर) भेषज से (ओषधि चिकित्सा से) साध्यासाध्य होते हैं और अन्त के चार प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर शस्त्र चिकित्सा से साध्य होते हैं। समय बीत जाने पर (पुराने होने पर) सभी उदररोग शस्त्र से सिद्ध होने वाले हो जाते हैं अथवा त्याज्य (असाध्य) हो जाते हैं ॥

वातोदरचिकित्सामाह—

उपक्रमेद्भिषग्दोषबलकालविशेषवित्। स्थिरादिसर्पिषः पानं स्नेहं स्वेदं विरेचनम् ॥ १ ॥
वेष्टनं वाससा ग्लानौ शाल्वणेनोपनाहनम्। पेया यूषरसान्नं च योज्यं वातोदरे क्रमात् ॥२॥

वातोदर की चिकित्सा—उदर रोग में दोष (वातादि), रोगी तथा रोग का बल और काल आदि का विशेषज्ञ वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् इनका विचार कर चिकित्सा करे। वातोदर में 'स्थिरादि सर्पिष' का पान कराना चाहिये, स्नेहन, स्वेदन, और विरेचन देना चाहिये और क्रम से वातोदर में वस्त्र से उदर को बाँधना चाहिये। शाल्वण स्वेद के द्रव्यों से उपनाह करना चाहिये, तथा पथ्य के लिये पेया, यूष, मांसरस तथा अन्न का व्यवहार करना चाहिये ॥ १–२ ॥

एरण्डतैलादियोगः—एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तं त्रिफलारजो वा।
निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ १ ॥

एरण्ड तैलादि योग—एरण्ड के तेल को दशमूल के बने क्वाथ में मिलाकर पान कराने से

अथवा त्रिफला के समान मिश्रित चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन कराने से अथवा दशमूल के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर पान कराने से वातोदर शोथ और शूल नष्ट होते हैं।

दशमूलादियोगः—

दशमूलकषायेण क्षीरवृत्तिः शिलाजतु। सद्यो वातोदरी क्षीरमौष्ट्रमाजं च केवलम् ॥ १ ॥

दशमूलादियोग—दशमूल के क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत मिलाकर सेवन करने और केवल दूध ही पथ्य खाने से अथवा केवल ऊँट या बकरी के दूध के सेवन करने से शीघ्र वातोदर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—**कुष्ठं दन्ती यवक्षारं व्योषं त्रिलवणं वचाम्।**
आजाजीं दीप्यकं हिङ्गु स्वर्जिकां चव्यचित्रके। शुण्ठीं चोष्णाम्भसा पीत्वा वातोदररुजापहाम्॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूठ, दन्तीमूल, यवाखार, सोंठि, पीपरि, मरिच, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विडनमक, वच, जीरा, अजवाइन, शुद्ध हींग, सज्जी, चव्य, चित्रकमूल और सोंठि समभाग का चूर्ण उष्णोदक के अनुपान से सेवन कराने से वातोदर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

वृन्दात्सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारो यवानामजमोदभागः।
सपिप्पलीचित्रकश्रृङ्गवेरं हिङ्गु विडङ्गं च समानि कुर्यात् ॥ १ ॥
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पूर्वं कवलान्प्रशस्तान्।
वातोदरं गुल्ममजीर्णमुक्तं वातप्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम् ॥ २ ॥
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरं चापि निहन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

सामुद्रादि चूर्ण—सामुद्र नमक, सोंचर नमक, सेंधा नमक, यवाखार, अजमोदा, पीपरि, चित्रक मूल, सोंठि, शुद्ध हींग और वायविडंग समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर घृत में मिलाकर भोजन के पूर्व प्रशस्त (उचित) मात्रा से खावे तो इससे वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वात का प्रकोप, दुष्ट ग्रहणी रोग, दुष्ट अर्श (कुपित अर्श), पाण्डु रोग और भगन्दर ये सब रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १–३ ॥

दशमूलाद्यं घृतम्—

दशमूलीकषायेण रास्नानागरदारुभिः। पुनर्नवाभ्यां च घृतं सिद्धं वातोदरापहम् ॥ १ ॥

दशमूलादि घृत—दशमूल का क्वाथ ४ प्रस्थ, मूर्च्छित गोघृत १ प्रस्थ, रास्ना, सोंठि, देवदारु और दोनों पुनर्नवा (श्वेत तथा रक्त) इनके समान मिश्रित कल्क $\frac{1}{4}$ प्रस्थ को लेकर एकत्र कर घृत सिद्ध कर सेवन करने से वातोदर नष्ट होता है ॥ १ ॥

पित्तोदरम्—

पित्तोदरे च बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्। पयसा त्रिवृताकल्कैरेरण्डतैलेन वा ॥ १ ॥
सातलात्रायमाणाभ्यां श्रृतेनाऽऽरग्वधेन च। घृतं पित्तोदरे पेयं मधुरौषधसाधितम् ॥ २ ॥

पित्तोदर की चिकित्सा—पित्तोदर में यदि रोगी बलवान हो तो प्रथम उसे विरेचन देना चाहिये। इसके बाद १–दूध के साथ त्रिविताकल्क के अथवा २–एरण्ड के फलों के अथवा ३–सातला (स्नुही विशेष) त्रायमाणा और अमलतास फल के अथवा ४–मधुर गण की ओषधियों के कल्क के साथ विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर पित्तोदर नष्ट होता है। (कोई २ आचार्य इन चारो योगों को दो ही मानते हैं) ॥ १–२ ॥

स्याचित् त्रिफलासिद्धं सर्पिष्पानं विशुद्धये।
पृश्निपर्णीबलाव्याघ्रीलाक्षानागरसाधितम्। क्षीरं पित्तोदरं हन्ति जठरं कतिभिर्दिनैः ॥३॥

निशोथ और अवरा, हर्रा, बहेड़ा, इनके कल्क के साथ सिद्ध किया घृत सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर लाभ होता है तथा पृष्ठपर्णी, बरियारा, छोटी कटेरी, लाख और सोंठि इन ओषधियों के साथ क्षीर पाक विधि से सिद्ध किया दूध सेवन करने से पित्तोदर तथा कतिपय पैत्तिक उदर के उपद्रवों को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

श्लेष्मोदरम्—

श्लेष्मोदरिणं तु पिप्पल्यादिसिद्धेन सर्पिषा स्नेहं नीत्वा स्नुहीक्षीरानुलोम्यत्रिकटुकमूत्रतैलमुस्कादिक्वाथेनाऽऽस्थापयेदनुवासयेच्च यवकिट्टसर्षपामलकबीजैश्चोपनाहयेदुदरम्। भोजयेच्चैनं त्रिकटुकप्रगाढेन कुलित्थयूषेण पयसा वा स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम्।

कफोदर की चिकित्सा—कफोदर रोग वाले को पिप्पल्यादि गण (पीपरि, पिपरामूल, मरिच, गजपीपरि, सोंठि, चित्रक मूल, रेणुका, रास्ना, अजमोदा, सर्सों, हींग, बमनेठी, पुरइन पाढ़ी, इन्द्रजौ, जीरा, बकाइन, मूर्वामूल, अतीस, कुटकी और वायविडंग) की ओषधियों के क्वाथ के साथ विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर पान कराकर स्नेहन कर, थूहर के दूध के साथ सिद्ध किये घृत से अनुलोमन कर, सोंठि, पीपरि, मरिच, गोमूत्र और आस्थापन वर्ग में कहे हुए मुस्तादि वर्ग के क्वाथ के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किये हुए तेल से स्थापन बस्ति और अनुवासन बस्ति देवे। पश्चात् यव, किट्ट, सर्सों, मूली बीज इनको पीसकर पेट के ऊपर उपनाह देवे। कुलथी के यूष में सोंठि, पीपरि और मरिच का चूर्ण प्रचुर प्रमाण में मिलाकर भोजन करावे (पथ्य देवे) अथवा दूध पिलावे और पूर्ण स्वेद देवे।

व्योषयुक्तं कुलित्थाम्बु पयो वा भोजने हितम्।
गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्कृतिभिस्तथा। सक्षीरतैलपानैश्च शमयेत्तत्कफोदरम् ॥ १ ॥

भोजन के लिये सोंठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण मिला हुआ कुलथी का यूष अथवा दूध देना हितकर है और गोमूत्र तथा अरिष्ट पिलाने से, चूर्ण सेवन से, लौह भस्म मिश्रित औषध देने से और दूध के साथ तेल मिलाकर पान कराने से कफोदर रोग शमन होता है ॥ १ ॥

दूष्योदरं त्रिलिङ्गमुदरं च—

सन्निपातोदरे कार्यं एष एव क्रियाविधिः। हरीतकीमथाकल्कभावितं मूत्रमम्बुना ॥ १ ॥
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत्। सप्तलाशङ्खिनीसिद्धं घृतं चात्र विशोधनम् ॥ २ ॥

दूष्योदर, सन्निपातोदर की चिकित्सा—सन्निपातोदर में यही क्रिया करनी चाहिये। हर्रे का सेवन करना चाहिये और हर्रे के कल्क से भावित गोमूत्र को जल के साथ सेवन करने से (पान करने से) सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, प्रमेह, अर्श कृमि तथा गुल्म नष्ट होते हैं। और सप्तला (स्नुही विशेष) और शंखिनी (यवतिक्ता अथवा श्वेत अपराजिता) इनके कल्क से विधिवत् सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से विशोधन होता है ॥ १–२ ॥

दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरी पिबेत्। नागरत्रिफलाप्रस्थं घृतं तैलं तथाऽऽढकम् ॥ ३ ॥
मस्तुना साधयित्वा तु पिबेत्सर्वोदरापहम्। कफमारुतसम्भूतं गुल्मं चैव प्रशाम्यति ॥ ४ ॥

दन्ती के फल और द्रवन्ती के फल का तेल दूष्योदर में पीने से लाभ होता है। तथा सोंठि और त्रिफला का कल्क एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत ४ प्रस्थ, मूर्च्छित तिल का तेल ४ प्रस्थ और घृत तेल से चौगुना दही का पानी मिलाकर विधिपूर्वक (स्नेह पाक की विधि से) स्नेह सिद्धकर पान करने से सब प्रकार के उदर रोग नष्ट होते हैं और कफ तथा वात से उत्पन्न होने वाले गुल्म को भी यह स्नेह नष्ट करता है ॥ ३–४ ॥

अथ प्लीहोदरयकृदुदरयोश्चिकित्सा।

स्नेहस्वेदप्रकारादि विधेयं प्लीहरोगिणाम्। वामबाहौ च मोक्तव्या कूर्पराभ्यन्तरे शिरा ॥१॥

प्लीहोदर तथा यकृदुदर की चिकित्सा—प्लीहा के रोगियों को स्नेहन तथा स्वेदन देना चाहिये और बांये बांह की केहुनी के भीतर की सिरा को भेदन कर मोक्षण करा देना चाहिये। इससे प्लीहा नष्ट होती है ॥ १ ॥

विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे।
मणिबन्धे समुत्पन्नवामाङ्गुष्ठसमीरिताम्। दहेच्छिरां शरेणाऽऽशु वैद्यः प्लीहप्रशान्तये ॥२॥

यदि यकृत् बढ़ा हो (यकृत् के रोगी का) तो दाहिने बाँह की केहुनी के भीतर की सिरा को भेदन कराकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये और बायें मणिबन्ध पर बांये अँगूठे के पास से आई हुई सिरा को 'शर' नामक यन्त्र से जला देने से प्लीहा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

शाल्मलिपुष्पक्काथः—

सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्युषितं नरः। राजिकाचूर्णसंयुक्तं दद्यात्प्लीहोपशान्तये ॥१॥

शाल्मलिपुष्प क्वाथ—सेमर के फूल को स्वेदित कर जल सहित रात भर पड़ा रहने देवे, प्रातः पर्युषित होने पर उसमें राई के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से प्लीहा नष्ट होती है ॥ १ ॥

शरपुङ्खामूल कल्कः—शरपुङ्खामूलकल्कः पीतस्तक्रेण नाशयत्यचिरात्।
बहुतरकालसमुत्थं प्लीहानं रूढमवगाढम् ॥ १ ॥

शरपुङ्खामूलकल्क—सरफोंका की जड़ को लेकर कल्ककर तक्र के साथ पान करने से बहुत पुरानी तथा कठिन प्लीहा को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

लवणादितक्रम्—

लवणं रजनी राजी प्रत्येकं पलपञ्चकम्। चूर्णितं निक्षिपेद्भाण्डे शततक्रपलान्विते ॥ १ ॥
त्रिदिनं मुद्रितं रक्षेत्पश्चात्पञ्चपलं तदा। प्लीहानं नाशयेत्पीत्वा त्रिसप्ताहं न संशयः ॥ २ ॥

लवणादि तक्र सेंधानमक, हरदी, राई इनमें प्रत्येक को पाँच-पाँच पल लेकर चूर्ण कर सौ पल तक्र में मिला कर एक मिट्टी के पात्र में रख कर मुखमुद्रण कर तीन दिन तक पड़ा रहने देवे पश्चात् पांच पल के प्रमाण की मात्रा से ३ सप्ताह तक (२१ दिन तक) पान करने से प्लीहा निश्चित ही नष्ट होती है ॥ १-२ ॥

शङ्खनाभिचूर्णम्—सुपक्वजम्बीररसेन शङ्खनाभीरजः पीतमवश्यमेव।
कर्षप्रमाणं शमयेदवश्यं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ १ ॥

शङ्खनाभिचूर्ण—भलीभाँति पके हुए जमीरी नीबू के रस के साथ शङ्खनाभिभस्म, मिला कर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से पान करने से कछुये के समान बढ़ी हुई प्लीहा भी शीघ्र अवश्य नष्ट होती है ॥ १ ॥

यवान्यादिचूर्णम्—यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थदन्तीमगधोद्भवानाम्।
प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥

यवान्यादिचूर्ण—जवाइन, चित्रकमूल, यवाखार, पिपरामूल, दन्तीमूल, पीपरि समभाग लेकर चूर्ण बनाकर गरम जल, दही के पानी, सुरा या आसव के अनुपान से सेवन करने से यह (चूर्ण) प्लीहारोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—

कुष्ठं वचा शृङ्गबेरं चित्रकं कौटजं फलम्। पाठा चैवाजमोदा च पिप्पल्यः समचूर्णिताः ॥१॥
ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा। प्लीहोदरमुदावर्तं सर्वमेतेन शाम्यति ॥ २ ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूठ, वच, सोंठि, चित्रकमूल, इन्द्रजौ, पुरइनपाढ़ी, अजमोदा और पीपरि सम भाग लेकर चूर्णकर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से प्लीहोदर (प्लीहारोग) और उदावर्तरोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

लघुहिङ्ग्वादि चूर्णम्—

हिङ्गु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम्। मातुलुङ्गरसेनैव प्लीहशूलहरं परम् ॥ १ ॥

लघुहिंग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, सोंठि, मरिच, पीपरि, कूठ, यवाखार और सेंधानमक समभाग लेकर चूर्णकर बिजौरे नीबू के साथ सेवन करने से प्लीहा और शूल को नष्ट करने में परम श्रेष्ठ है।

वायुः प्लीहानमुद्धृत्य कुपितो यस्य तिष्ठति। शूलैः परितुदन्पार्श्वे प्लीहा तस्य प्रवर्धते ॥

कुपित हुई वायु प्लीहा को उठाकर जब रहती है तब शूल करती हैं और दोनों पार्श्वों में सूई चुभाने के समान पीड़ा करने लगती है। इस अवस्था में प्लीहा बढ़ जाती है ॥ २ ॥

सिन्ध्वादिचूर्णम्—सिन्धुमगधाग्निचूर्णं शिग्रुशिफाजाजिकासमं पीतम्।
प्रबलमपि योगराजः प्लीहानं नाशयत्याशु ॥ १ ॥

सिन्ध्वादि चूर्ण—सेंधानमक, पीपरि, चित्रकमूल, सहिजन की जड़, जीरा सम भाग लेकर चूर्ण कर जल से सेवन करने से यह योगराज प्रबल प्लीहा को भी शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

विडङ्गादिचूर्णम्—विडङ्गानि यवानी च चित्रकं चेति तत्समम्।
द्विगुणं देवदारुं च नागरं सपुनर्नवम् ॥ १ ॥
त्रिवृद्भागाश्च चत्वारस्तत्सर्वं कल्कपेषितम्। क्षीरेणोष्णेन पातव्यं श्रेष्ठं प्लीहविनाशनम् ॥२॥

विडङ्गादि चूर्ण—बायबिडंग, जवाइन, चित्रक मूल, समान (१-१) भाग और देवदारु, सोंठि और पुनर्नवा इनसे द्विगुण अर्थात् दो २ भाग, निशोथ ४ भाग लेकर कल्क कर उष्ण दूध के अनुपान से पान करने से यह प्लीहा को नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ १-२ ॥

अथ वैतानि चूर्णानि गवां मूत्रेण पाययेत्। उदरीभूतमप्येवं प्लीहानं सम्प्रणाशयेत् ॥ ३ ॥

अथवा इसी चूर्ण को गोमूत्र के अनुपान से पान करने पर सम्पूर्ण उदर में व्याप्त प्लीहा यदि हो तो भी वह नष्ट होती है ॥ ३ ॥

वज्रक्षारः—

सौवर्चलं यवक्षारं सामुद्रं काचसैन्धवम्। टङ्कणं स्वर्जिकाक्षारं तुल्यमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १ ॥
अर्कदुग्धैः स्नुहीदुग्धैर्भावयेदातपे त्र्यहम्। ऊर्ध्वाधस्थैः क्रमात्तस्य तत्तुल्यैरर्कपल्लवैः ॥ २ ॥
भाण्डे संस्थाप्य मृल्लिप्ते रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्। स्वाङ्गशीतं तु सञ्चूर्ण्य चूर्णमेषां तु मेलयेत् ॥
त्र्यूषणं च विडङ्गं च राजिकां त्रिफलामपि। चव्यं च हिङ्गुसम्भृष्टं तक्रेणाद्याद्यथाबलम् ॥४॥
शोथं गुल्मं तथाऽष्ठीलां मन्दाग्निमरुचिं तथा। प्लीहानं यकृदाख्याख्यमुदरं च विशेषतः ॥५॥

वज्रक्षार—सोंचर नमक, यवाखार, सामुद्र नमक, काच नमक (कचलोन), सेंधा नमक, शुद्ध टङ्कण, सज्जीखार, सम भाग (एक २ भाग) लेकर चूर्ण कर मदार के दूध और सेंहुड़ के दूध के साथ तीन २ दिन तक आतप (धूप) में भावित कर सुखा कर चूर्ण कर जितना हो उसके बराबर मदार के पत्तों को लेकर आधा नीचे और आधा ऊपर करके और मध्य में भावित ओषधि को रख कर शराव सम्पुट में रखकर ऊपर मिट्टी द्वारा मुख मुद्रा कर के विधिपूर्वक गजपुट में रखकर पाक करे स्वांग शीत होने पर निकाल सबको एकत्रित चूर्ण कर उसमें सोंठि, पीपरि, मरिच, बायबिडंग, राई, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, चाव और घृत में भुनी हुई शुद्ध हींग के समान मिलित चूर्ण को उपर्युक्त पुटपाक औषध में मिलाकर बल के अनुसार प्रमाण की मात्रा में तक्र के अनुपान से सेवन करने से, यह 'वज्र क्षार' नामक चूर्ण उदर रोगों को नष्ट करता है और शोथ, गुल्म, अष्ठीला, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा और विशेष कर यकृदाल्युदर रोग को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

वृन्दाच्छुक्तिकाक्षारादियोगः—

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः।

पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ १ ॥

शुक्ति का क्षारादि योग—समुद्र की सीप का क्षार (भस्म) अथवा पीपरि के चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से प्लीहा शमन होती है ॥ १ ॥

क्षारादियोगः—क्षारं वा बिडकृष्णाभ्यां पूतिकस्याम्बुनि शृतम् ।
यकृत्प्लीहप्रशान्त्यर्थं पिबेत्प्रातर्यथाबलम् ॥ १ ॥

क्षारादि योग—यवाखार, विड नमक और पीपरि के समान भाग चूर्ण को पूतिकरंज के स्वरस को कुछ गरम कर उसके अनुपान से बलानुसार मात्रा से प्रातः सेवन करने से यकृत और प्लीहा रोग शमन होता है ॥ १ ॥

सौभाञ्जनादियोगः—

सौभाञ्जनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम् । पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत्॥ १ ॥

सौभाञ्जनादि योग—सहिजन की छाल के क्वाथ में सेंधा नमक, चित्रक मूल और पीपरि का चूर्ण मिलाकर अथवा पलास के क्षार के साथ यवाखार मिलाकर प्रयोग करने से प्लीहा शमन होती है ॥ १ ॥

लशुनादियोगः—

लशुनं पिप्पलीमूलमभयां चैव भक्षयेत् । पिबेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगविमुक्तये ॥ १ ॥

लशुनादि योग—लहशुन, पिपरामूल और हर्रा के सम भाग चूर्ण खाकर ऊपर से गोमूत्र का अनुपान करने से प्लीहा रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

रोहीतकादिकल्कः—

रोहीतकाभयाकल्कं भावितं मूत्रमम्बुना । पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥ १ ॥

रोहितकादि कल्क—रोहित तृण (गुलावकड़ा) और हर्रा समान ले कल्क कर गोमूत्र से भावित कर जल के अनुपान से पीने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, मेह, अर्श, कृमि और गुल्म रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्रवन्तीनागवटी—

तिलैरण्डद्रवन्तीनां क्षारो भल्लातकं कणा । एषां भागं समं कृत्वा तत्तुल्यं तु गुडं मतम्॥१॥
खादेदग्निबलं ज्ञात्वा पावकस्य विवृद्धये । जयेत्प्लीहानमत्युग्रं यकृद् गुल्मं तथैव च ॥ २ ॥

द्रवन्ती नागवटी—तिल का क्षार, एरण्ड का क्षार, द्रवन्ती का क्षार शुद्ध भिलावा और पीपरि एक २ भाग लेकर एकत्र कर जितना हो उसके समान पुराना गुड़ मिलाकर वटी बनाकर अग्नि-बल के अनुसार सेवन करने से जठराग्नि की वृद्धि होती है और अति उग्र प्लीहा को तथा यकृत् और गुल्म रोग को नष्ट करती है ॥ १-२ ॥

शिग्रुकाथः—

शोफं प्लीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः । अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्काथः ससैन्धवः ॥१॥

शिग्रु क्वाथ—सहिजन की छाल के क्वाथ में पीपरि, मरिच, अम्लवेत और सेंधा नमक के समान मिलित चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से शोथ और प्लीहोदर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

क्षारभावितपिप्पली—

पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता । गुल्मप्लीहार्तिशमनी वह्निदीप्तिकरी मता ॥ १ ॥

क्षार भावित पिप्पली—पलास के क्षार के जल से पीपरि को भावित कर सेवन करने से गुल्म तथा प्लीहा की पीड़ा को शमन करती है और अग्नि दीप्त करती है ॥ १ ॥

अग्निमुखं लवणम्—

चित्रकत्रिवृतादन्तीत्रिफलारुचकैः समैः । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु सैन्धवम् ॥

भावयित्वा स्नुहीक्षीरैः स्नुक्काण्डे प्रक्षिपेत्ततः । मृत्पङ्केनानुलिप्याथ प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥२॥
सुदग्धं च ततो ज्ञात्वा शनैर्वैद्यः समुद्धरेत् ।
तक्रेण पीतं तच्चूर्णं यकृत्प्लीहोदरापहम् । एतदग्निमुखं नाम्ना लवणं वह्निवर्धनम् ॥ ३ ॥

अग्निमुख लवण—चित्रक मूल, निशोथ, दन्ती मूल, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, रुचक नमक, सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके बराबर सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर सेंहुड़ के दूध से भावित कर सुखा कर चूर्ण कर सेंहुड़ लकड़ी के बीच के गूदे को निकाल कर उसी में इस चूर्ण को भर कर मुखमुद्रा कपर मिट्टी कर आग में पाक करे। जब भली भाँति पाक हो जावे तब वैद्य उसे धीरे से निकाल कर सेंहुड सहित सम्पूर्ण को चूर्ण कर तक्र के अनुपान से पान करावे तो यकृत और प्लीहोदर नष्ट होते हैं। यह 'अग्निमुख' नाम का लवण अग्निवर्धक है ॥ १-३ ॥

चित्रकाद्यं घृतम्—

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् । आरनालं तु द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १ ॥
पञ्चकोलकतालीसं क्षारौ च पटुपञ्चकम् । यवान्यौ द्वे च जरणे मरीचं चाक्षसंमितम् ॥ २ ॥
एतैर्युक्तस्था घृतं सिद्धं मात्रया च पिबेत्प्रगे । प्लीहशोफोदरार्शोघ्नं विशेषादग्निदीपनम् ॥३॥

चित्रकाद्य घृत—चित्रक मूल का क्वाथ एक तुला (१०० पल) और मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ, कांजी दो प्रस्थ, दही का पानी वा तक्र चार प्रस्थ लेकर उसमें पीपरि, पिपरामूल, चाब, चित्रकमूल, सोंठि, तालीस पत्र, यवाखार, सज्जी खार, पांचो नमक पृथक् २ अजवाइन, अजमोदा, जीरा और कृष्ण जीरा तथा मरिच प्रत्येक एक २ कर्ष पीसकर कल्क बना ले और यथाविधि इसको घृत में मिलाकर घृत सिद्ध कर, यथा योग्य मात्रा से प्रातः सेवन करने से प्लीहा, शोथ, उदर रोग और अर्श नष्ट होते हैं। विशेष कर यह घृत अग्नि दीपक है ॥ १-३ ॥

महारोहितकं घृतम्—

रोहितकात्पलशतं संक्षुद्य बदराढकम् । साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥
घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरं चतुर्गुणम् । तस्मिन्द्रव्याणि सर्वाणि प्रदद्यात्कार्षिकाणि च ॥
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यवानीं तुम्बुरुं बिडम् । विडङ्गं चित्रकं चैव हपुषां चविकं वचाम् ॥३॥
अजाजीं कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च । पुनर्नवां विशालां च यवक्षारं सपौष्करम् ॥ ४ ॥
एतैर्घृतं विपक्वं तु निदध्याद्दृढभाजने । पाययेच्च पलं मात्रां रसयूषपयोम्बुभिः ॥ ५ ॥
यकृत्प्लीहोदरं शूलमग्निमांद्यं च नाशयेत् । कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं कटिशूलमरोचकम् ॥ ६ ॥
विबन्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम् ।
छर्द्यतीसारशमनं तन्द्राज्वरनिवारणम् । महारोहितकं नाम्ना प्लीहघ्नं तु विशेषतः ॥ ७ ॥

महारोहितक घृत—रोहितक (रुहेड़ा) की छाल सौ पल, बैर एक आढ़क (४ प्रस्थ) लेकर दोनों को कूट कर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर, उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और बकरी का दूध ४ प्रस्थ मिलावे और उसमें नीचे लिखी सोंठ, पीपरि, मरिच, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, शुद्ध हींग, जवाइन, तेजबल के फल, विडनमक, बायबिडंग, चित्रकमूल, हाऊबेर, चव्य, वच, जीरा, काला नमक, अनारदाना, देवदारु, पुनर्नवा, माहरि, यवाखार और पुष्करमूल इन सब औषधियों को पृथक्-पृथक् एक २ कर्ष लेकर कल्ककर उपर्युक्त घृतादि में मिलाकर घृत सिद्ध कर पात्र में रख लेवे। इस घृत को एक पल के प्रमाण की मात्रा में मांस रस, यूष, दूध और जल इनमें से किसी एक के अनुपान से सेवन करने से यकृत, प्लीहोदर, शूल, मन्दाग्नि, ये सब रोग नष्ट होते हैं और कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, अरुचि, विबन्धशूल (मलावरोध से होने वाला शूल), पाण्डुरोग, कामला, वमन, अतीसार, तन्द्रा और ज्वर को भी

नष्ट करता है। यह 'महारोहितक' नाम का घृत विशेष कर प्लीहारोग को नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

यकृदुदरचिकित्सा—प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृतः संप्रकल्पयेत् ।
कार्यं च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम् ॥ १ ॥

यकृत उदर-चिकित्सा—प्लीहारोग में कही हुई सब चिकित्सा यकृत् रोग में करनी चाहिये और दाहिनी भुजा से रक्तमोक्षण कराना चाहिये। (दाहिनी भुजा की केहुनी के मध्य की सिरा को भेदन कर रक्त निकलवाना चाहिये) ॥ १ ॥

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरं चतुर्गुणम् । पक्त्वा पिबेद्यथावह्नि यकृद्दाल्युदरापहम् ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि घृत—पीपरि का कल्क और उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना गाय का दूध मिलाकर घृत सिद्ध कर अग्निबल के अनुसार की मात्रा से पान करने से यह घृत यकृद्दाल्युदर को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अथ बद्धगुदोदरप्रतीकारः ।

स्विन्ने बद्धोदरे योज्यो बस्तिस्तीक्ष्णैस्तु भेषजैः । सतैललवणैश्चापि निरूहश्चानुवासनम् ॥१॥

बद्ध गुदोदर चिकित्सा—बद्ध गुदोदर में प्रथम स्वेद देकर पुनः तीक्ष्ण ओषधियों से बनी बस्ति देनी चाहिये तथा तेल और नमक मिली हुई ओषधियों द्वारा निरूहबस्ति तथा अनुवासन बस्ति देनी चाहिये ॥ १ ॥

उदावर्तहरं सर्वं प्रकर्तव्यं चिकित्सितम् । वर्तयो विविधाश्चात्र पायौ शस्ताः प्रकीर्तिताः ॥२॥

उदावर्त को नष्ट करने वाली सब चिकित्सायें करनी चाहिये और अनेक प्रकार की उपयुक्त बत्तियों को गुदा में देनी चाहिये ॥ २ ॥

तीक्ष्णैर्विरेचनं चात्र शस्यते तु विशेषतः । वातहन्ता विधिः सर्वो विधातव्यो विजानता ॥

इस बद्धगुदोदर में विशेष कर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये और वातनाशक सभी विधियों को करनी चाहिये ॥ ३ ॥

क्षतोदरमुदकोदरं च—छिद्रान्त्रबद्धसंज्ञेषु जठरेषु प्रयोगवित् ।
लब्धानुज्ञो भिषक्कुर्यात्पाटनं व्यधनक्रियाम् ॥ १ ॥

क्षतोदर और जलोदर चिकित्सा—छिद्रान्त्र (क्षतोदर) और बद्धगुदोदर में प्रयोग करने में चतुर वैद्य राजकीय आज्ञा को लेकर पाटन (आपरेशन) और व्यधन (चीर-फार) करे ॥१॥

तथा जातोदकं सर्वमुदरं व्यधयेद्भिषक् । ज्ञातींश्च सुहृदो दारान्ब्राह्मणान्नृपतिं गुरुम् ॥२॥
अनुज्ञाप्य भिषग्वर्यो विदध्यात्संशयं ध्रुवम् । सुवेष्टितं त्वधो नाभेर्वामतश्चतुरङ्गुलात् ॥३॥
अङ्गुल्युदरमात्रं तु व्रीहिवक्त्रेण भेदयेत् । नाडीमुभयतो द्वारां संयोज्यापहरेज्जलम् ॥ ४ ॥

सब प्रकार के जलोदर में वैद्य रोगी के पेट को वेध कर जल निकाले। उस समय रोगी के जाति, मित्र, स्त्री, ब्राह्मण, राजा और गुरु की आज्ञा ले लेवें और उनसे यह स्पष्ट कह देवे कि प्राण का इसमें अवश्य संशय है। फिर नाभिस्थान के नीचे भलीभाँति वस्त्र से वेष्टित कर नाभि के बायें भाग में चार अङ्गुल पर अङ्गुली के मध्यभाग तक की गहराई के प्रमाण से व्रीहि-मुख शस्त्र से भेदन कर उसमें दोनों ओर जिस नाड़ी (नली) का मुंह खुला हुआ हो ऐसी नली डालकर उसके द्वारा जल को निकाले ॥ १-४ ॥

न चैकस्मिन्दिने सर्वं दोषं त्वपहरेत्तथा । कासश्वासौ ज्वरस्तृष्णा गात्रभङ्गश्च वेपथुः ५ ॥
अतिसारश्च सुतरां पूर्यते जठरं ततः । तृतीयपञ्चमाद्येषु दिवसेष्वल्पशः पुनः ॥ ६ ॥
स्रावयेदुदकं तैललवणाभ्यां दहेद् व्रणम् । बध्नीयाद्विषतो दोषे रक्तं प्राक्प्रतिपूर्य च ॥ ७ ॥
संवेष्टयेद्गाढतरं कौशेयादिकचर्मणा । जलोदरेऽम्बु विस्राव्यं जातं जातं विरेचनैः ॥ ८ ॥

एक ही दिन में सम्पूर्ण दोषों को (सम्पूर्ण जल को) नहीं निकाल देवे क्योंकि एक ही दिन में सम्पूर्ण जल निकाल देने से कास, श्वास, ज्वर, तृष्णा, गात्रभङ्ग, कम्पन और अतीसार रोग हो जाते हैं और उदर फिर जल से पूर्ण हो जाता है। इसलिये तीसरे, पाँचवें, सातवें और नवें दिन यथा क्रम से अल्प अल्प निकालना चाहिये और उस छेदे हुए व्रण को तेल और नमक मिलाकर लिप्त कर देवे और व्रण को जला देवे (दाग देवे)। यदि विष दोष से जलोदर हुआ हो तो प्रथम रक्त का प्रतिपूरण करना चाहिये तथा कौशेय (रेशमी) वस्त्र अथवा भेड़, बकरी आदि के चर्म से भलीभाँति वेष्टित कर देना चाहिये। जलोदर में जब २ जल आता जावे तब तब विरेचन द्वारा निकालते रहना चाहिये ॥ ५-८ ॥

विरिक्तजठराध्मानं स्नेहाद्यैर्बस्तिभिर्जयेत् । निःसृतो लङ्घितो पेयामस्नेहलवणां पिबेत् ॥ ९ ॥
अतः परं तु षण्मासान्क्षीरवर्ती भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसा पेयां पिबेत्त्रींश्चापि योजयेत् ॥
सकोरदूषश्यामाकं पयसा लवणं लघु । नरः संवत्सरेणैवं जयेदाशु जलोदरम् ॥ ११ ॥

विरेचन लेने पर यदि उदराध्मान हो तो स्नेह बस्ति द्वारा उसे नष्ट करना चाहिये। जल निकालने के पश्चात् रोगी को लङ्घन कराकर स्नेहरहित तथा लवणरस रहित पेया पिलाना चाहिये। पश्चात् छै मास तक केवल दूध ही पिलाना चाहिये, फिर तीन मास तक दूध और पेया मिलाकर पिलाना चाहिये, फिर तीन मास कोदो, साँवा दूध के साथ देना चाहिये अथवा सेंधा नमक लघु मात्रा में मिलाकर पेया पिलानी चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष तक पथ्य सेवन करने से मनुष्य जलोदर को शीघ्र नष्ट कर सकता है ॥ १०-११ ॥

अथ सर्वोदरेषु सामान्यविधिः ।

उदराणां मलाढ्यत्वाद्बहुशः शोधनं हितम् ।
क्षीरेणैरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वा सकृत् । ज्योतिष्मत्याः पिबेत्तैलं पयसा वा दिने दिने ॥१॥

उदर रोगों की सामान्य चिकित्सा—उदर रोगों में प्रायः मल की अधिकता होती है (इसीसे रोग में वृद्धि भी होती है) इसलिये उदर का बहुत बार शोधन कराना चाहिये (विरेचन देना चाहिये) इसके लिये दूध के साथ एरण्ड तेल पान करना चाहिये अथवा गोमूत्र के साथ एरण्ड तेल कई बार पान करना चाहिये अथवा ज्योतिष्मती (माल कांगनी) का तेल दूध के साथ प्रतिदिन पान करना चाहिये ॥ १ ॥

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत् ॥ २ ॥

आठो प्रकार के मूत्र उदररोगियों को सिचन तथा पान करने के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

देवदार्वादिलेपः—

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः । साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ॥ १ ॥

देवदार्वादि लेप—देवदारु, पलास, मदार, गजपीपरि और सहिजन की छाल, असगन्ध समभाग ले पीसकर गोमूत्र मिलाकर उदर पर धीरे २ लेप करे तो उदर रोग में लाभ होता है ॥१॥

रोहितकादियोगः—

रोहितकाभयाशुण्ठीः पिबेन्मूत्रेण शक्तितः । सर्वोदरहरं प्लीहमेहार्शःक्रिमिगुल्मनुत् ॥ १ ॥

रोहितकादि योग—रोहितक (रुहेड़ा), हर्रा, सोंठि का चूर्ण कर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, मेह, अर्श, क्रिमि और गुल्म नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विशालादिः—

विशालाशङ्खिनीदन्तीत्रिवृत्त्रिफलकात्रयम् । निशाविडङ्गं कम्पिल्लं मूत्रेणोदरवान्पिबेत् ॥१॥

विशालादि योग—माहुरि, शंखिनी (शंखाहुल), दन्तीमूल, निशोथ, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा,

हरदी, वामीरंग, कबीला, समभाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर गोमूत्र के साथ पान करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पय आदिः—पयो वा चव्यदन्त्यग्निविडङ्गव्योषकल्कितम् ।
पेयं वा शृङ्गबेराम्बु कषायो दारुवह्निजः । चव्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये ॥ १ ॥

पय-आदि योग—चव्य, दन्तीमूल, चित्रकमूल, वामीरंग, सोंठि, पीपरि, मरिच समान ले कल्क कर दूध के साथ पान करे अथवा अद्रक का स्वरस पान करे अथवा देवदारु और चित्रकमूल का क्वाथ अथवा चव्य और सोंठि का क्वाथ बनाकर पान करे तो उदर रोग शान्त होता है ॥ १ ॥

सुश्रुतात्—**हरीतकीसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः ।**
सहस्रं पिप्पलीनां वा स्नुक्क्षीरेण सुभावितम् ॥ १ ॥
पिप्पलीवर्धमानं वा क्षीराशी वा शिलाजतु । तद्वद्वा गुग्गुलु क्षीरं तुल्यार्द्रकरसं तथा ॥
चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत् ॥ २ ॥

एक सहस्र बड़ी हरड़ को क्रम से गोमूत्र के साथ (प्रथम एक हरड़ से प्रारम्भ करे और एक २ हरड़ बढ़ाता जावे) सेवन करे और दूध का ही आहार करे अथवा एक सहस्र पीपरि को लेकर सेहुड़ के दूध के साथ भावित कर उसी क्रम से सेवन करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ अथवा वर्धमान पिप्पली योग का सेवन करे और दूध का ही पथ्य करे अथवा शुद्ध शिलाजीत का सेवन करे और दूध का पथ्य करे अथवा शुद्ध गुग्गुल को दूध के साथ सेवन करे अथवा दूध में समान भाग अद्रक का रस मिलाकर सेवन करे अथवा चित्रक मूल और देवदारु समभाग ले कल्क कर दूध के साथ पान करे तो उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पिप्पलीवर्धमानम्—

त्रिभिरथ परिवृद्धं पञ्चभिः सप्तभिर्वा दशभिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्धमानम् ।
इति पिबति युवा यस्तस्य न श्वासकासज्वरजठरगुदार्शोवातरक्तक्षयाः स्युः ॥ १ ॥

वर्धमान पिप्पली योग—तीन, पांच, सात अथवा दस पीपरि के क्रम से बढ़ा कर जो मनुष्य वर्धमान पिप्पली योग का सेवन करता है और दूध का पथ्य करता है उस पुरुष को श्वास, कास, ज्वर, उदर, गुदा, अर्श, वात रक्त और क्षय ये सब रोग नहीं होते हैं ॥ १ ॥

देवद्रुमादि—**देवद्रुमं शिग्रु मसूरकं च गोमूत्रपिष्टामथवाऽश्वगन्धाम् ।**
पीत्वाऽऽशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं क्रमीन्सशोफानुदरं च दूष्यम् ॥ १ ॥

देवद्रुमादि योग—देवदारु, सहिजन की छाल, मसूर, अथवा केवल असगन्ध को गोमूत्र के साथ पीस कर पान करने से बढ़ा हुआ उदर रोग, क्रमि रोग, शोथ और दूष्योदर नष्ट होते हैं ॥

पटोलाद्यं चूर्णम्—

पटोलमिन्द्रजनीविडङ्गत्रिफलात्वचः । कम्पिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत् ॥ १ ॥
षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥
विरिक्तो मृदु भुञ्जीत भोजनं जाङ्गलै रसैः । मण्डपेयां च पीत्वा वा सव्योषं षडहं पयः ॥२॥

पटोलाद्य चूर्ण—परवर का हार पात, इन्द्रजौ, हरदी, वामीरंग, त्रिफला (आंवला, हर्रा, बहेड़ा), दालचीनी, कबीला, नील का फल और निशोथ इन ओषधियों में से आदि की छै ओषधियों को (परवर से दालचीनी तक) एक २ कर्ष लेवे और अन्त की तीन ओषधियों को अर्थात् कबीला दो कर्ष, नील का फल तीन कर्ष और निशोथ चार कर्ष लेकर सबका चूर्ण कर मुष्टि प्रमाण (एक पल) की मात्रा से गोमूत्र के साथ पान करे। (यह मात्रा अत्यधिक है ½ कर्ष की या यथा बल मात्रा से प्रारम्भ करे)। इससे विरेचन हो जाने पर मृदु पदार्थों का भोजन

जाङ्गल जीवों के मांस रस के साथ करे अथवा मण्डपेया पीवे। पश्चात् सोंठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण मिलाकर पकाया हुआ दूध छै दिन तक पीवे ॥ १-३ ॥

शृतं पिबेत्ततश्चूर्णं पिबेदेवं पुनः पुनः । हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं चापकर्षति ॥ ४ ॥

इस प्रकार बार २ इस चूर्ण को इसी विधि से पान करने से यह चूर्ण सब प्रकार के उदर के रोगों को और जलोदर को भी तथा कामला, पाण्डु रोग और शोथ को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

नारायणचूर्णम्—

यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका । कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥१॥
शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम् । द्वौ क्षारौ पुष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥
विडङ्गं च समांशानि दन्तीभागत्रयं तथा । त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥३॥

नारायण चूर्ण—जवाइन, हाऊबेर, धनियाँ, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, उपकुञ्ची (कलौंजी, काली) (कृष्ण जीरा का भेद), पिपरामूल, अजमोदा (बस्तगन्धा), कचूर, वच, सौंफ, जीरा, सोंठि, मरिच, पीपरि, सत्यानाशी, चित्रक मूल, यवाखार, सज्जीखार, पुहकर मूल, कूठ, पांचो नमक (पृथक् २); वामीरंग, प्रत्येक सम भाग लेवे और दन्ती मूल तीन भाग, निशोथ और माहुरि दो दो भाग, सातला (सेंहुड़ भेद) ४ भाग लेकर चूर्ण कर लेवे। यह 'नारायण' नाम का चूर्ण सब प्रकार के रोग समूहों को नष्ट करने वाला है ॥ १-३ ॥

एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः । तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ॥ ४ ॥
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया । दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ॥ ५ ॥
परिकर्ते च वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके । भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ६ ॥
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे । दंष्ट्राविषे मूलविषे गरले कृत्रिमे विषे ॥
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ७ ॥

तक्र के अनुपान से उदररोगियों को और बेर के स्वरस के अनुपान से गुल्मरोग वालों को पीना चाहिये और आनन्दवात में सुरा, वातरोग में प्रसन्ना, मलावरोध में दही के जल, अर्श में अनार के स्वरस, परिकर्तिका में वृक्षाम्ल (कोकम के फल) और अजीर्ण में उष्णोदक के अनुपान से सेवन करना चाहिये, तथा भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष (दाँत से काटने से उत्पन्न विष) मूल विष (जड़ी-बूटियों का विष), गरल विष और कृत्रिम विष, इन सब रोगों में यथायोग्य यह विरेचन कोष्ठ को स्निग्ध करके पान करना चाहिये ॥ ४-७ ॥

क्षारद्वयादिचूर्णम्—**क्षारद्वयानलव्योषनीलीलवणपञ्चकम् ।**
चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ १ ॥

क्षार द्वयादि चूर्ण—यवाखार, सज्जीखार, चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, नील, पृथक् २ पांचो नमक, प्रत्येक सम भाग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के गुल्मरोग और उदररोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वृन्दाच्छुक्तिकाक्षारादियोगः—

सामुद्रशुक्तिकाक्षारो यवक्षारः ससैन्धवः । गोदध्ना संप्रयुज्येत सर्वोदरविनाशनः ॥ १ ॥

शुक्तिकाक्षारादि योग—समुद्र सीप का भस्म, यवाखार, सेन्धानमक समान लेकर चूर्ण कर एकत्र मर्दन कर गौ के दही के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं ॥

उष्ट्रीक्षीरपानम्—

उष्ट्रीक्षीरं पिबेज्जीर्णे निरन्नो जठरामयी । पक्षं मासमृतुं वाऽपि न च पानीयमाचरेत् ॥ १ ॥